हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agri search with a human touch

स्वच्छ भारत, स्वस्थ भारत, समृद्ध भारत

स्वच्छ भारत

एक कदम स्वच्छता की ओर

# उद्यान रश्मि

## राजभाषा पत्रिका

(अप्रैल–सितम्बर, 2018)
वर्ष 17, अंक 1

**भाकृअनुप–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान**
रहमानखेड़ा, पोस्ट-काकोरी, लखनऊ - 226 101
दूरभाष : (0522) 2841022-24, 2841026, फैक्स : (0522) 2841025
ई-मेल : cish.lucknow@gmail.com
वेबसाइट : www.cish.res.in
मीडिया संसाधन कक्ष : 0522-2841082

भाकृअनुप
ICAR

केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
CENTRAL INSTITUTE FOR SUBTROPICAL HORTICULTURE
ISO : 9001-2015

# संस्थान की राजभाषा गतिविधियाँ

हिन्दी कार्यशाला के अवसर पर डॉ. विजय नारायण तिवारी का स्वागत करते डॉ. शैलेन्द्र राजन, निदेशक

डॉ. आर.एम. खान, प्रधान वैज्ञानिक को उनके कार्य के लिये सम्मानित करते मुख्य अतिथि एवं निदेशक

## हिन्दी पखवाड़ा-2018

एन.बी.एफ.जी.आर. के निदेशक डॉ. कुलदीप के. लाल हिन्दी कार्यशाला के अवसर पर बोलते हुए

डॉ. शैलेन्द्र राजन, निदेशक अध्यक्षीय संबोधन देते हुए

डॉ. घनश्याम पाण्डेय, प्रधान वैज्ञानिक डॉ. सुमित सोनी को प्रमाण-पत्र देते हुए

निदेशक महोदय, डॉ. एन.सी. वर्मा को पुरस्कृत करते हुए

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agrisearch with a human touch

स्वच्छ भारत, स्वस्थ भारत, समृद्ध भारत

एक कदम स्वच्छता की ओर

# उद्यान रश्मि

## राजभाषा पत्रिका

(अप्रैल–सितंबर, 2018)
वर्ष 17, अंक 1

भाकृअनुप
ICAR

**भाकृअनुप-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान**
रहमानखेड़ा, पोस्ट काकोरी, लखनऊ - 226 101
दूरभाष : (0522) 2841022-24, 2841026, फैक्स : (0522) 2841025
ई-मेल : cish.lucknow@gmail.com
वेबसाइट : www.cish.res.in
मीडिया संसाधन कक्ष : 0522-2841082

ISO : 9001-2015

राजभाषा पत्रिका
(अप्रैल-सितम्बर, 2018)
वर्ष 17, अंक 1

© भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, लखनऊ

संरक्षक एवं प्रकाशक
शैलेन्द्र राजन
निदेशक
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, लखनऊ - 226 101, उ.प्र.

संपादन मंडल
मनीष मिश्र
प्रभात कुमार शुक्ल
धीरज शर्मा

डिजाइनिंग
सुभाष पाण्डेय

अस्वीकरण
इस पत्रिका में प्रकाशित तथ्यात्मक लेखों के लिए लेखक ही उत्तरदायी हैं न कि भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ, इसके प्रकाशक, संरक्षक या संपादन मंडल। फिर भी उपयोगकर्ताओं को यह सलाह दी जाती है कि पत्रिका में दी गयी जानकारियों को उपयोग में लाने से पूर्व लेखक या किसी अन्य विशेषज्ञ से अनिवार्य रूप से विचार-विमर्श कर/सलाह लेकर ही प्रौद्योगिकियों, तकनीकियों आदि का प्रयोग करें। अनेक प्रयास के बावजूद टंकण संबंधी त्रुटियाँ रह सकती हैं।

प्रकाशक एवं सम्पर्क सूत्र
निदेशक
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ-226 101
फोन : 0522-2841022-24, फैक्स : 0522-2841025
मीडिया संसाधन कक्ष नं : 0522-2841082
ई-मेल : cish.lucknow@gmail.com
वेबसाइट : www.cish.res.in

# भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का गीत

जय जय कृषि परिषद भारत की,
सुखद प्रतीक हरित भारत की,
कृषिधन, पशुधन मानव जीवन,
दुग्ध, मत्स्य, फल, यंत्र सुवर्धन,
वैज्ञानिक विधि नव तकनीकी,
पारिस्थितिकी का संरक्षण,
सस्य-श्यामला छवि भारत की,
जय जय कृषि परिषद भारत की।

हिम प्रदेश से सागर तट तक,
मरु धरती से पूर्वोत्तर तक,
हर पथ पर है, मित्र कृषक की,
शिक्षा, शोध, प्रसार सकल तक,
आशा स्वावलंबित भारत की,
जय जय कृषि परिषद भारत की।
जय जय कृषि परिषद भारत की।।

# संदेश

भाषा किसी भी राष्ट्र की अस्मिता, उसके गौरव एवं संस्कृति की वाहक होती है। हिन्दी हमारी राष्ट्रीय पहचान है। यह हमारी सांस्कृतिक समृद्धि की प्रतीक है। आज हिन्दी विश्व में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। विश्व के कई देशों में हिन्दी बोली और समझी जाती है। भारत संघ की राजभाषा हिन्दी की अपनी समृद्ध भाषिक साहित्यिक, परम्परा एवं वैज्ञानिक लिपि है। हिन्दी का व्यवहार क्षेत्र जनपदीय, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर मिलता है। अन्य भाषाओं की अपेक्षा सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी सर्वाधिक प्रचलित व बोधगम्य है। शिक्षा साहित्य, प्रशासन, समाचार पत्र, पत्रिकाओं, आकाशवाणी, दूरदर्शन, फिल्म, वाणिज्य और सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिन्दी के प्रयोग में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। मेरा मानना है कि हिन्दी का सार्थक एवं प्रभावी विकास तभी संभव है जब उसे रोजगार से जोड़ा जाये। जब हिन्दी रोजगार से जुड़ेगी तो युवा वर्ग स्वयं ही हिन्दी सीखेगा तथा उसका विकास होगा, साथ ही भारतीय संस्कृति का भी पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरण होगा।

हमारे देश में भी एक बड़ी आबादी है जो कम्प्यूटर एवं मोबाइल फोन पर इंटरनेट का प्रयोग करती है और हिन्दी या अपनी मातृभाषा ही समझती है। यही कारण है कि आज अधिकांश इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों तथा वेबसाइटों पर, धीरे–धीरे ही सही, हिन्दी का प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है। गूगल, फेसबुक, माइक्रोसॉफ्ट और ऐप्पल सहित दुनिया की दिग्गज तकनीकी कंपनियों का जोर भी हिन्दी और स्थानीय भाषाओं को अपनाने पर है।

अंतर्राष्ट्रीय बाजार में हिन्दी भाषा का महत्वपूर्ण योगदान है। विश्व के कई विश्व के कई विश्वविद्यालयों तथा सैकड़ों छोटे–बड़े केन्द्रों में विश्वविद्यालय स्तर से लेकर शोध स्तर तक हिन्दी के अध्ययन व अध्यापन की व्यवस्था हुई है। विदेशों से बहुत सारी पत्र–पत्रिकाएं नियमित रूप से हिन्दी में प्रकाशित हो रही हैं। अनेक देशों में हिन्दी कार्यक्रम भी प्रसारित किये जा रहे हैं जिनमें बीबीसी, जर्मनी के डॉयले वेले और जापान के एनएचके वर्ल्ड द्वारा निर्मात कार्यक्रम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद व इसके संस्थान हिन्दी को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं क्योंकि अन्य विषयों की अपेक्षा कृषि विज्ञान में हिन्दी माध्यम की उपयोगिता अधिक है। यदि हम कृषि विषयों के अध्ययन व अध्यापन हेतु हिन्दी माध्यम अपनाते हैं तो भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिये यह अत्यन्त उपयोगी होगा। हिन्दी में लिया गया ज्ञान कृषि प्रौद्योगिकी के प्रचार–प्रसार में अधिक सार्थक सिद्ध होगा। परिषद व इसके संस्थानों में प्रशासनिक कार्यों के अलावा वैज्ञानिक अनुसंधानों को किसानों तक पहुंचाने में भी हिन्दी का प्रयोग पहले के मुकाबले काफी बढ़ा है, परन्तु अभी भी इस दिशा में प्रयास करने की जरूरत है। राजभाषा का प्रयोग मात्र गैर तकनीकी पत्राचार, टिप्पण और प्रतिवेदन तक सीमित नहीं होना चाहिए। बल्कि व्यावसायिक, तकनीकी तथा वैज्ञानिक अनुसंधान एवं अनुप्रयोग के क्षेत्र में भाषिक माध्यम के रूप में हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग होना चाहिए। इसके लिए मैं आप सबका आह्वान करता हूँ कि आइए हम हिन्दी को उस स्थान पर पहुंचाने का संकल्प करें जिससे यह संपूर्ण देश की पहचान के रूप में स्थापित हो सके। इसके लिये यह संकल्प लेना होगा कि हम अपना समस्त कार्य अधिक से अधिक हिन्दी में ही करें। मुझे आशा ही नहीं बल्कि पूरा विश्वास है कि हमारे अथक प्रयासों से हिन्दी को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वह पहचान जरूर मिलेगी जिसकी वह हकदार है।

प्रत्येक वर्ष की तरह इस वर्ष भी भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद व इसके संस्थानों में हिन्दी दिवस/सप्ताह/पखवाड़ा/मास के सफल आयोजन के लिये अपनी शुभकामनाएं देता हूँ।

सादर,

राधा मोहन सिंह

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री, भारत सरकार

# प्राक्कथन

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान अपने अधिदेश को ध्यान में रखकर निर्यात के मद्देनजर आम के फल की रंगीन किस्मों के विकास के लिये दृढ़ संकल्प है। जनसाधारण में जैव सक्रिय यौगिकों से होने वाले औषधीय गुणों के प्रति बढ़ती जागरूकता को दृष्टिगत कर ही संस्थान आम की ऐसी किस्मों को विकसित करने के लिये कार्यरत है जिनमें ये स्वास्थ्यकारी यौगिक प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते हैं। आम के विभिन्न किस्मों के गूदों के परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि इन यौगिकों में जैव सक्रिय तत्व वृहत् विविधता में पाये जाते हैं। जहाँ आम की मल्लिका किस्म में फ्लेवोनॉयड एवं कैरोटिनॉयड तत्व की प्रचुरता पायी जाती है, वहीं लंगड़ा में ऐंटीऑक्सीडेंट प्रचुर मात्रा में होते हैं किन्तु कैरोटिनॉयड कम होते हैं। विगत कुछ वर्षों के दौरान अमरूद के उत्पादन का क्षेत्रफल तो बढ़ा है, किन्तु कुछ स्थानों पर इसके उत्पादन में गिरावट दर्ज की गयी है। इसका कारण है कि विगत 4–5 वर्षों के दौरान जड़ ग्रंथ सूत्रकृमि, *मेलाइडोगाइन एंटरोलोबी* का अमरूद के बागों में संक्रमण हुआ है जिससे पौधों की मृत्यु दर तेजी से बढ़ी है। यह सूत्रकृमि अकेले ही नर्सरी के पौधों एवं छोटे पौधों (1–4 वर्ष) को दुर्बल कर मार देता है जबकि अधिक उम्र के पौधों में उकठा रोग देखा गया है।

उत्तर भारत के अनेक क्षेत्र में आम उत्पादक क्षेत्रों में थ्रिप्स कीट एक गंभीर समस्या के रूप में उभरा है। इसलिए इसके समुचित प्रबंधन की तकनीक विकसित की गयी तथा किसानों को उसे उपलब्ध कराया गया है। साथ ही संस्थान ने कच्चे आम के छिलके सूप पाउडर को भी विकसित किया गया। बागवानी क्षेत्र में ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के बेरोजगार युवाओं को उद्यमिता और रोजगार के अवसर प्रदान करने की असीम क्षमता को देखते हुए युवाओं में उद्यमिता विकसित करने के लिये संस्थान ने उन्हें मूल्य संवर्धन, नर्सरी, टिशू कल्चर एवं विभिन्न माध्यमों से किसानों की आय दुगुनी करने को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय संगोष्ठी का भी आयोजन किया है। पूर्वोत्तर भारत में फल वृक्षों की खेती को बढ़ावा देने हेतु संस्थान ने न केवल प्रशिक्षणों का आयोजन किया बल्कि गुणवत्तायुक्त पौध सामग्री भी उपलब्ध करायी।

भारतीय उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्र फलों, सब्जियों, कंद, फसलों, फूलों, मशरूम, मसालों, औषधीय और सुगंधित पौधों की एक विस्तृत श्रृंखला के लिये उपयुक्त क्षेत्र है। बागवानी की प्रौद्योगिकियों के प्रमुख लाभार्थी लघु और सीमांत किसानों के द्वारा ही बागवानी का अधिकांश उत्पादन हुआ तथा जिसने उन्हें उद्यमिता अपनाने के लिये सुयोग्य बनाया। भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ संस्थान ने बागवानी प्रौद्योगिकियों के प्रमुख क्षेत्रों में किसानों, ग्रामीण महिलाओं तथा बेरोजगार युवाओं की क्षमता विकास में सहायता की है। एस्की द्वारा वित्त–पोषित गार्डेनर्स प्रशिक्षण के अंतर्गत काफी संख्या में युवाओं की क्षमता का विकास किया गया है। मैनेज द्वारा वित्त–पोषित 'फलों के प्रमाणित फार्म 15 दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम में 6 राज्यों के प्रतिभागियों ने सलाहकार' विषयक कार्यक्रम में हिस्सा लिया। उद्यमिता पर मॉडल प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में देश के विभिन्न हिस्सों से विस्तार अधिकारियों ने उत्साहपूर्वक हिस्सा लिया। तीन बागवानी उद्यमिता सेमिनारों का भी आयोजन किया गया जिसमें बड़ी संख्या में युवा सम्मिलित हुए। संस्थान ने आदिवासी ग्रामीण महिलाओं की जागृति सशक्तिकरण और आदिवासी न्यूट्री स्मार्ट गाँव के माध्यम से आदिवासी किसानों के साथ मिलकर कार्य किया।

संस्थान द्वारा किये गये शोध कार्यों को संस्थान की राजभाषा पत्रिका 'उद्यान रश्मि' में हिन्दी माध्यम में लोकप्रिय लेखों के माध्यम से समाहित किया जाता रहा है। इस बार भी इसके प्रकाशन में इसका ध्यान रखा जा रहा है कि संस्थान की गतिविधियों को इसमें समाहित किया जा सके। हिन्दी में होने के कारण यह उद्यान विज्ञान की पत्रिका किसानों सहित अन्य वर्ग के लोगों में भी लोकप्रिय है। इसके प्रकाशन अवसर पर मैं राजभाषा कार्यान्वयन समिति एवं प्रकाशन समिति के सदस्यों को बधाई देते हुए आशा करता हूँ कि इस पत्रिका का यह अंक भी किसानोपयोगी एवं ज्ञानवर्धक होगा।

शैलेन्द्र राजन

**शैलेन्द्र राजन**

**निदेशक**

# संपादकीय

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ की राजभाषा पत्रिका 'उद्यान रश्मि' के वर्ष 17 का अंक–1 अभिनव जानकारियों के साथ पुनः प्रस्तुत है। विगत अंकों की भाँति इस अंक में भी कृषि एवं बागवानी विज्ञान से संबंधित नवीनतम जानकारियाँ उपलब्ध करायी गयी हैं। वैज्ञानिक लेखों को हिन्दी में प्रस्तुत करना निस्संदेह ही एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। भाषा यदि सरल एवं सहज हो तो वह विज्ञान के भार को भी वहन कर लेती है और यह कार्य हिन्दी अत्यन्त सरलता से करने में हमेशा ही समर्थ रही है।

मानव समाज के विकास का सर्वाधिक श्रेय यदि किसी एक वस्तु को दिया जा सकता है तो वह भाषा ही होगी। राजा भर्तृहरि ने कहा है कि यदि भाषा की उत्पत्ति नहीं हुई होती तो संपूर्ण विश्व घोर अंधकार में डूब गया होता। साहित्य, दर्शन, कला एवं ज्ञान–विज्ञान सभी विषयों को वैज्ञानिक तरीके से प्रस्तुत करने में भाषा की महत्ती भूमिका रही है। यही कारण है कि भाषा सभी को विषयों की बारीकियों एवं गूढ़ताओं से परिचित कराती है। भाषा ही वह घटक है जो हमें पशुओं से पृथक भी दिखाती है। भारत के परिप्रेक्ष्य में भाषाओं की और भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अंग्रेजी भाषा के विशेषज्ञ एवं वैयाकरण लियोनार्द ब्लूमफील्ड, महर्षि पतंजलि को व्याकरण के जनक रूप में देखते हैं। भाषा और व्याकरण ही उत्पत्ति में पाणिनी को सम्मिलित नहीं जाना न्यायपूर्ण नहीं होगा। पाणिनी द्वारा रचित अष्टाध्यायी का सरलीकरण ही पतंजलि का महाभाष्य है।

हिन्दी दुनिया की तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। यह एक अत्यन्त ही वैज्ञानिक भाषा है। इस भाषा में जैसा लिखा जाता है वैसा ही बोला भी जाता है। जबकि अंग्रेजी भाषा में शब्दों के उच्चारण के लिये अलग से शब्दकोश तक निर्मित किये गये हैं। अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में इसकी और अधिक महत्ता है क्योंकि भारत में 50 प्रतिशत से भी अधिक लोगों के लिये हिन्दी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सूचनाओं एवं जानकारियों की संवाहिका रही है। भारत संघ की राजभाषा होने के कारण हिन्दी का महत्व और भी अधिक हो जाता है क्योंकि समस्त सरकारी कार्यों का संपादन हिन्दी में ही कार्यान्वित किया जाता है।

राजभाषा पत्रिका 'उद्यान रश्मि' के प्रकाशन का उद्देश्य है कि इसमें प्रकाशित लेख किसानों के लिये उपयोगी होने के साथ–साथ सामान्य जनमानस के लिये भी लाभकारी हों। इसमें निहित फलों, सब्जियों तथा अन्य कृषि प्रौद्योगिकी संबंधी, तकनीकों एवं सूचनाओं का ताना–बाना बुन कर एक इंद्रधनुषी रंग में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। यह हर्ष का विषय है कि विषय–विशेषज्ञों द्वारा लिखित वैज्ञानिक लेखों में कृषकों एवं जनसाधारण में इस पुस्तिका की लोकप्रियता बढ़ी है।

इस पत्रिका प्रकाशन के लिये मैं राजभाषा कार्यान्वयन समिति के अध्यक्ष, इसके सदस्यों तथा प्रकाशन समिति के सभी सदस्यों का आभारी हूँ जिनके मार्गदर्शन एवं सुझाव बिना 'उद्यान रश्मि' का प्रकाशन सफल नहीं हो सकता है। मैं लेखकों को उनके अप्रतिम लेखों के लिये भी आभार प्रकट करता हूँ। आशा है कि यह पत्रिका सभी पाठकों के लिये ज्ञानवर्धक सिद्ध होगी।

धीरज शर्मा

**(धीरज शर्मा)**
सहायक निदेशक
(राजभाषा)

# विषय-वस्तु


1. कचरा प्रबंधन सब्जी उत्पादन के लिये वरदान 1
*सुशील कुमार शुक्ल, राम अवध राम एवं शैलेन्द्र राजन*

2. फल एवं सब्जियों का मानव पोषण में महत्व 5
*श्याम राज सिंह एवं विजय कुमार सोनी*

3. सिंचाई जल की उपलब्धता : एक चुनौती 9
*विनोद कुमार सिंह, घनश्याम पाण्डेय एवं ज्योति मीना*

4. वैज्ञानिक विधि से पपीता की खेती 11
*डी. के. तिवारी, डी. पाण्डेय एवं पी. के. मिश्र*

5. आमदनी एवं गुणवत्ता हेतु आम के बागों में छत्र प्रबंधन 15
*सुशील कुमार शुक्ल, घनश्याम पांडेय एवं अजय कुमार त्रिवेदी*

6. हल्दी की वैज्ञानिक खेती 17
*वी.के. सिंह, मनोज कुमार सोनी एवं अनिल कुमार यादव*

7. बागवानी के लिये समस्याग्रस्त मृदाओं की उपयोगिता 21
*देवेन्द्र पाण्डेय, अजय कुमार त्रिवेदी, विनोद कुमार सिंह एवं घनश्याम पाण्डेय*

8. बंजर भूमि में औद्यानिक गतिविधियों द्वारा फल उद्यानिकी प्रोत्साहन की संभावनाएँ 26
*देवेन्द्र पाण्डेय, अजय कुमार त्रिवेदी, देवानन्द गिरी एवं शिव पूजन*

9. अमरूद में सघन बागवानी एवं छत्रक प्रबंधन 30
*के.के. श्रीवास्तव, दिनेश कुमार एवं प्रदीप कुमार शुक्ल*

10. फल मक्खियों के प्रकोप से बचाव हेतु प्रभावी ट्रैप विकसित 34
*गुंडप्पा एवं पी. के. शुक्ल*

11. फल फसल पौधशालाओं में होने वाले रोग एवं उनका प्रबंधन 35
*प्रभात कुमार शुक्ल*

12. पपीते के मुख्य विषाणु रोग एवं उनका प्रबंधन 40
*निधी कुमारी, पी.के. शुक्ल एवं गुंडप्पा*

13. शिमला मिर्च में विषाणु रोगों का खतरा एवं इसकी रोकथाम 42
*निधी कुमारी एवं प्रेम नाथ शर्मा*

14. मृदा परीक्षण में मृदा नमूना का महत्व 44
*विनोद कुमार सिंह, घनश्याम पाण्डेय, तरुण अदक एवं ज्योति मीना*

15. उपोष्ण फलों के पादप दैहिक विकार एवं उनका प्रबंधन 46
*अजय कुमार त्रिवेदी, घनश्याम पाण्डेय, देवेन्द्र पाण्डेय एवं सुशील कुमार शुक्ल*

16. कीवी फल के स्वास्थ्यवर्धक गुण 51
*भारती किल्लाड़ी, आभा सिंह, धर्मेन्द्र कुमार शुक्ल, रेखा चौरसिया एवं ज्योर्तिमय लेंका*

17. रोग–प्रतिरोधक एवं स्फूर्ति क्षमता बढ़ाने में नींबू का महत्व 53
*ज्योति मीणा, घनश्याम पाण्डेय एवं विनोद कुमार सिंह*

18. विभिन्न वृक्षों, कंदीय एवं अन्य क्यारी में लगाये जाने वाले पौधों, श्रबरी, जैव बाड़ एवं एजिंग हेतु पौधे एवं उनका रोपण 56
*नरेश बाबू*

19. औद्यानिक फसलों पर पाले का प्रभाव तथा बचाव के उपाय 61
*अजय कुमार त्रिवदी, घनश्याम पाण्डेय एवं प्राणनाथ बर्मन*

20. समृद्धि में कारगर है राजमा (फ्रेंच बीन) की वैज्ञानिक खेती 64
*नरेश बाबू, सुभाष चन्द्र एवं अरविन्द कुमार*

21. आम एवं अमरूद के पोषक तत्वों का महत्व 67
*वीणा, जी.एल., उमेश हुड़ेदमनि, पारूल सागर, मुरलीधरा बी.एम. एवं शैलेन्द्र राजन*

22. खिरनी में पोषक तत्व का महत्व 69
*ए.के. सिंह एवं गौरव सिंह विशेन*

23. फलों के औषधीय और पोषण गुण 72
*अंजू बाजपेयी, मुथ्थुकुमार एम., लक्ष्मी एवं यशी बाजपेयी*

24. अंजीर की खेती 76
*प्राणनाथ बर्मन एवं नितेश कुमार शर्मा*

25. न्यूनतम प्रसंस्करण के द्वारा फल एवं सब्जियों का मूल्यवर्धन 81
*पवन सिंह गुर्जर एवं डी. के. शुक्ल*

26. एफ.एस.एस.ए.आई. द्वारा प्रस्तावित डिब्बाबंदी के नये नियम 84
*ए. के. भट्टाचार्जी एवं प्रदीप कुमार शुक्ल*

27. खाद्य पदार्थों की डिब्बाबंदी में प्लास्टिक 91
*ए. के. भट्टाचार्जी, प्रदीप कुमार शुक्ल एवं बलविन्द्र सिंह*

28. राजभाषा (संघ के प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 95

29. शब्दावली 100

# कचरा प्रबंधन सब्जी उत्पादन के लिये वरदान

सुशील कुमार शुक्ल[1], राम अवध राम[2] एवं शैलेन्द्र राजन[3]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

शहरों में कचरा प्रबंधन एक गंभीर समस्या है। इस दिशा में सरकारों और नगरीय निकायों द्वारा किये गये प्रयास सर्वथा अपर्याप्त रहे हैं। दुनिया की लगभग आधी आबादी शहरों या नगरों में निवास करती है और यह संख्या शहरों में उपलब्ध विभिन्न सुविधाओं और रोजगार के अवसरों के कारण दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। प्रत्येक शहरी को स्वच्छ, स्वास्थ्यपूर्ण, सुविधायुक्त अच्छे पर्यावरण में रहने का अधिकार है जिसके लिये रास्ते खोजने होंगे। इसमें विलंब करना घातक होगा अन्यथा अधिकाधिक शहर नर्क में परिवर्तित हो सकते हैं। शहरों में कचरा बढ़ता जा रहा है किन्तु इसके निस्तारण की व्यवस्थाओं में वृद्धि नहीं हो रही है। स्वायत्तशासी संस्थाएँ और गैर–सरकारी संगठन तथा उनमें बैठे लोग इसकी ज्वलंत जरूरतों के प्रति पर्याप्त प्रयास नहीं कर रहे हैं जिसके भयानक परिणाम हो सकते हैं। प्रत्येक नागरिक को अपने कर्तव्यों के प्रति उतना ही जागरूक और जुझारू बनना होगा जितना सजग और सक्रिय वह अपने अधिकारों के प्रति होता है।

प्रत्येक नागरिक को शहर में अपनी छवि देखनी होगी। उसका शहर से गहरा लगाव और जुड़ाव होना चाहिए तभी हमारे शहर रहने लायक हो सकते हैं। प्रत्येक शहर को अपना चरित्र बनाना होगा। हर शहर को अपना परंपरागत चरित्र और गौरव कायम कर विकास के नाम पर शहर की आत्मा को नष्ट होने से बचाना चाहिए। इन सब पर अविलंब ध्यान देने की आवश्यकता है। अपने घर को साफ रखने के लिये कचरे को प्लास्टिक की थैली में भरकर पड़ोस के प्लाट में फेंकने की आदत का परित्याग करना होगा। लोग सड़क, गली, नालियों में कचरा फेंकते हैं जिससे नालियाँ अवरूद्ध होती हैं जो स्वास्थ्य के लिये गंभीर खतरा उत्पन्न करती हैं।

कचरे के ढ़ेर इकट्ठा कर सार्वजनिक स्थानों पर डाल दिये जाते हैं और उनको तत्काल उठाने की कोई व्यवस्था विकसित नहीं की गयी है। मुझे घरेलू कचरा प्रबंधन की प्रेरणा इससे ही मिली है। मेरे पड़ोस में एक साप्ताहिक सब्जी मंडी है जिसके बगल में नगर–निगम ने कूड़ा घर बना दिया है। वहाँ से गाहे–बगाहे सुबह–शाम हवा चलने की दिशा के अनुकूल होते ही हमारे पूरे मोहल्ले को कचरे की दुर्गंध आती है। बिना जन सहयोग, जन प्रशिक्षण और सरकारी सक्रियता के कोई भी कचरा प्रबंधन संभव नहीं है। जहाँ–जहाँ इस विषय में समन्वय हुआ है, वहाँ स्थितियाँ बदली हैं और शहरी जीवन में सुधार आया है। इसी तरह के संकल्पों से सूरत, इंदौर, कोलकाता, बेंगलूरू आदि जिलों ने अपनी पहचान बदली है।

आँकड़े बताते हैं कि मुंबई में प्रतिदिन 9000 टन से अधिक सार्वजनिक ठोस कचरा निकलता है। इनमें से ज्यादातर या तो खुले डंप साइटों में फेंक दिये जाते हैं अथवा शहर के एक जैव–रिएक्टर का गड्ढा भरने में प्रयोग होता है। प्रायः कचरे खुले में जला दिये जाते हैं जिससे अनेक जहरीले प्रदूषक पदार्थ उत्पन्न होते हैं जो श्वास रोग, हृदय रोग एवं जन्मजात विसंगतियों के कारण बनते हैं। इसके अलावा इतनी बड़ी मात्रा में कचरे के परिवहन, संचालन तथा निपटाने के दौरान सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड (जिसे एसिड गैस भी कहा जाता है), ग्रीन हाउस गैसों, सूक्ष्म पदार्थ और अन्य जहरीले पदार्थ भी उत्सर्जित होते हैं।

'नेचर' नामक ख्यातनामा जर्नल में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार कचरा या ठोस अपशिष्ट की समस्या आज भयानक स्तर तक पहुँच गयी है। इस सदी (2100) के अंत तक विश्व स्तर पर 11 मिलियन टन की दर से कचरा इकट्ठा होगा अर्थात आज की दर से तीन गुना अधिक होगा। इसका अर्थ है कि जो कचरा 2010 में प्रति दिन 3–5 मिलियन टन था 2025 तक प्रति दिन 60 लाख टन हो जायेगा। वर्तमान में भारत के लोग प्रति वर्ष लगभग 62 मिलियन टन ठोस कचरे का उत्पादन करते हैं। इसमें से 45 मिलियन टन कचरा छोड़ दिया जाता है

[1,2]प्रधान वैज्ञानिक एवं [3]निदेशक

और नागरिक एजेंसियों द्वारा इसका निपटान गैरकानूनी तरीके से किया जाता है।

रिपोर्ट के अनुसार शहरी भारत प्रतिदिन 109,589 टन अपशिष्ट उत्पन्न करता है। दिलचस्प बात यह है कि शहरी अमेरिकी प्रतिदिन 624,700 टन कचरा पैदा करता हैं जो दुनिया में सबसे अधिक है जबकि दूसरा सबसे बड़ा भागीदार शहरी चीन है जो 520,548 टन कचरा प्रतिदिन उत्पन्न करता है। 2025 तक भारत की अपशिष्ट 376,639 टन प्रति दिन होगी। उस समय तक शहरी भारत की आबादी 538 मिलियन तक बढ़ने की संभावना है।

प्रत्येक वर्ष 45000 टन प्लास्टिक कचरा विश्व के समुद्रों में पहुँचता है जिसके कारण करीब 10 लाख समुद्री पक्षी और लाखों समुद्री जीव मर जाते हैं। भारत में प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन 100 ग्राम से 900 ग्राम तक कचरा उत्पन्न करता है। प्लास्टिक/पॉलिथीन के कचरे को पर्यावरण में पूरी तरह खत्म होने में लगभग 80 से 100 साल का समय लगता है। प्लास्टिक के टुकड़े खेतों में कृषि उत्पादन को कम करते हैं तथा बारिश में शहरी बाढ़ एवं जलभराव को अंजाम देते हैं। एक आँकड़े के अनुसार हमारे देश में 20 गाय प्रतिदिन प्लास्टिक बैग को खाने से मर जाती हैं।

आज स्थिति यह है कि जैसे–जैसे हम स्वच्छता और स्वास्थ्य के प्रति जागरूक होते जा रहे हैं, उसी गति से इसकी बुनियादी बातों को दर्शाने वाले नागरिक कर्तव्यों से कोसों दूर भाग रहे हैं। ठोस अपशिष्ट प्रबंधन नियम 2016 के अनुसार 'कोई भी व्यक्ति स्वयं से उत्पन्न कचरे को अपने परिसर के बाहर सड़कों, खुले सार्वजनिक स्थलों पर, नाली या जलीय क्षेत्रों में न तो फेंकेगा और न ही जलायेगा या दफनायेगा'। लेकिन शहर में इसकी धज्जियाँ उड़ाने वाले दृश्य सामान्य से हो गये हैं।

हालाँकि, अनेक ऐसे वैज्ञानिक विकल्प उपलब्ध हैं जो खुले में कचरा निपटान करने से बेहतर साबित होंगे। कागज, प्लास्टिक, कपड़े और चमड़े का पुनर्चक्रण (रिसाईकल) किया जा सकता है। जैविक कचरे को खाद में बदला जा सकता है। भष्मीकरण का उपयोग जहाँ जैविक कचरे को जलाया जा सकता है, वहाँ और अजैविक कचरे को राख में बदल दिया जाता है। इतना ही नहीं बल्कि भष्मीकरण के दौरान उत्पन्न उष्मा को ऊष्मीय ऊर्जा संयंत्रों में उपयोग किया जा सकता है। इससे एक तो कार्बन उत्सर्जन में कमी होगी और दूसरा, पर्यावरण और समाज दोनों ही लाभान्वित होते हैं।

## घरेलू कचरा प्रबंधन

जहाँ नगरों में उचित व्यवस्था है, वहाँ घरेलू कचरे को इकट्ठा करना, उन्हें अलग करना, तय समय और स्थान पर फेंकने की पहली जिम्मेदारी आम नागरिक की है। उनका यह भी दायित्व होता है कि वे घरेलू कचरे को ठीक से एकत्र कर उन्हें अलग करें क्योंकि मिश्रित कचरे का प्रबंधन सही तरह से नहीं हो सकता है। साथ ही निश्चित स्थान पर रखे कूड़ेदान में डालें, तभी उस कचरे के निपटान का सही तरीका निर्धारित हो सकता है। इसके बाद, नगर निगम की जिम्मेदारी आती है कि कूड़ेदान की उपलब्धता में कमी नहीं हो, घर–घर कचरा संग्रहण करें, कचरे को उठाकर फेंकने के बजाय उसके प्रबंधन पर कार्य करें। इसमें कचरे के प्रबंधन को लेकर भिन्न कार्य शामिल हो सकते हैं जिनमें कचरे से खाली गड्ढों को भरना, कंपोस्टिंग, भष्मीकरण आदि करने जैसे कार्य शामिल हो सकते हैं। साथ–ही–साथ प्लास्टिक के कचरे के प्रबंधन के लिये पुनर्चक्रण की विधियाँ अपनायी जा सकती हैं। कुछ विधियों द्वारा राजस्व भी प्राप्त किया जा सकता है, जिनमें खाद बनाकर बेचना, ऊर्जा निर्माण करना जैसे कार्य शामिल हैं।

भारत में प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन 100 ग्राम से लेकर 900 ग्राम कचरा उत्पन्न करता है। इस प्रकार हर घर से लगभग 3 से 5 किलोग्राम कचरा रोज और 15–20 क्विंटल प्रति वर्ष निकलता है। जैविक कचरे को कम्पोस्ट के रूप में परिवर्तित कर समस्या को काफी हद तक कम किया जा सकता है। साथ–ही–साथ उस कम्पोस्ट को घर के आस–पास या छत पर प्रयोग कर विभिन्न प्रकार की सब्जियों, फलों और फूलों को उगाकर या पौधशाला बनाकर उनसे अच्छी आमदनी की जा सकती है। इसमें महिलाओं के लिये रोजगार की असीम संभावनाएँ हैं।

## जैविक कचरे से कम्पोस्टिंग

हमारे घरों से जो भी जैविक कचरा निकलता है वह दो प्रकार का हो सकता है। एक तो सूखा कचरा जैसे

सूखी पत्तियाँ, पतली सूखी टहनियाँ, नारियल का छिलका, मूँगफली के छिलके, गत्ते के डिब्बे या उनके टुकड़े या इसी तरह के अन्य पदार्थ और दूसरे फल, सब्जियों के छिलके, हरी पत्तियाँ, काट–छाँट से निकले पत्ते या टहनियाँ या अन्य रसोई से निकले पदार्थ। सर्वप्रथम गत्तों के डिब्बे पर लगी पॉलिथीन या प्लास्टिक आदि को निकाल दें। विभिन्न प्रकार के पात्र यथा बाल्टी, प्लास्टिक कंटेनर, ड्रम या बड़े–बड़े पेंट के डिब्बे या फिर ईंटों से बनायी गयी अस्थायी हवादार संरचना, प्लास्टिक की बड़े आकार (50–100 किलोग्राम क्षमता वाली) की बोरी को कम्पोस्टिंग के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है। यह ध्यान देना चाहिए कि प्लास्टिक के ड्रम या बाल्टी, प्लास्टिक की बोरी आदि में नीचे की तरफ हवादार बनाने के लिये पर्याप्त छेद कर दिये गये हों। इस प्रकार बनाये गये पात्र में सबसे नीचे गत्तों के टुकड़ों को डाल दें। फिर उसके ऊपर मिट्टी की एक तह बना दें। इस मिट्टी की सतह के ऊपर क्रमशः गीला अवशेष, फिर सूखे अवशेष की तह लगभग छः–छः इंच मोटी बना दें। उसके बाद फिर से मिट्टी की एक तह और पुनः गीला–सूखा अवशेष मिट्टी की तह तब तक बनाते जायें जब तक कि वह पूरी भर न जाये। अगर इसी को बनाते समय गीले अवशेष के ऊपर मटका खाद के घोल (20%) का छिड़काव करते जायें तो कम्पोस्टिंग में जैविक अपघटन की प्रक्रिया और अधिक तीव्र हो जाती है। यह देखा गया है कि एक सामान्य घर से प्रत्येक सप्ताह लगभग एक बोरी जैविक कचरा उपलब्ध हो जाता है। इसको सड़ने के लिये रख दिया जाता है और मौसम और तापमान के अनुसार एक से डेढ़ महीने में खाद बन कर तैयार हो जाती है। अगर हम चाहें तो प्लस्टिक की बोरी में कचरे की तह लगाते समय बीचों–बीच एक बाँस खड़ाकर तह लगाते जाते हैं और अच्छी तरह भर जाने पर बाँस को निकाल देते हैं जिससे उसमें हवा का आवागमन सुचारु रूप से होता रहा और जैविक अपघटन में भी मदद मिलती रहे।

## मटका खाद बनाने की विधि

मटका खाद बनाने के लिये 5 किलोग्राम ताजा गाय का गोबर, पाँच लीटर दो से तीन दिन पुराना गोमूत्र, आधा किलो बेसन, आधा किलो रसायन मुक्त गुड़ एवं 250 ग्राम रसायन मुक्त खेत, मेंड़, बरगद के नीचे या जंगल की मिट्टी और एक मटके की आवश्यकता होती है। उल्लिखित सभी सामग्री का घोल बनाकर एक मटके में अच्छी तरह मिलाते हैं और मटके के मुँह को किसी कपड़े या जालीदार शेडनेट के टुकड़े से बाँध देते हैं। अगले एक सप्ताह तक प्रतिदिन सुबह और शाम एक डंडे से परस्पर विपरीत दिशा में घुमाकर खूब मिलाते रहते हैं जिससे ऑक्सीजन पर्याप्त उपलब्ध रहे। मिलाने के बाद फिर से कपड़ा बाँध दें। एक सप्ताह में मटका खाद तैयार हो जाता है। इसे पौधों में पानी के साथ मिलाकर डालते हैं या 20 प्रतिशत घोल को कम्पोस्टिंग के लिये कचरे पर छिड़कते हैं।

## वर्मीवॉश या तरल खाद

घर में हम आसानी से तरल खाद भी तैयार कर सकते हैं। इसके लिये एक 100 से 200 लीटर क्षमता वाला प्लास्टिक का ड्रम लेते हैं। ड्रम के नीचे की ओर एक प्लस्टिक की लम्बी वाली टोंटी लगवा लेते हैं। इसके बाद सबसे नीचे करीब चार इंच पत्थर या ईंटे की गिट्टी डालते हैं। उसके ऊपर करीब 6 इंच मौरंग की तह बिछा देते हैं। इसके ऊपर 15 से 20 दिन पुराना गोबर, सब्जियों के छिलके आदि डालते हैं। इसी में केंचुएँ सहित वर्मी कम्पोस्ट या करीब 250 ग्राम से आधा किलो केंचुएँ मिला देते हैं। सबसे ऊपर ड्रम में एक स्टैंड की सहायता से एक ऐसा मटका रखते हैं जिसमें नीचे की तरफ एक छिद्र कर कपड़े का टुकड़ा इस प्रकार बाँधा जाता है जिससे बूँद–बूँद कर ड्रम में पानी टपकता रहता है। केंचुएँ गोबर और किचेन अपशिष्ट को खाकर खाद बनाते रहते हैं और नीचे टोंटी से वर्मीवॉश भी प्राप्त होता रहता है जिसे आप पानी में मिलाकर पौधों या गमलों में डालने से पौधों की वृद्धि और फलत अच्छी प्राप्त होती है।

## उद्यमिता हेतु पौधशाला और घरेलू बागवानी

यदि आप के पास कम्पोस्ट और वर्मीवॉश घर में उपलब्ध हैं तो अपने छत या आस–पास की उपलब्ध जगह में न केवल आप सब्जियाँ उगा सकते हैं अपितु उसमें फलों के पौधे, कलमी पौधे, फूलदार या शोभाकार पौधों की पौध, बोनसाई आदि बनाकर अच्छी आमदनी भी प्राप्त कर सकते हैं। उत्तर भारत में डहेलिया, गुलदाउदी,

गेंदा, मौसमी फूलदार पौधे, कंदीय पौधे, एडीनियम आदि अधिकतर पौधे कोलकाता या पुणे से व्यापारियों द्वारा मंगवाये जाते हैं और अच्छे खासे मुनाफे सहित बेचा जाता है। अगर हमारे यहाँ के युवा या घरेलू महिलाएँ ऐसे पौधे तैयार करें तो उन्हें अच्छी खासी आमदनी हो सकती है। इसी प्रकार नींबू, अमरूद, बेल, जामुन, आम, अनार आदि फलदार पौधे के उन्नत किस्मों की भी बाजार में अच्छी माँग होती है। अगर शहरी घरों की महिलायें प्रशिक्षण प्राप्त कर घरों में कचरा प्रबंधन और बागवानी सीख लें तो बेहतर आमदनी हो सकती है और साथ–ही–साथ शहरों में पर्यावरण सुधार की दिशा में भी काम किया जा सकता है।

## बागवानी में घरेलू बेकार वस्तुओं का प्रयोग

आजकल बाजार में घरों में बागवानी के लिये उपयुक्त हर तरह के पॉलिथीन के थैले और कंटेनर उपलब्ध हैं। किन्तु हम घरों में पौधों को उगाने के लिये लगभग हर आकार के प्लास्टिक के डिब्बे, पैकिंग सामग्री, बोरी, बोतल, ट्रे, टिन के डिब्बे, पी.वी.सी. पाइप, पेंट के खाली डिब्बे, लकड़ी के डिब्बे आदि का प्रयोग कर सकते हैं। डिब्बों को हम आवश्यकतानुसार काट कर आकार दे सकते हैं। ईंटों से भी अपनी आवश्यकतानुसार घेरा बनाकर एवं अंदर की तरफ छिद्रयुक्त पॉलिथीन लगाकर हम पौधों को सफलतापूर्वक उगा सकते हैं। पालक, धनिया, प्याज, लहसुन आदि के लिये पॉलिथीन लगाकर ईंटों की मदद से मात्र 15 से 20 सेंटीमीटर ऊँची क्यारीनुमा आकार दे सकते हैं। शिमला मिर्च, टमाटर, बैगन आदि के लिये भी हम ईंटों की सहायता से अंदर पॉलिथीन लगाकार लगभग 12–18 इंच ऊँची ऐसी संरचनाएँ बना सकते हैं। कुछ लोग ड्रम को दो भागों में काटकर और नीचे की तरफ एक लोहे के पाइप को गर्म कर चारों तरफ छेद कर फलदार पौधों को भी सफलतापूर्वक उगाते हैं। मूली, गाजर आदि के लिये बोतल या गहरे आकार के डिब्बे भी प्रयोग कर सकते हैं। एडीनियम के बीजों से पौध उगाने के लिये ट्रे में हम खाद और बालू/मौरंग के मिश्रण का प्रयोग कर सकते हैं। एडीनियम चूँकि एक शुष्क जलवायु का पौधा है, इसलिये इसके पौधों में कभी पानी नहीं रुकना चाहिए। एडीनियम के बीजू पौधों को तैयार कर बाजार में बेचने से भी अच्छी आमदनी होती है। इस पौधों पर उन्नत किस्म के एडीनियम की कलम बाँध कर आमदनी में और वृद्धि की जा सकती है।

# फल एवं सब्जियों का मानव पोषण में महत्व

श्याम राज सिंह[1] एवं विजय कुमार सोनी[2]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

मानव को स्वस्थ रहने के लिये उसे संतुलित भोजन मिलना आवश्यक हैं। संतुलित भोजन में फलों एवं सब्जियों का विशेष महत्व है क्योंकि ये हमारे शरीर के लिये रक्षक का कार्य करते हैं। इससे हमें ऐसे खनिज तत्व, विटामिन एवं अन्यान्य पोषक पदार्थ प्राप्त होते हैं जो शरीर की वृद्धि के साथ–साथ उसे निरोग रखने में भी सहायक होते हैं। इन तत्वों की कमी होने पर शरीर में कुपोषण के लक्षण पैदा हो जाते हैं। हमारे देश में कुपोषण की समस्या अत्यंत गंभीर है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार हमारे देश में पांच साल से कम उम्र के 53 प्रतिशत बच्चे कुपोषित और कम वजन वाले हैं। वर्तमान समय में भारत दुनिया के 40 प्रतिशत कुपोषित बच्चों का घर है जबकि दुनिया की कुल आबादी में इसका हिस्सा केवल 20 प्रतिशत ही है।

हमारे देश की जनसंख्या (विशेषकर महिलाएँ एवं बच्चे) का एक बड़ा हिस्सा, कुपोषण से ग्रस्त हैं। यहाँ एक तिहाई बच्चे सामान्य से कम वजन के पैदा होते हैं तथा 60 प्रतिशत बच्चों में खून की कमी पायी गयी है। विटामिन 'ए' की कमी के कारण प्रति वर्ष लगभग 20000 बच्चे प्रभावित होते हैं। कुपोषण की समस्या गरीब एवं कम आय वाले लोगों में अधिक पायी जाती है। हमारे देश में सीमित मात्रा में लोगों को खाद्य दाल एवं तेल से कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा तो उपलब्ध हो जाती है परन्तु विटामिन एवं खनिज लवणों की कमी बनी रहती है। कुपोषण की समस्या विटामिन एवं खनिज लवणों की कमी से अधिक होती है और इसे दूर करने के लिये आहार में सब्जियों एवं फलों का एक निर्धारित मात्रा में सम्मिलित होना बहुत जरूरी है। इनसे हमें खाद्य रेशा, खनिज लवण एवं विटामिन के साथ–साथ कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा तत्व प्राप्त होते हैं जो अन्य से नहीं प्राप्त होते। इसलिए सब्जियों एवं फलों को रक्षक भोजन का नाम दिया गया है। भोजन विशेषज्ञों एवं वैज्ञानिकों के अनुसार हमारा भोजन संतुलित तभी होगा जब प्रत्येक वयस्क अपने आहार में 300 ग्राम सब्जियों (120 ग्राम पत्तेदार, 80 ग्राम जड़ तथा 100 ग्राम अन्य) एवं 65–80 ग्राम फलों का सेवन करें। हमारे देश में शाकाहारी लोगों की संख्या अधिक होने के कारण अपने भोजन में सब्जियों की मात्रा को बढ़ाना चाहिए। देश की एक तिहाई महिलायें कुपोषण की शिकार हैं जबकि 20 प्रतिशत के बच्चों का जन्म देने के दौरान कुपोषण के कारण ही मृत्यु हो जाती है।

सब्जियों एवं फलों के उपयोग एवं उनकी उपलब्धता को बढ़ाने में गृहवाटिका या पोषण–वाटिका बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है। सभी घरों या उसके आस–पास थोड़ी बहुत जमीन अवश्य होती है जिसका उपयोग फल एवं सब्जियाँ पैदा करने के लिये आसानी से किया जा सकता है। गृहवाटिका से फल एवं सब्जियाँ प्राप्त हो सकती हैं जिनका पोषक मान विशेषकर विटामिन का स्तर बहुत ऊँचा होता है। इसके साथ–साथ विभिन्न प्रकार के कीटनाशी जो भारी मात्रा में सब्जी उत्पादक प्रयोग करते हैं उन्हें खाने से हम बच सकते हैं। गृहवाटिका लगाने से घर के सदस्यों के खाली समय का सही उपयोग हो जाता है तथा भोजन के लिये ताजी सब्जियाँ एवं फल भी मिलने लगते हैं।

*देश में 5 साल तक के 56 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के कारण मरते हैं।*

## फलों से पोषण सुरक्षा

फलों का पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण स्थान है। विटामिन एवं खनिज लवणों की कमी से होने वाले स्वास्थ्य संबंधी अनेक विकार फलों के निरंतर सेवन करने से समाप्त हो

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2]परियोजना सहायक

जाते हैं। फलों को कच्चा एवं सूखा (काजू, बदाम, पिस्ता, अखरोट) तथा परिरक्षित पदार्थ (स्क्वैश, चटनी, जैम, जैली, मार्मलेड, मुरब्बा इत्यादि) के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु परिरक्षित के रूप में इस्तेमाल करने से ताजे फलों की तुलना में कम पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। परिरक्षण के विभिन्न स्तरों पर ऊष्मा का इस्तेमाल होता है तथा अनेक विटामिन इसके लिये संवेदनशील होते हैं जिसके कारण पोषक तत्वों में कमी आ जाती है। अगर फल एवं सब्जी को कम–से–कम ऊष्मा से उपचारित कर उपयोग में लाया जाये तो पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में रहते हैं। पका पीला आम, पपीता, खुबानी और पीले आड़ू कैरोटीन के उत्तम स्रोत होते हैं जो शरीर में विटामिन 'ए' की पूर्ति करते हैं। आँवला, अमरूद, बेर एवं नींबू वर्गीय फलों में विटामिन 'सी' अधिक होता है जबकि बदाम, काजू, पिस्ता में प्रोटीन पाया जाता है। वसा से भरपूर फलों में अखरोट, बदाम, काजू, पिस्ता आदि महत्वपूर्ण हैं। कुछ प्रमुख फलों में पाये जाने वाले पोषक तत्व निम्नलिखित सारणी में दिये गये हैं। प्रयास करना चाहिए कि मौसमी फलों एवं ताजी सब्जियों का अधिक–से–अधिक उपयोग करें क्योंकि इनमें पोषक तत्व ज्यादा होते हैं जिनसे अधिक पोषण सुरक्षा प्राप्त होती है।

## प्रमुख फलों में पाये जाने वाले पोषक तत्व (प्रति 100 ग्राम)

| Qy | i ksVhu ¼xke½ | d kc kgkb MsV ¼xke½ | d SYl ; e ¼fe y hx ke½ | y kg k ¼fe y hx ke½ | i . kZhr d ¼d Sj kVhu½ ¼fe y hx ke½ | Fkk; se hu ¼fe y hx ke½ | fo Vkfe u l h ¼fe y hx ke½ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| आँवला | 0.05 | 13.7 | 50.00 | 1.20 | 9.00 | 0.03 | 600.00 |
| सेव | 0.20 | 14.1 | 7.00 | 0.30 | 90.00 | 0.03 | 7.00 |
| खुबानी | 1.00 | 12.80 | 17.00 | 0.50 | 2700.00 | 0.03 | 7.00 |
| केला | 22.20 | 8.00 | 0.70 | 190.00 | 0.05 | 10.00 | - |
| अंगूर | 16.50 | 20.00 | 0.50 | - | - | 1.00 | - |
| अमरूद | 0.10 | 9.00 | 50.00 | 1.20 | - | 0.02 | 15.00 |
| नींबू | 0.50 | 9.30 | 40.00 | 0.70 | - | - | 50.00 |
| आम | 0.60 | 16.90 | 14.00 | 1.30 | 2743.00 | 0.05 | 15.00 |
| संतरा | 1.00 | 12.20 | 41.00 | 0.40 | 200.00 | 0.10 | 50.00 |
| पपीता | 0.60 | 7.20 | 17.00 | 0.50 | 566.00 | 0.04 | 57.00 |
| आड़ू | 0.60 | 9.70 | 9.00 | 0.50 | 1330.00 | 0.02 | - |
| चीकू | - | 28.00 | 1.20 | 97.00 | - | 6.00 | - |
| टमाटर | 0.90 | 3.60 | 48.00 | 0.40 | 351.00 | 0.12 | 27.00 |

## सब्जियों से पोषण सुरक्षा

संतुलित भोजन एवं पोषण सुरक्षा में सब्जियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पोषक तत्वों की उपलब्धता भिन्न–भिन्न सब्जियों में से अलग–अलग होती हैं तथा इन्हें किस रूप में प्रयोग किया जाता है' इस पर भी प्राप्त होने वाले पौष्टिक तत्वों की मात्रा निर्भर करती है। अधिकांश सब्जियों को पकाकर खाया जाता है। वहीं शलजम, मूली, गाजर, ककड़ी, प्याज, टमाटर, पत्तागोभी आदि को प्रायः कच्चे अवस्था में सलाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। तरबूज, खरबूज आदि को पकने के बाद फलों के रूप में खाया जाता है जबकि कुछ सब्जियों जैसे प्याज, लहसुन, अदरक, पोदिना, धनियाँ आदि को मसाले की तरह प्रयोग किया जाता है। सब्जियों को कच्चा, पकाकर, भूनकर, सलाद आदि प्रकार से मसाले की तरह तथा ताजी–वासी अवस्था में खाने से इनसे प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों में अंतर आता है। सब्जियों से ज्यादा पोषक

तत्व के लिये उन्हें कच्चा या उबालकर या कम पकाकर खाना चाहिए। मेथी, फूलगोभी, करेला, बैंगन आदि सब्जियों को सुखाकर बेमौसम में खाया जा सकता है। इसी प्रकार टमाटर, गाजर, मिर्च, फूलगोभी, मूली, करेला, आलू, पेठा आदि को सास, सिरका, चटनी, अचार, चिप्स, मुरब्बा, मिठाई आदि बनाकर खाने में उपयोग किया जा सकता है। परन्तु ताजी हरी सब्जियों के प्रयोग से ज्यादा पोषण सुरक्षा प्राप्त होती है। कुछ प्रमुख सब्जियों में पाये जाने वाले पोषक तत्व निम्नलिखित सारणी में दिये गये हैं।

## प्रमुख सब्जियों में पाये जाने वाले पोषक तत्व (प्रति 100 ग्राम)

| फल | प्रोटीन (ग्राम) | कार्बोहाइड्रेट (ग्राम) | कैल्शियम (मि ली ग्राम) | लौह (मि ली ग्राम) | कैरोटीन (मि ली ग्राम) | थायमीन (मि ली ग्राम) | विटामिन सी (मि ली ग्राम) |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| चौलाई | 4.0 | 6.1 | 397.00 | 25.5 | 5520.00 | 0.03 | 99.0 |
| पालक | 3.4 | 6.5 | 380.00 | 16.2 | 5862.00 | 0.26 | 70.00 |
| मेथी | 4.4 | 6.0 | 395.00 | 16.5 | 5862.00 | 0.26 | 70.00 |
| पत्तागोभी | 1.8 | 4.6 | 39.00 | 1.8 | 1200.00 | 0.06 | 124.0 |
| सहिजन पत्ती | 4.4 | 6.0 | 395.00 | 16.5 | 2340.00 | 0.04 | 52.0 |
| पुदीना | 4.8 | 5.8 | 200.00 | 15.6 | 1620.00 | 0.05 | 27.0 |
| शलजम | 1.7 | 8.8 | 18.00 | 1.0 | - | 0.04 | 10.0 |
| प्याज | 1.2 | 11.1 | 47.00 | 0.7 | - | 0.08 | 11.0 |
| मूली | 0.7 | 3.4 | 35.00 | 0.4 | 3.00 | 0.06 | 15.0 |
| शकरकन्द | 1.2 | 28.2 | 46.00 | 0.8 | 6.00 | 0.08 | 11.0 |
| करेला | 1.6 | 4.2 | 20.00 | 1.6 | 126.00 | 0.07 | 88.0 |
| बैंगन | 1.4 | 4.0 | 18.00 | 0.9 | 74.00 | 0.04 | 12.0 |
| फूलगोभी | 2.6 | 4.0 | 30.00 | 1.5 | 30.00 | 0.04 | 56.0 |
| लोबिया | 3.5 | 8.1 | 72.00 | 2.5 | 564.00 | 0.07 | 14.0 |
| सहिजन फली | 2.5 | 3.7 | 30.00 | 5.3 | 110.00 | 0.05 | 120.0 |
| फ्रेंचबीन | 1.7 | 4.5 | 50.00 | 1.7 | 132.00 | 0.08 | 24.0 |
| भिण्डी | 1.9 | 6.4 | 66.00 | 1.5 | 52.00 | 0.07 | 13.0 |
| मटर | 7.2 | 15.9 | 20.00 | 1.5 | 83.00 | 0.25 | 9.0 |
| कद्दू | 1.4 | 4.6 | 10.00 | 0.7 | 50.00 | 0.05 | 2.0 |
| तोरई | 0.5 | 3.4 | 18.00 | 0.5 | 33.00 | - | 5.0 |
| चिचिंडा | 0.5 | 3.3 | 26.00 | 0.3 | 96.00 | 0.04 | - |
| आलू | - | - | 10.00 | 0.4 | 24.00 | - | 17.0 |

## फलों एवं सब्जियों में पाये जाने वाले प्रमुख पोषक तत्व

### विटामिन 'ए'

विटामिन 'ए' आँख, त्वचा एवं शरीर की वृद्धि के लिये आवश्यक है। इस विटामिन की कमी से रात में अंधापन (रतौंधी), आँखों में लाली, त्वचा की बीमारी, बच्चों का बढ़वार रुकना जैसी बीमारियाँ हो जाती हैं। यह विटामिन बीटा–कैरोटीन के रूप में पपीता, आम, कद्दू, चुकंदर, टमाटर तथा हरी पत्तेदार सब्जियों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

### विटामिन 'बी'

इस समूह के विटामिन में राइबोफ्लेविन, निकोटिनिक

एसिड, पेंटोथेनिक एसिड, फॉलिक एसिड, विटामिन बी–12 आदि मुख्य हैं। इस समूह का सबसे महत्वपूर्ण विटामिन बी–1 या थायेमीन है। इस विटामिन की कमी से 'बेरी–बेरी' रोग, भूख नहीं लगना, शरीर के वजन में कमी आदि समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। यह विटामिन शरीर की वृद्धि, विकास तथा वंश विकास क्रियाओं में सहायक हैं। सलाद, पत्तागोभी, गाजर, प्याज आदि हरी सब्जियों में विटामिन 'बी' पाया जाता है।

### विटामिन 'सी'

विटामिन 'सी' की कमी से 'स्कर्वी' नामक बीमारी होती है। इसके अलावा विटामिन 'सी' की कमी से दाँतों एवं मसूड़ों से खून निकलना, गठिया, शरीर के घावों कर देर से भरना, सर्दी जुकाम तथा शरीर के प्रतिरोधक क्षमता में भी कमी आती है। विटामिन 'सी' मुख्य रूप से आँवला, अमरूद, नींबू वर्गीय फल जैसे संतरा, नींबू, मौसमी, टमाटर तथा हरी पत्तेदार सब्जियों में पाया जाता है। उच्च ताप एवं भंडारण समय का प्रभाव इस विटामिन पर ज्यादा पड़ता है तथा इसकी मात्रा में कमी आती है।

### लौह तत्व

यह हमारे शरीर का एक प्रमुख तत्व है। यह हीमोग्लोबिन का मुख्य अंग है तथा यह शरीर में ऑक्सीजन को लेकर चलने में प्रमुख भूमिका निभाता है। हरी पत्तेदार सब्जियाँ लौह तत्व के प्रमुख एवं सस्ते स्रोत हैं।

### कैल्सियम

कैल्सियम मुख्य रूप से दांत एवं हड्डियों में पाया जाता है। यह दिल की गति को सामान्य रखने तथा कोशिकाओं के संकुचन में प्रमुख भूमिका निभाता है। हरी पत्तेदार सब्जियाँ कैल्सियम का प्रमुख स्रोत हैं।

### फॉस्फोरस

यह शरीर के ऊतकों की क्रियाओं के लिये आवश्यक है। कार्बोहाइड्रेट के ऑक्सीजनीकरण के लिये फॉस्फोरस की आवश्यकता होती है। इस पौष्टिक तत्व की प्रचुर मात्रा आलू, गाजर, टमाटर, खीरा, करेला, पालक, फूलगोभी जैसी सब्जियों में पायी जाती है।

### खाद्य रेशा

पाचकीय रेशा हमारे भोजन का अभिन्न अंग है और इसे फलों एवं सब्जियों के द्वारा आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। हरी पत्तेदार सब्जियाँ, आँवला, अनार, सेब, केला आदि से रेशा प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। मधुमेह, उच्च रक्तचाप, दिल की बीमारियों से बचाव में रेशा सहायक है।

### कार्बोहाइड्रेट

आलू, शकरकंद, मटर आदि सब्जियाँ तथा केला, एवोकैडो, आम आदि फल कार्बोहाइड्रेट के प्रमुख स्रोत हैं। इनके प्रयोग से शरीर को शक्ति तथा कैलोरी प्राप्त होती है एवं शरीर स्वस्थ जिससे रहता है।

### प्रोटीन

प्रोटीन एक महत्वपूर्ण पौष्टिक तत्व है। ऊतक तथा कोशिका निर्माण में प्रोटीन की मुख्य भूमिका है। शरीर की टूट–फूट एवं अनेक महत्वपूर्ण क्रियाओं के लिये प्रोटीन बहुत उपयोगी तत्व है। प्रोटीन की प्राप्ति मटर, सेम, बाकला, फ्रेंचबीन, चौलाई आदि सब्जियों से होती है तथा बादाम, काजू, पिस्ता एवं फलों में प्रोटीन का अंश काफी मात्रा में होता है।

फल एवं सब्जियाँ मानव स्वास्थ्य के साथ–साथ उनकी आर्थिक समृद्धि के लिये भी अत्यंत उपयुक्त माध्यम है। प्रति इकाई अधिक उत्पादन, प्रति इकाई अधिक लाभ, विभिन्न परिस्थितियों में उगने की क्षमता, प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग द्वारा फलों की उन्नत खेती के लिये आवश्यक जानकारी एवं सुझाव दिया जा रहा है। आशा है इसमें दी गयी जानकारी यहाँ के कृषकों एवं नीति निर्धारकों को क्षेत्र में फल उत्पादन को आगे बढ़ाने में मदद करेगी। फल एवं सब्जियों का उत्पादन बढ़ाने के लिये पोषण वाटिका एक महत्वपूर्ण पहलू है। कुपोषण से बचने के लिये देश के प्रत्येक नागरिक को आगे आकर अपना सहयोग तथा फलों एवं सब्जियों का सेवन कर एक स्वस्थ समाज की रचना करनी होगी।

# सिंचाई जल की उपलब्धता : एक चुनौती

विनोद कुमार सिंह[1], घनश्याम पाण्डेय[2] एवं ज्योति मीना[3]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

जल के बिना जीवन की कल्पना असंभव है। कृषि उत्पादों के उत्पादन के लिये जल एक अपरिहार्य तत्व है। वर्तमान समय में भूमिगत जल का स्तर तेजी से गिरता जा रहा है। राजस्थान के मरुस्थली क्षेत्रों में तो जल का स्तर दो सौ प्रतिशत तक गिर गया है। गर्म जलवायु वाला देश होने के कारण भारत में सतह पर गिरने वाली पानी के वाष्पन की गति अधिक होने से गर्मी के दिनों में 50 प्रतिशत से अधिक पानी भाप बनकर उड़ जाता है। गर्म जलवायु और वन भूमि में कमी होने के कारण भू–जल के पुनर्भरण की प्रक्रिया को बहुत धीमा बना देते हैं। भूमि में जल सामान्यतया 3 किलोमीटर तक की गहराई तक ही पाया जाता है। गहराई के साथ–साथ चट्टानों का घनत्व बढ़ता जाता है और जल की उपलब्धता हेतु रंध्राकाश घटता जाता है। बहुत नीचे के चट्टानों में रंध्राकाश नहीं पाये जाते हैं। भू–जल का दोहन जितना सरल है उतना ही मुश्किल है उसका पुनर्भरण करना। जल प्रदूषण का एक मुख्य कारण है, विषैली धातुओं की मात्रा का बढ़ना। भू–जल सामान्यतः भौतिक एवं जैविक प्रकार को विषैलेपन से मुक्त माना जाता है। निकिल, कैडमियम, लीड, जिंक, मरकरी आदि भारी धातुएँ मृदा जल को मुख्य रूप से प्रदूषित करती हैं। ये भारी धातुएँ अंकुरण से लेकर बीज निर्माण तक की क्रियाओं को प्रभावित करती हैं। इनकी उपस्थिति में पैदा सब्जियों, फलों, अनाजों के उपयोग से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

कृषि में उपयोग होने वाली उर्वरकों और कीटनाशी दवाओं के रासायनिक पदार्थ भू–जल में मिल जाते हैं। सिंचित कृषि में इन रसायनों के बढ़ते प्रयोग को देखते हुए भू–जल गुणवत्ता विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। भू–जल प्रदूषण के निम्नलिखित कारण है।

1. शहरी क्षेत्रों के उद्योगों एवं कचरे से निकली भारी धातु के तत्वों का रिसकर नीचे चले जाना।
2. कृषि में रसायनों एवं उर्वरकों की बढ़ती एवं अधिक मात्रा का प्रयोग।
3. उथले भू–जल स्तर के कारण आर्सेनिक की विषाक्तता।

जल मृदा क्रियाओं और पौधों के जीवन को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक है। जल निम्नलिखित मृदा क्रियाओं के लिये आवश्यक है।

1. मृदा संरचना का विकास।
2. चट्टानों का अपक्षय।
3. मृदा के मूल पदार्थ का निर्माण।
4. मृदा प्रोफाइल का विकास।
5. मृदा ताप का संधारण।

### जल पौधों के जीवन के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य करता है।

1. जल पौधों का एक मुख्य अवयव है।
2. पौधों के जीवन हेतु यह खाद्य पदार्थ के रूप में कार्य करता है।
3. जल अच्छा विलायक होने के साथ पौधों के आवश्यक तत्वों का एक वाहक के रूप में कार्य करता है।
4. पौधों के तापमान को नियमित करता है।
5. मृदा की जैविक एवं रासायनिक क्रियाओं के लिये जल आवश्यक है।

### जल प्रदूषण एवं विषाक्तता की समस्या का निवारण

1. वनों का समुचित विकास किया जाये।
2. भूमि संरक्षण विधियों को अपनाया जाये जिससे मृदा की जलधारण क्षमता के विकास के साथ–साथ पोषक तत्वों का ह्रास कम हो।
3. मृदा नमी को संरक्षित करने के साथ–साथ फसल चक्र प्रबंधन किया जाये।
4. अपशिष्ट जल का उपचार के लिये कारखानों से निकलने वाले जहरीले अपशिष्ट पदार्थों एवं विषाक्त जल को उपचारित कर ही नदियों या जलाशयों में लाया जाये जिसे सिंचाई में प्रयोग किया जा सके।

[1]मुख्य तकनीकी अधिकारी, [2]प्रधान वैज्ञानिक एवं [3]तकनीकी सहायक

5. मृत जीवों एवं कचरे को नदियों में नहीं बहाया जाये।
6. जिन फसलों में कीटनाशक रसायनों का प्रयोग हुआ हो, उन खेतों से बहने वाले पानी को, पीने वाले पानी के जलाशयों में नहीं गिरायें।
7. सीवर का जल शहर से बाहर ही उपचारित कर नदियों में गिराया जाये।
8. रसायनों एवं कीटनाशकों का संतुलित मात्रा में प्रयोग किया जाये। इनके प्रयोग करते समय ध्यान रहे कि सिंचाई जल के साथ ये न तो रिसने और न ही बहने पायें।
9. उन्नत जल प्रबंध विधियों को अपनाया जाये। शस्य नियोजन, सिंचाई की विधियों में बदलाव किया जाये। खराब सिंचाई जल को उपचारित कर उन्हें सुधारकर मिलाकर निकासी जल का पुनः उपयोग कर इस समस्या को कम किया जा सकता है।
10. जल के शुद्धिकरण में जलकुंभी की विशेष भूमिका है। यह पानी से भारी हानिकारक कैडियम, निकिल, पारा आदि धातुओं को सोखने की क्षमता रखती है।
11. नाइट्रेट और फॉस्फेट झीलों, जलाशयों में शैवाल की वृद्धि को प्रेरित करता है जिससे ऑक्सीजन की कमी हो जाती है और मछलियों का उत्पादन भी कम हो जाता है। इसके लिये नाइट्रेट और फॉस्फेट युक्त उर्वरकों का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाये।

सिंचाई विकास के फलस्वरूप अनेक अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभाव कृषि में सामने आये हैं।

## (अ) अनुकूल प्रभाव

जल संसाधन एवं सिंचाई परियोजनाओं के विकास से कृषि का उत्पाद बढ़ा है। जल विद्युत उत्पादन में अधिक सफलता प्राप्त हुई है। मरूभूमि में भी कृषि फसलों का उत्पादन संभव हो सका है। सिंचाई जल की उपलब्धता के कारण कृषकों की आर्थिक दशा में सुधार हुआ है।

## (ब) प्रतिकूल प्रभाव

जल संसाधन विकास की सभी परियोजनाएँ पर्यावरणीय प्रभाव के अनुकूल नहीं होती है। इनका सीधा प्रभाव कृषि उत्पादन पर पड़ता है। जनसंख्या विस्थापन भूमि उपयोग अपवर्तन, मृदा लवणीकरण, जलाशयों के कारण भूकंप की आशंका का होना और जलीय जीवन में बाधा आती है। वनों का जलमग्न होना वनस्पति एवं जीव–जंतुओं के लिये संकट उत्पन्न होना नदी जल की गुणवत्ता में कमी एवं भूमि जल प्रदूषण का होना इसके अंतर्गत आता है।

## सामान्य सिंचाई जल की गुणवत्ता

| Øe la | tyi $ke hVj | lkekU; Jskh flapkbZ ty |
|---|---|---|
| 1. | विद्युत चालकता (डेसीमीटर/मीटर) | 0–3.0 |
| 2. | कुल विलेय ठोस (मिलीग्राम/लीटर) | 0–2000 |
| 3. | कैल्सियम (मिली इक्वेलेंट/लीटर) | 0–20 |
| 4. | मैग्नीशियम (मिली इक्वेलेंट/लीटर) | 0–5 |
| 5. | सोडियम (मिली इक्वेलेंट/लीटर) | 0–40 |
| 6. | कार्बोनेट (मिली इक्वेलेंट/लीटर) | 0–1 |
| 7. | बाइकार्बोनेट (मिली इक्वेलेंट/लीटर) | 0–10 |
| 8. | क्लोराइड (मिली इक्वेलेंट/लीटर) | 0–30 |
| 9. | सल्फेट (मिली इक्वेलेंट/लीटर) | 0–20 |
| 10. | फास्फेट फासफोरस (मिलीग्राम/लीटर) | 0–2 |
| 11. | पोटैशियम (मिलीग्राम/लीटर) | 0–2 |
| 12. | बोरॉन (मिलीग्राम/लीटर) | 0–2 |

## प्रमुख पर्यावरणीय जागरूकता दिवस एवं अधिनियम

| | | |
|---|---|---|
| विश्व पर्यावरण दिवस | – | 5 जून |
| पृथ्वी दिवस | – | 22 अप्रैल |
| राष्ट्रीय प्रदूषण निवारण दिवस | – | 2 दिसंबर |
| राष्ट्रीय पर्यावरण संरक्षण | – | 3 दिसंबर |
| विश्व जल दिवस | – | 22 मार्च |
| वन्य जीव (सुरक्षा) | – | 1972 |
| जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम | – | 1974 |
| वन (संरक्षण) अधिनियम | – | 1980 |
| पर्यावरण (सुरक्षा) अधिनियम | – | 1986 |

# वैज्ञानिक विधि से पपीता की खेती

डी. के. तिवारी[1], डी. पाण्डेय[2] एवं पी. के. मिश्र[3]

[2]भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

[1,3]कृषि विज्ञान केन्द्र, पश्चिम चम्पारण, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा समस्तीपुर (बिहार)

पपीता उष्णकटिबंधीय जलवायु में पैदा किया जाने वाला एक महत्वपूर्ण फल है। इसे उपोष्ण जलवायु वाले क्षेत्र में भी सफलतापूर्वक पैदा किया जाता है। भारत में उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, असम, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, उड़ीसा आदि राज्यों में इसकी खेती की जाती है। अन्य फलों की अपेक्षा अधिक उत्पादकता एवं लाभ प्राप्त होने के कारण अनेक किसान पपीता की बागवानी की ओर आकर्षित हो रहे हैं। पोषक तत्वों की दृष्टि से पपीता एक बहुपयोगी फल है। गृहवाटिका में लगाने के लिये भी यह एक अत्यन्त ही उपयुक्त फल है। दक्षिण एवं मध्य भारत में पपीता के कच्चे फलों से पपेन निकालने का प्रचलन काफी पुराना है। सुखाया हुआ पपेन लगभग 1000 से 8000 रुपये प्रति किलोग्राम गुणवत्ता के आधार पर बिकता है। औषधीय एवं औद्योगिक महत्व के कारण मध्य, पूर्वी एवं उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में यह ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

पपीता के फलों में पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते हैं। यह शर्करा और विटामिन–ए का उत्तम स्रोत है। इसमें मुख्यतः 89.6 प्रतिशत नमी, 0.5 प्रतिशत प्रोटीन, 9.5 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 2020 आई.यू. विटामिन–ए इत्यादि पाये जाते हैं। इसका फल के अतिरिक्त जैम, चटनी, पेठा, मिठाई आदि बनाने में भी उपयोग किया जाता है। इसके कच्चे फलों को पकाकर इसे सब्जी, हलवा एवं खीर के रूप में खाया जाता है। इसके कच्चे फलों से निकलने वाले दूध को सूखाकर पपेन भी बनाया जाता है जो पेट तथा मुँह के छालों, दाद–खाज आदि रोगों के औषधि निर्माण, उद्योगों तथा सौंदर्य प्रसाधनों को बनाने में इस्तेमाल किया जाता है।

## मिट्टी और जलवायु

दोमट एवं हल्की मिट्टी पपीता की खेती के लिये सर्वाधिक उपयुक्त होती है। ढलुआ या ऐसे खेत जहाँ जल निकास की समुचित व्यवस्था हो पपीता की बागवानी के लिये अनुकूल होती है। पाला रहित गर्म जलवायु वाले क्षेत्र जहाँ औसतन 100 सेंटीमीटर से अधिक वर्षा होती हो, पपीते की खेती के लिये अच्छी मानी जाती है।

## पौध प्रवर्धन, बीज दर एवं नर्सरी प्रबंधन

पपीता का प्रवर्धन मुख्यतः बीज से किया जाता है। इसकी पौध की तैयारी के लिये निम्नलिखित सुझावों को ध्यान में रखना आवश्यक है। बीज हमेशा उद्यान विभाग, बीज निगमों, कृषि विश्वविद्यालय अथवा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद जैसे सरकारी प्रतिष्ठानों से खरीदा जाना चाहिए। अनेक देशी और विदेशी कंपनियाँ भी बीज बेचती है। पपीता के प्रति ग्राम बीज में औसतन 65–70 बीजों की संख्या होती है। अगर औसतन 80 प्रतिशत बीज अंकुरित होते हैं और 80 प्रतिशत स्वस्थ बिचड़े तैयार हो जाते हैं तो गायनोडायोसियस प्रजाति के लिये 250–300 ग्राम/हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है जबकि डायोसियस प्रजाति के लिये 400 से 500 ग्राम/हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है।

पौधाशाला तैयार करने के लिये ऊँचे स्थान का चयन करना चाहिए जहाँ पानी का जमाव नहीं होता हो। नर्सरी के लिये 10 से 15 सेंटीमीटर ऊँची एवं 3×1 मीटर चौड़ी क्यारी बनायी जाती है। इसे तैयार करने के लिये पत्तियों की सड़ी गली खाद, बालू मिट्टी को *फार्मलीन* (500 मिलीलीटर 30 लीटर पानी में) के घोल से सिंचित कर पॉलिथीन चादर से ढक देना चाहिए। तीस दिनों के बाद पॉलिथीन हटाकर मिट्टी को पुनः तैयार कर क्यारी बना लेनी चाहिए। *फार्मलीन* नहीं मिलने पर फफूँदनाशक जैसे कार्बेन्डाजिम (0.2 प्रतिशत का घोल भी उपयोग में लाया जा सकता है।

बीजों को बोने से पहले इन्हें पूरी रात सादे पानी या जिब्रलिक एसिड (200 पी.पी.एम.) में भिगोने से अच्छा अंकुरण अच्छा होता है। इसके बाद बीज को केप्टान या सेरेसान (5 ग्राम/किलोग्राम बीज) में मिलाने के बाद 1 सेंटीमीटर गहरी पक्तियों में 2–3 सेंटीमीटर की दूरी पर गिराकर सूखी पत्तियों के खाद में मिट्टी के मिश्रण (1:1)

[1]विषय वस्तु विशेषज्ञ–उद्यान, [2] प्रधान वैज्ञानिक एवं [3]कार्यक्रम सहायक

से करीब 0.5 सेंटीमीटर परत से ढक देना चाहिए। इस परत के ऊपर घास–फूस डालना चाहिए। बोआई के बाद रोजाना हल्की सिंचाई की आवश्यकता होती है। बीज के उगते ही धान के भूसे को हटा देना चाहिए तथा किसी फफूँनाशक दवाई जैसे 0.2 प्रतिशत डाइथेन एम–45 या ब्लाइटाक्स का छिड़काव करना चाहिए। नर्सरी मे जब पौधे 15 से 20 सेंटीमीटर के हो जायें या उन पर 4 से 6 पत्तियाँ आ जाये तब वे खेतों में स्थानान्तरण के लिये तैयार हो जाते हैं। नर्सरी में तैयार पौधों पर मैलाथियान या मोनोक्रोटोफास (0.1 प्रतिशत) जैसे कीटनाशक दवा का निरन्तर छिड़काव करने से विषाणु रोगों को फैलाने वाले कीटों को नियंत्रित किया जा सकता है। उत्तर भारत में नर्सरी जून के अंत या मार्च के प्रथम सप्ताह में लगायी जाती है जिससे सर्दियों में पौधों को पाले से बचाया जा सके।

## उन्नत प्रजातियाँ

### (क) गायनोडायोसियस प्रजाति (मादा या उभयलिंगी पुष्पन)

रेड लेडी–786, पूसा डेलिसियस, पूसा मैजेस्टी, कुर्गहनीड्यू, सूर्या, सनराइज सोलो, हाईब्रीड–39, हाईब्रीड–54, सीओ–3 इत्यादि।

### (ख) डायोसियस प्रजाति (नर या मादा पुष्पन)

पूसा जायन्ट, सीओ–1, सीओ–2, सीओ–4, पूसा ड्वार्फ, पूसा नन्हा, राँची, पन्त–1 इत्यादि।

## मौसम

भारत में पपीता को खेत में मुख्यतः तीन मौसमों में लगाया जाता है।

### बसन्त ऋतु (फरवरी-मार्च)

दक्षिण तथा पश्चिम भारत में पपीता का बीज जनवरी माह में नर्सरी में डालते हैं जिसे फरवरी–मार्च तक मुख्य खेत में लगा दिया जाता है। ऐसे बाग मानसून में आते ही फल देना प्रारंभ कर देते हैं तथा अक्टूबर–नवंबर माह से फलों का पकना शुरू हो जाता है जो अगले वर्ष मई–जून तक समाप्त हो जाते हैं।

### मानसून ऋतु (जून-जुलाई)

भारत के उत्तर पश्चिमी इलाकों में जून के शुरू में बीज नर्सरी में बो दी जाती है तथा जुलाई के अंत में मुख्य खेत में इन्हें लगाते हैं। इस ऋतु में लगाये गये पपीते में मुख्य फलन अगले मानूसन में ही होता है।

### शरद ऋतु (अक्टूबर-नवंबर)

भारत के उत्तर–पूर्वी इलाकों में जहाँ पानी अधिक होता है वहाँ अगस्त के अंत में या सितंबर के शुरू में नर्सरी में बीज की बोआई करते हैं तथा अक्टूबर के अंत या नवंबर के शुरु में मुख्य खेत में पौधों को लगा देते हैं। इसका फलन अगले मानसून से प्रारंभ हो जाता है।

## खेत की तैयारी बिचड़ा उपचार एवं पौध रोपन

मुख्य खेत की तैयारी के लिये खेत की एक गहरी एवं दो हल्की जुताई करें। तत्पश्चात कतार–से–कतार एवं पौधा से पौधा 2 मीटर की दूरी पर 60×60×60 सेंटीमीटर आकार के गड्ढों को खोदकर लगाना चाहिए। प्रत्येक गड्ढे में 20 किलोग्राम गोबर की सड़ी खाद, एक किलोग्राम नीम की खली को गड्ढों के ऊपरी भाग से निकाले गये मिट्टी के साथ मिलाकर गड्ढों को भरें। एक महीने के बाद में तैयार थालों में गायनोडायोसियस प्रजाति का एक पौधा प्रति थाला की दर से लगायें। वही डायोसियस प्रजाति के तीन पौधे त्रिकोण विधि से लगायें। मुख्य खेत में लगाने से पहले बिचड़ों को फफूँदनाशक दवा मैन्कोजेब एवं मेटलक्जिल (64:8) के 0.25 प्रतिशत घोल से उपचारित करें जिससे बिचड़े रोपाई के उपरांत डैम्पिंगआफ रोग से प्रभावित नहीं हों। इसी प्रकार बिचड़ों के ऊपर मुख्य खेत में लगाने के पूर्व इमिडाक्लोप्रिड नामक कीटनाशक की एक मिलीलीटर प्रति तीन लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें जिससे पौधो को रिंग स्पॉट वायरल रोग के संक्रमण से बचाया जा सके। बिचड़ों को मुख्य खेत में लगाये तथा लगाने के उपरांत आवश्यकतानुसार झरनों के फव्वारों से हल्की सिंचाई करें। जब पौधों में फूल आने लगे तब लिंग भेद करते हुए डायोसियस किस्म के पौधों की संख्या एक पौधा प्रति थाला कर 10 प्रतिशत नर पौधों को खेत में अवश्य रहने दें।

## खाद एव उर्वरक

पपीता की फसल को खाद एवं उर्वरक की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। प्रारंभ में जैविक खाद देने के साथ बाद में रासायनिक उर्वरक देना भी आवश्यक है। खेत की मिट्टी की जाँच कराने के उपरांत भूमि की उर्वराशक्ति के आधार पर 200–250 ग्राम नाइट्रोजन, 200–250 ग्राम फॉस्फोरस एवं 250–500 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटॉश को प्रति पौधे की दर से रोपाई के प्रथम, तृतीय, पाँचवे, साँतवे एवं नौवें महीने के उपरांत डालें।

## सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई

जाड़े में 15–20 दिनों के अंतराल एवं गर्मी के दिनों में 7–10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए तथा सिंचाई उपरांत आवश्यकतानुसार निराई–गुड़ाई करें। रिंग प्रणाली से सिंचाई सबसे अच्छी मानी जाती है क्योंकि इससे पौधों में तना गलन रोग का खतरा कम हो जाता है।

## अंतःशस्यन

पपीता के बाग में अनेक शाकीय फसलों को पौधों को पंक्तियों के बीच खुले स्थान पर लगाया जा सकता है। मिर्च, मूली, पत्ता गोभी, गांठ गोभी, टमाटर, मेथी, चौलाई आदि की फसलें अच्छी पायी गयी हैं। किन्तु इसके लिये सिंचाई एवं खाद आदि का प्रबंध भी सुनियोजित ढंग से करना चाहिए। पपीता को बाग में लगाने के छः महीने बाद तक इन शाकीय फसलों को पैदा किया जा सकता है।

## निराई-गुड़ाई

पौधों में बढवार के साथ ही निराई– गुड़ाई कर बाग को खरपतवारों से मुक्त रखना चाहिए। तना के चारों ओर मिट्टी की छोटी मेंढ बनानी चाहिये। ऐसा करने से पानी पौधे के तने को छू नहीं पाता है जिससे तना एवं जड़ सड़न रोग की संभावना कम रहती है।

## पाला से सुरक्षा

छोटे पौधों का पाले एवं ठंड से बचाव अत्यंत आवश्यक है। नवंबर के महीने में इन पौधों को घास–फूस, खरपतवार से ढक दें। हल्की सिंचाई की व्यवस्था कर पाले से पौधों को बचाया जा सकता है।

## फलों का विरलीकरण

फल लगने के लगभग एक महीने बाद, तनों पर कुछ फलों को बीच–बीच से निकालकर प्रति गाँठ औसतन दो फल छोड़ना आवश्यक है। ऐसा करने से बचे हुए फलों के आकार एवं गुणवत्ता में अच्छा विकास हो पाता है।

## फसल सुरक्षा

### जड़ एवं तना सड़न

इस रोग में जड़ एवं तना में सड़न आ जाती है। पौधों के ऊपर की पत्तियाँ मुरझाकर पीली होकर पौधे सूख जाते हैं। तने का निचला भाग तथा जड़ पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती है। इस रोग के नियंत्रण हेतु कापर ऑक्सीक्लोराइड नामक फफूँदनाशक के 0.3 से 0.5 प्रतिशत सांद्रता का घोल बनाकर पेड़ की जड़ों में डालें। विशेष स्थिति में कॉपर ऑक्सीक्लोइड में मेटलक्जिल एवं मैंकोजेब को 64:8 के अनुपात में मिलाकर मिश्रण तैयार कर लें एवं इसके 0.2 से 0.25 प्रतिशत सांद्रता वाली घोल को बनाकर पौधों की जड़ों के पास की मिट्टी में मिला दें।

### चूर्णी फफूँद

यह बीमारी एक फफूँद *ओडियम कैरिकी* द्वारा होता है जिसमें डंठलों, पत्तियों एवं फलों पर सफेद चूर्ण जैसा जमाव दिखने लगता है। दिन का तापक्रम 28–30 डिग्री सेंटीग्रेड तथा सापेक्षिक आर्द्रता 50 प्रतिशत से कम होने की स्थिति में यह रोग और अधिक तेजी से पपीता की फसल को प्रभावित करता है। आक्रान्त पौधों की पत्तियाँ सूखकर गिर जाती है। फल झड़ने की स्थिति में आ जाती है। इस रोग के नियंत्रण हेतु की 0.1 प्रतिशत सांद्रता का घोल बनाकर पत्तियों, डंठलों एवं फलों पर छिड़काव करें।

### फल सड़न (एन्थ्रेकनोज)

यह रोग *कोलेटोट्राइकम स्पेसिज* से होता है जो पत्तियों के डंठल एवं फलों को मुख्य रूप से प्रभावित करता है। इस रोग में फलों पर गोल जलीय धब्बे उत्पन्न होते हैं जो बाद में अपनी वृद्धि कर फलों को सड़ा देते हैं। इस रोग से बचाव हेतु कार्बेन्डाजिम नामक फफूँदनाशक की 0.1 प्रतिशत का घोल बनाकर फलों, पत्तियों एवं डंठलों पर छिड़काव करें।

### गलका रोग

यह रोग मुख्यतः बिचड़ों को पौधशाला में भारी क्षति पहुँचाता है। यह रोग भी एक फफूँद जनित रोग है। इस रोग से प्रभावित होने पर बिचड़े जमीन की सतह पर से गलकर बड़ी तेजी से पौधे गिरने (सूखकर) लगते हैं। इस रोग के नियंत्रण हेतु कॉपर ऑक्सीक्लोराइड नामक फफूँदनाशक दवा की 0.3 से 0.5 प्रतिशत का घोल बनाकर पौधशाला की मिट्टी में झरनों से डालकर ड्रेंच करें। विशेष परिस्थिति में कॉपर ऑक्सीक्लोराइड, मेटलक्जिल एवं मैंकेजेब का (64:8) अनुपात में मिलाकर मिश्रण के 0.25 प्रतिशत घोल बनाकर पौधशाला की मिट्टी में ड्रेंच करने से यह रोग आसानी से नियंत्रित हो जाता है।

### मोजेक, पत्रकुंचन, पत्रफटन एवं रिंग स्पाट विषाणु रोग

इन रोगों में पत्तियाँ हरित चित्तिदार हो जाती है और फटी सी दिखायी पड़ती हैं तथा इनके सिरे नुकीले हो जाते हैं। पत्तियाँ संकुचित हो जाती हैं। रिंग स्पॉट वायरल रोग में पत्तियों के डंठलों पर तेलीय लीजन बनकर फलों पर रिंग जैसे गोले–गोले धब्बे बन जाते हैं। इन रोगों से प्रभावित होने पर पौधों की वृद्धि रुक जाती हैं। फलन नहीं होता है एवं प्रभावित फल स्वादहीन हो जाते हैं एवं फलों से मिठास भी समाप्त हो जाता हैं। ये रोग विषाणु जनित रोग है तथा रोगों का फैलाव सफेद मक्खी एवं माहू द्वारा होता है। इन रोगों के नियंत्रण हेतु उर्वरकों के समेकित प्रयोग पर ध्यान देने की अत्यंत आवश्यकता है। नाइट्रोजन का अधिक प्रयोग इस रोग को बढ़ावा देता है। पौधशाला की अवस्था से पंद्रह दिनों के अंतराल पर इमिडाक्लोप्रिड या एसिटामिप्रिड नामक कीटनाशक का 0.03 प्रतिशत घोल बनाकर फसलों पर छिड़काव करते रहना इस रोग के नियंत्रण हेतु अति आवश्यक है।

### पपीता का गुच्छा रोग

इस रोग में पपीता के कोमल नये पत्ते गुच्छानुमा हो जाते हैं तथा फलन बन्द कर देते हैं। यह विषाणु रोग वर्षा के दिनों में होते हैं तथा जब तापमान एवं आर्द्रता काफी बढ़ जाती है, यह रोग काफी तेजी से फैलता है। प्रभावित पौधों को उखाड़कर जमीन में गाड़ दें। रोग के उपचार हेतु कीटनाशक से उपचारित करना आवश्यक होता है। कार्बनिक खादों एवं नीम की खली के इस्तेमाल इस रोग के नियंत्रण में सहायक सिद्ध होता है।

### सूत्रकृमि रोग

पपीते में अनेक प्रकार के सूत्रकृमि लगते हैं जिनमें जड़ की गाँठ वाले सूत्रकृमि तथा रेनीफार्म सूत्रकृमि बहुतायत में देखे जाते हैं। सूत्रकृमि से आक्रांत पौधे ऊपर से सूखने लगते हैं। पेड़ पर लगे फल भी सूखकर गिरने लगते हैं। इस रोग से बचाव हेतु कार्बोफ्यूरॉन 10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग की जानी चाहिए। जड़ के चारों तरफ कच्चे गोबर का घोल डालकर सिंचाई कर देने से इस रोग का बढ़वार रुक जाती है।

### फलों की तुड़ाई एवं विपणन

पपीता का पौध लगाये जाने के 10 से 14 महीने के पश्चात पका फल देने लगता है। उत्तर भारत के मैदानी भागों में बसंत ऋतु से गर्मियों तक तथा पहाड़ों पर फरवरी से मई माह तक इसके फल मिलते हैं। फलों की सतह पीलापन दिखते ही तुड़ाई करनी चाहिए। बाँस या फालसे की टोकरियों या लकड़ी की पेटियों में फलों को अखबारी पन्नों में लपेटकर बड़ी मंडी में भेजा जा सकता है।

एक पौधे से दो या तीन वर्ष तक फल लिये जा सकते हैं। किन्तु इसके लिये खाद एवं उर्वरक तथा सिंचाई का नियमित प्रबंधन करना आवश्यक है। प्रति पौधे से औसत 40 से 50 किलोग्राम फल बहुत छोटे आकार (150 से 200 ग्राम) से बड़े आकार (2–3 किलोग्राम) तक के पाये जाते हैं। मध्यम आकार वाले फल बाजार में अधिक बिकते हैं जिन्हें एक बार में काटकर खाया जा सके। कच्चे परन्तु बड़े आकार के फल बाजारों में सब्जी के रूप में भी बिकते हैं। अतः किसान उपर्युक्त पपीता उत्पादन की तकनीक को अपनाकर अधिक उत्पादन एवं लाभ प्राप्त कर सकते हैं जिससे उनके आर्थिक जीवन स्तर में काफी हद तक सुधार हो सकता है।

'y kd % v fHkok nu 'khy L; fu R; a o) ksi l fou %A
p Rok fj r L; o Fk Ur s v k; q| k ; 'kks cy e AA

Hkko kFkZ % जो व्यक्ति सुशील और विनम्र होते हैं, बड़ों का अभिवादन एवं सम्मान करने वाले होते है तथा अपने बुजुर्गों की सेवा करने वाले होते हैं उनकी आयु, विद्या, कीर्ति और बल, ये चारों में सदैव वृद्धि होती है।

'y kd % ; fLe u ~n s'k s u l Ee ku ks u o`fÙk u Zp c kU/ko k%A
u p fo| k e ks I; fLr o kl Lr = u d kj ; s AA

Hkko kFkZ % जिस देश में सम्मान न हो, जहाँ कोई आजीविका का साधन नहीं, जहाँ अपना कोई भाई–बन्धु न रहते हों और जहाँ विद्या–अध्ययन सम्भव न हो, ऐसे स्थान पर नहीं रहना चाहिए।

# आमदनी एवं गुणवत्ता हेतु आम के बागों में छत्र प्रबंधन

सुशील कुमार शुक्ल[1], घनश्याम पांडेय[2] एवं अजय कुमार त्रिवेदी[3]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

भारत में पैदा किये जाने वाले फलों में आम का एक प्रमुख स्थान है। आम की किस्मों में उपलब्ध फलों के स्वाद, रंग, आकार प्रकार में अद्वितीय विविधता और जनसाधारण में लोकप्रियता के कारण इसे फलों का राजा भी कहा जाता है। इसके व्यावसायिक उत्पादन हेतु लाख प्रयास किये जाने के बावजूद अभी भी बागों से पूर्ण क्षमता के अनुरूप उत्पादन एवं उत्पादकता प्राप्त नहीं हो पा रही है। आम एक सदाबहार वृक्ष होने के कारण सामान्य रूप से आम के बागों में काट–छाँट नहीं की जाती है। लेकिन गत लगभग 20 वर्षों से आम के पुराने वृक्षों के जीर्णोद्धार हेतु काट–छाँट की संस्तुति की जाती रही है। जीर्णोद्धार तकनीक अपनाने में अनेक बार किसान से तना बेधक कीट या अन्य प्रबंधन संबंधी चूक हो जाने पर काफी संख्या में वृक्ष मरते देखे गये हैं। आम के वृक्षों में वैज्ञानिक ढंग से काट–छाँट की आवश्यकता क्यों है और ये कैसे किया जायें?

## आम के घने बागों में कम उत्पादकता का मुख्य कारण

हमारे देश में आम का 2.21 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र है जिससे 18.643 मिलियन मैट्रिक टन उत्पादन होता है (2015–2016)। इस प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर आम की औसत उपज 8.44 टन हेक्टेयर प्राप्त होती है। ऐसा भी अनुमान है कि इसके लगभग 35 से 40 प्रतिशत बाग पुराने और अनुत्पादक हैं। आम के बागों में समय के साथ उत्पादकता कम होने का एक मुख्य कारण दोषपूर्ण छत्र प्रबंधन है जिसके कारण करीब 15 से 20 वर्ष बाद ही हमारे वृक्षों की सभी मुख्य शाखाएँ प्रकाश की खोज में ऊपर की तरफ बढ़ने लगती हैं और कुछ ही वर्षों में हमारे बाग एक जंगल का रूप धारण कर लेते हैं। उनकी उपज धीरे–धीरे कम हो जाती है। फलों का आकार छोटा हो जाता है। कीट और व्याधियों का प्रकोप भी बढ़ जाता है। किसानों को काट–छाँट की अनुमति प्राप्त करना जटिल होने के कारण किसान न तो बाग काट पाते हैं और न ही अपनी जीविकोपार्जन हेतु उससे समुचित आमदनी ही प्राप्त कर पाते हैं। हमारे बाग इस स्थिति को नहीं प्राप्त हों और हम बराबर उचित उपज और आमदनी भी प्राप्त करते रहें, इसके लिये हमें प्रारंभ से ही बागों में छत्र प्रबंधन की वैज्ञानिक विधि अपनानी चाहिए।

## आम के नवरोपित बागों में पौधों को उचित आकार देना

जैसा कि हम जानते हैं कि हमारे वृक्ष एक तरह से कारखाने का काम करते हैं और उनकी पत्तियाँ हमारे लिये भोज्य पदार्थों के उत्पादन का केंद्र होती हैं। कच्चे माल के रूप में उन्हें जड़ों के माध्यम से पानी और पोषक तत्व प्रदान किये जाते हैं तथा ऊपर से प्रकृति प्रदत्त सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता होती है। हमें आम के वृक्ष को ऐसा आकार देने का प्रयास करना चाहिए जो एक छतरीनुमा हो और तीन से पाँच मजबूत शाखाएँ मुख्य तने से उचित कोणों पर चारों तरफ इस प्रकार विकसित हों जिससे वृक्ष की सभी पत्तियों को प्रकाश की उचित मात्रा उपलब्ध हो सके। इसके लिये अगर आवश्यकता हो तो शुरुआत में ही मुख्य तने को 60 से 90 सेंटीमीटर पर काटकर पार्श्व शाखाओं को वृद्धि हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए। अगर आवश्यकता हो तो पार्श्व शाखाओं को किसी डोरी से बाँधकर या पत्थर आदि से लटका कर प्रारंभिक वर्षों (1 से 5 वर्ष) में पौधों को उचित ढाँचा देने का प्रयास करना चाहिए।

## 10 से 25 वर्ष के वृक्षों में छत्र मध्य काट छाँट

आम के जो बाग 10 से 25 वर्ष पुराने हैं तथा जिनकी उत्पादन क्षमता सामान्य है लेकिन शाखाएँ बगल के वृक्षों से मिलने लगी हैं। बागों में अपनायी गयी रोपण दूरी के अनुसार थोड़ा पहले या बाद में ये स्थिति उत्पन्न होती है। ऐसे बागों में छत्र के मध्य काट–छाँट द्वारा छत्र प्रबंधन

[1,2,3]प्रधान वैज्ञानिक

आवश्यक रहता है। यदि इसी अवस्था में उचित छत्र प्रबंधन कर दिया जाये तो जीर्णोद्धार की स्थिति कभी नहीं आयेगी। इस कार्य हेतु वृक्षों का निरीक्षण कर हर वृक्ष में उन एक या दो शाखाओं या शाखाओं के कुछ अंश को चिह्नित करते हैं जो छत्र के मध्य में स्थित हों तथा वृक्ष की ऊँचाई के लिये सीधी तौर पर जिम्मेदार हों। इन चिह्नित शाखाओं या उनके अंश को उत्पत्ति के स्थान से ही काट कर हटा देना चाहिए। यह कार्य दिसंबर–जनवरी माह में कर लेना चाहिए। कटाई का कार्य यदि बिजली या पेट्रोल से चलने वाली आरी से किया जाता है तो कार्य आसान हो जाता है तथा कटे हुए स्थान पर छाल नहीं फटती है। इस प्रकार छत्र प्रबंधन करने के बाद इसका लाभ बागवान को प्रथम वर्ष से ही मिलने लगता है। ऐसा करने से बागवान को अनेक लाभ होते हैं। वृक्ष की ऊँचाई कम हो जाती है, वृक्ष के छत्र के मध्य भाग में सूर्य के प्रकाश की उपलब्धता बढ़ जाती है जिसके परिणामस्वरूप फलों की गुणवत्ता बढ़ती है। हवा का आवागमन बढ़ जाता है। नये कल्ले आते हैं और उचित प्रकाश के कारण कल्लों में परिपक्वता आती है। ऐसे वृक्षों में कीट–व्याधियों का प्रकोप भी कम होता है एवं रसायनों का छिड़काव भी अधिक प्रभावी होता है।

## आम के पुराने अनुत्पादक बागों के जीर्णोद्धार की नवीनतम तकनीक

पुराने एवं अनुत्पादक बागों को व्यापक स्तर पर समूल निकाल कर नये बाग स्थापित करना एक खर्चीला विकल्प साबित होगा। हाल के वर्षों में भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ के द्वारा विकसित जीर्णोद्धार तकनीक अपनाकर आम के पुराने बागों को उत्पादक बनाया जाता रहा है और आम के फलों में गुणवत्ता एवं उत्पादकता में वृद्धि की जाती रही है। ऐसी अनेक सफलता की कहानियाँ देश में उपलब्ध हैं। लेकिन इस तकनीक के प्रयोग में सबसे बड़ी बाधा तना बेधक कीट के प्रबंधन की रही है। वृक्षों की सभी शाखाओं को एक साथ काट देने से इस कीट का आक्रमण इतना अधिक हो जाता है कि सर्वोत्तम प्रबंधन होने पर भी 20 से 30 प्रतिशत तक पौधे मर जाते हैं। इस समस्या को ध्यान में रखते हुए हाल के वर्षों में किये अनुसंधान से यह ज्ञात हुआ कि जीर्णोद्धार की पुरानी विधि की अपेक्षा नयी विधि अपनानी चाहिए। इस विधि में दिसंबर–जनवरी के महीने में सभी मुख्य शाखाओं को एक साथ काटने के बजाय सर्वप्रथम अगर कोई एक मुख्य शाखा हो जो सीधा ऊपर की तरफ जाकर प्रकाश के मार्ग में बाधा बन रही हो तो उसको उसके उत्पत्ति बिंदु से ही निकाल देना चाहिए। इसके बाद पूरे वृक्ष में 4–6 अच्छी तरह से चारों ओर फैली हुई शाखाओं का चयन करना चाहिए। इनमें से मध्य में स्थित दो शाखाओं को पहले वर्ष में, फिर अगली दो द्वितीय वर्ष में तथा शेष एक या दो जो कि सबसे बाहर की तरफ स्थित हों उन्हें तृतीय वर्ष में काट कर निकाल देना चाहिए। इसके साथ ही जो शाखाएँ बहुत नीचे और अनुत्पादक या कीट बीमारियों से ग्रस्त हों उन्हें भी निकाल देना चाहिए। कटे हुए स्थान पर 1:2:3 के अनुपात में कॉपर सल्फेट, चूना और पानी और 250 मिलीलीटर अलसी का तेल, 20 मिलीलीटर डाइक्लोरवास मिलाकर कटे हुए स्थान पर लेप करना चाहिए। इस प्रकार काटने से शुरु के वर्षों में बाकी बची शाखाओं से भी 50 से 150 किलोग्राम प्रति वृक्ष तक फल प्राप्त हो जाते हैं और लगभग तीन वर्षों में हमारे वृक्ष पुनः छोटा आकार लेकर फलत प्रारंभ कर देते है।

## प्रूनिंग हेतु आरी एवं उसका रखरखाव

आजकल जीर्णोद्धार में अगर कोई सबसे बड़ी बाधा है तो यह है कि हमें पेट्रोल चलित आरी से शाखाओं को काटने हेतु कुशल श्रमिक उपलब्ध नहीं होते। इसी कारण बहुत से किसान जिला उद्यान अधिकारी से अनुमति प्राप्त करने के बाद भी सही ढंग से काट–छाँट नहीं करवा पाते हैं। इस दिशा में हमारा संस्थान नवयुवकों को स्वयं कार्य कर सीखने के सिद्धांत के आधार पर प्रशिक्षण प्रदान करता है और बेरोजगार युवक इसका लाभ उठाकर इसे उद्यमिता का आधार बना सकते हैं और अच्छी खासी आमदनी भी प्राप्त कर सकते हैं। बाजार में आरी बहुत सी कंपनियों की उपलब्ध हैं और उनको खोलने–बाँधने, साफ करने, चैन बदलने आदि के प्रशिक्षण भी उपलब्ध हैं। आशा है इसका लाभ उठाकर हमारे देश के युवा न केवल रोजगार प्राप्त करेंगे बल्कि आम के पुराने बागों को पुनर्जीवन दे कर किसान की आमदनी वृद्धि और पर्यावरण सुधार में भी सहयोग देंगे।

# हल्दी की वैज्ञानिक खेती

वी.के. सिंह[1], मनोज कुमार सोनी[2] एवं अनिल कुमार यादव[3]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

भारत विश्व का सबसे बड़ा हल्दी उत्पादक देश है। हल्दी का उपयोग प्राचीन काल से ही विभिन्न रूपों में किया जा रहा है। हल्दी जिंजिवरेंसी कुल का पौधा है। इसका वानस्पतिक नाम कुरकुमा लौंगा हैं। इसकी उत्पत्ति दक्षिण पूर्व एशिया में हुई थीं। इसका उपयोग औषधीय रूप में होने के साथ–साथ समाज में सभी शुभ कार्यों में भी बहुत प्राचीन काल से होता रहा है। वर्तमान समय में प्रसाधन के सर्वोत्तम उत्पाद हल्दी से ही बनाये जा रहे हैं क्योंकि इसमें रंग, सुगंध एवं औषधीय गुण पाये जाते हैं। हल्दी में जैव संरक्षण एवं जैव विनाश दोनों ही गुण विद्यमान हैं क्योंकि यह तंतुओं की सुरक्षा एवं जीवाणु को मारता है। हल्दी में करक्युमिन पाया जाता है। इससे एलियोरोजिन भी निकाला जाता है। हल्दी में स्टार्च की मात्रा सर्वाधिक होती है। इसके अतिरिक्त इसमें 13.1 प्रतिशत पानी, 6.3 प्रतिशत प्रोटीन, 5.1 प्रतिशत वसा, 69.4 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 2.6 प्रतिशत रेशा एवं 3.5 प्रतिशत खनिज लवण पोषक तत्व के रूप में पाया जाता है। इसमें वोनाटाइन आरेन्ज लाल तेल 1.3 से 5.5 प्रतिशत पाया जाता है। भारत में हल्दी का विभिन्न रूपों में निर्यात जापान, फ्रांस, अमेरिका, इंगलैंड, जर्मनी, नीदरलैंड, सऊदी अरब एवं आस्ट्रेलिया को किया जाता है। हल्दी बिहार की प्रमुख मसाला फसल है। क्षेत्रफल एवं उत्पादन में इसका प्रथम स्थान है।

## जलवायु

हल्दी के फसल उत्पादन के लिये नम एवं शुष्क जलवायु तथा पौधों को छाया की आवश्यकता होती है। हल्दी की खेती उष्ण और उप–शीतोष्ण जलवायु में भी की जाती है। फसल के विकास के समय गर्म एवं नम जलवायु उपयुक्त होती है परंतु गाँठ बनने के समय ठंडी (25–30 डिग्री सेंटीग्रेट तापमान) जलवायु की आवश्यकता होती है। जिस क्षेत्र में 1200 से 1400 मिलीमीटर वर्षा 100 से 120 वर्षा दिनों में होती है, वहाँ पर इसकी उत्तम खेती होती है। समुद्र सतह से 1200 मीटर ऊँचाई तक के क्षेत्रों में यह पैदा की जाती है। परंतु हल्दी की खेती के लिये 450 से 900 मीटर ऊँचाई वाले क्षेत्र उत्तम होते हैं। हल्दी के लिये 30 से 35 डिग्री सेंटीग्रेट अंकुरण के समय, 25–30 डिग्री सेंटीग्रेट कल्ले निकलने 20–30 डिग्री सेंटीग्रेट प्रकंद बनने तथा 18 से 20 डिग्री सेंटीग्रेट हल्दी की मोटाई के लिये उत्तम है। इसको अधिकतर छाया देने वाली फसलों के साथ ही बोया जाता है।

## मृदा

हल्दी की खेती करने के लिये जीवांश की अधिक मात्रा वाली रेतीली या दोमट मटियार मृदा, लैटेराइट मिट्टी अति उत्तम होती है। भारी मृदा में जल निकास का उचित प्रबंध नहीं होता है, अतः वहाँ पर हल्दी की खेती मेड़ों पर की जाती है। हल्दी के लिये पर्याप्त उर्वर भूमि की आवश्यकता होती है। इसकी खेती के लिये तालाब के जल द्वारा सिंचित काली मिट्टी उपयुक्त होती है। मृदा प्रायः लाल चिकनी या मटियार दोमट होती है। इन मृदाओं में पत्तियों की खाद अधिक पायी जाती है। ऊसर या क्षरीय मृदाओं में इसकी खेती सफलतापूर्वक नहीं की जा सकती है। लेकिन मृदा में थोड़ी बहुत अम्लीयता का पाया जाना हल्दी के लिये अच्छा रहता है। हल्दी की पैदावार सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है। इसकी खेती वाली मृदा का पी.एच. मान 5.0 से 7.5 होना चाहिए। पानी भरी मिट्टी इसके लिये पूरी तरह से अनुपयुक्त होती है।

## खेत की तैयारी

हल्दी की खेती हेतु भूमि की अच्छी तैयारी करने की आवश्यकता होती है, क्योंकि यह जमीन के अंदर होती है जिससे जमीन को अच्छी तरह से भुरभुरा बनाया जाना आवश्यक है। मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करने के बाद 3–4 बार देशी हल या कल्टीवेटर चला

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]शोध सहयोगी एवं [3]वरिष्ठ अनुसंधान वेत्ता

देना चाहिए। यदि ऐसा संभव नहीं हो तो 5–6 बार देशी हल से जोताई करनी चाहिए। खेत में व्याप्त ढेलों और खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए। जुताई के बाद पाटा चलाकर जमीन समतल कर लें एवं बड़े ढेलों को छोटा कर लेना चाहिए जिससे खेत में नमी सुरक्षित रहे। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में खेत तैयार करने के उपरांत मेड़ें और नालियाँ बनायी जाती हैं।

## रासायनिक खाद

खाद तथा उर्वरक 20 से 25 टन प्रति हेक्टेयर का उपयोग करना चाहिए क्योंकि गोबर की खाद डालने से जमीन अच्छी तरह से भुरभूरा बन जायेगी तथा जो भी रसायनिक उर्वरक दी जायेगी उसका समुचित उपयोग हो सकेगा। इसके बाद 60–80 किलोग्राम नाइट्रोजन, 50–80 किलोग्राम फास्फेट, 80–100 किलोग्राम पोटैश प्रति हेक्टेयर के अनुसार प्रयोग करना चाहिए। हल्दी की खेती हेतु पोटैश का बहुत महत्व है जो किसान इसका प्रयोग नहीं करते हैं हल्दी की गुणवत्ता तथा उपज दोनों ही प्रभावित होती है। नाइट्रोजन की एक चौथाई मात्रा तथा फास्फेट एवं पोटैश की पूरी मात्रा बोने के समय दी जानी चाहिए एवं नाइट्रोजन की बची मात्रा की दो भागों में बाँटकर पहल मात्रा बोआई के 40–60 दिनों बाद तथा दूसरी मात्रा 80 से 100 दिनों बाद देनी चाहिए।

## फसल चक्र

हल्दी की अच्छी खेती के लिये उचित फसल चक्र को अपनाया जाना आवश्यक है। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि हल्दी की खेती लगातार उसी जमीन पर नहीं की जाये क्योंकि यह फसल जमीन से ज्यादा–से–ज्यादा पोषक तत्वों को खींचती है जिससे दूसरे उसी जमीन में इसकी खेती नहीं करें तो ज्यादा अच्छा होगा। सिंचित क्षेत्रों में मक्का, आलू, मिर्च, ज्वार, धान, मूँगफली आदि फसलों के साथ फसल चक्र अपनाकर हल्दी की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

## प्रजातियाँ

हल्दी की खेती में आमतौर पर गाँठों के रंग और आकार के अनुसार हल्दी की किस्में पायी जाती हैं। मालावार की हल्दी का औषधीय महत्व होता है जिसका उपयोग जुकाम एवं कफ के उपचार के लिये किया जाता है। पूना और बैंग्लुरू की हल्दी रंग के लिये, लोखंडी नामक हल्दी की गाँठे चमकीले रंग की और बड़ी होती है। जंगली हल्दी अपनी सुगंधित गाँठों के लिये प्रसिद्ध है। तट पूर्वी के अनेक भागों में अम्बा हल्दी नामक एक अन्य किस्म उगाई जाती है जिसका स्वाद एवं सुगंध कच्चे आम से मिलता है। इसकी गाँठे बहुत पतली एवं पीले रंग की होती है। हल्दी की इन किस्मों के अलावा उन्नतशील किस्मों के अंतर्गत सुवर्णा, राजेन्द्र, सोनिया आदि किस्में भी उपलब्ध है। कृषकों को इन उन्नत किस्मों को उगाना चाहिए। हल्दी की राजेन्द्र सोनिया का उत्पादन एवं गुणवत्ता बहुत अच्छा होता है।

## राजेन्द्र सोनिया

इस किस्म के पौधे छोटे 60–80 सेंटीमीटर ऊँचे तथा 195 से 210 दिन में तैयार हो जाती है। इस किस्म की उपज क्षमता 400 से 450 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तथा करक्युमि की मात्रा 6.0 प्रतिशत तक पायी गयी है।

## बीज रोपण का समय

हल्दी के रोपण का उचित समय अप्रैल एवं मई का महीना होता है। हल्दी की बोआई मानसून के ऊपर निर्भर करती है। वर्षा के अनुसार इसकी बोआई अप्रैल के दूसरे पखवाड़े से लेकर जुलाई के प्रथम सप्ताह तक की जाती है।

## बीज

बीज के लिये हल्दी की गांठे पिछली फसल से ली जाती हैं। बोने के लिये केवल प्राथमिक हल्दी की गाँठों को अधिक लंबा होने पर इनको छोटे–छोटे टुकड़ों में करते हैं। यह सुनिश्चित रहे कि हर गाँठों में एक या दो सुविकसित स्प्राउट अवश्य होनी चाहिये।

## बोआई

बीज की बोआई पंक्तियों या मेड़ों पर की जाती है। समतल मृदाओं में बोआई पंक्तियों में जहाँ अधिक वर्षा होती है। उसकी बोआई मेंड़ों पर की जाती है। प्रत्येक क्यारी में सिंचाई एवं जल निकास की उचित व्यवस्था की जाती है। समतल क्यारियों में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30–45 सेंटीमीटर और गाँठों की आपसी दूरी 23 सेंटीमीटर गहरा

लगा दिया जाता है। दो मेंड़ों को एक साथ रखने पर उनके बीच की दूरी 15 सेंटीमीटर रखी जाती है। मेड़ों को पत्तियों से ढक दिया जाता है जो पलवार मल्च का कार्य करते हैं।

## बीज की मात्रा

बीज की मात्रा गाँठों के आकार एवं बोने की विधि पर निर्भर करती है। यदि मिश्रित फसल बोयी जाती है तो 8–10 क्विंटल कंद प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होते हैं। जबकि शुद्ध बोई जाने वाली फसल के लिए 12–14 क्विंटल कंद पर्याप्त होते हैं। कंद बोने के लगभग 1 महीने बाद अंकुरित हो जाता है जबकि सिंचित भूमि में अंकुरण 15–20 दिन में हो जाता है।

## सिंचाई एवं जल प्रबंधन

हल्दी की फसल को अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। बोआई से वर्षा ऋतु आरंभ होने तक 4–5 सिंचाइयों के लिये पर्याप्त नमी का होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि मेड़ों में नमी होने पर शीघ्र ही फसल भूमि को ढ़क लेती है और वर्षा ऋतु के उपरांत प्रत्येक 20–25 दिन के अंतर पर सिंचाई कराना लाभप्रद होता है। हल्दी की फसल में टपक सिंचाई पद्धति का प्रयोग करने से जल जमाव एवं निकासी की समस्या से निजात मिलता है और 50–60 प्रतिशत पानी की बचत होती है। इसके साथ ही कंद का आकार, वजन और गुणवत्ता में भी वृद्धि हो जाती है। टपक सिंचाई विधि को अपनाने से श्रम की बचत के साथ–साथ धन की बचत और खरपतवार पर नियंत्रण होता है। नवंबर में पत्तियों का विकास होता है और कंद मोटाई में बढ़ना प्रारंभ हो जाते हैं। इस समय मेड़ों पर मिट्टी चढ़ा देना लाभदायक होता है।

## खरपतवार नियंत्रण

हल्दी के खेत में पत्तियों की पलवार बिछाने से काफी हद तक खरपतवार नियंत्रण हो जाता है। वैसे 2–3 बार गुड़ाई खरपतवार नियंत्रण के लिये पर्याप्त होता है। बोआई के 80–90 दिन बाद और दूसरी इसके 30 दिन बाद करनी चाहिये।

## प्लास्टिक मल्चिंग

हल्दी की खेती में मल्चिंग का बहुत महत्व है। हल्दी बोने से पहले मिट्टी को भुरभूरी एवं समतल करने के बाद बेड बनाकर प्लास्टिक मल्चिंग करना चाहिए। फिर कंद–से–कंद की दूरी 25 सेंटीमीटर करने के लिये प्लास्टिक मल्च में इसी दूरी पर छेद कर उसमें बोआई करनी चाहिए जिससे कंद में पर्याप्त नमी एवं खरपतवार नियंत्रण किया जा सके। प्लास्टिक मल्च में कंदों की अच्छी मोटाई एवं आकार तैयार होता है। बिना मल्चिंग की अपेक्षा मल्चिंग धनकंद का वजन दुगुना होता है। करक्युमिन की मात्रा प्लास्टिक मल्चिंग से बढ़ी पायी गयी है।

## रोग एवं कीट नियंत्रण

हल्दी की फसल को कीटों से अधिक हानि तो नहीं पहुँचती लेकिन कुछ कीट एवं रोग इसकी फसल को नुकसान पहुँचाते हैं जो निम्नलिखित प्रकार के हैं।

### प्ररोह बेधक (शूट बोरर)

यह कीट हल्दी के स्यूडोस्टेम (तना) एवं प्रकंद में छेद कर देता है। इससे पौधों में भोज्य सामग्री आदि तंतुओं के नष्ट होने से सुचारू रूप से प्रवाह नहीं कर पाती है तथा कमजोर होकर झुक जाता है। इसका नियंत्रण 0.05 प्रतिशत डाइमेथोएट या फास्फोमिडान का छिड़काव करने से होता है।

### प्रकन्द विगलन

हल्दी की यह काफी क्षति पहुँचाने वाली बीमारी है। यह बीमारी *पिथियम* प्रजाति के प्रकोप से होती है। इसके प्रकोप से प्रकन्द सड़ जाता है। नियंत्रण के लिये 0.25 प्रतिशत मैन्कोजेब से मिट्टी की ड्रेंचिंग करते हैं। बीज लगाने के पहले प्रकन्द का उपचार कर ही लगायें।

### पर्ण चित्ती (लीफ स्पॉट)

यह बीमारी *कोलिटोट्राइकम* प्रजाति के फफूँद के कारण होती है। इसमें छोटे अंडाकार अनियमित या नियमित भूरे रंग के धब्बे पत्तियों पर दोनों तरफ पड़ जाते हैं जो बाद में धूमिल पीली या गहरे भूरे रंग के हो तो बीमारी

के प्रकोप के पूर्व ही 1 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण का छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर सितंबर के प्रथम सप्ताह में करते हैं।

## हल्दी की खुदाई तथा उपज

हल्दी की अगेती, मध्यम तथा पछेती प्रजातियों की बोआई में क्रमशः 7–8, 8–9 और 9–10 माह में फसल पक कर तैयार हो जाती है। मार्च से अप्रैल तक हल्दी के पौध की खुदाई कर कंद को निकाल कर तथा साफ कर उसे एकत्र कर लेते हैं। हल्दी 180–220 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से हल्दी प्राप्त होती है। हल्दी तैयार करने पर 35–50 कुंटल प्राप्त होती है।

## हल्दी बनाने की प्रक्रिया

हल्दी तैयार करने में चार चरण से तैयार होता है। उबालना, सुखाना, पॉलिश करना तथा रंग चढ़ाना।

### उबालना

हल्दी की खुदाई के बाद कंद को निकाल कर सुरक्षित स्थान पर रख लेते हैं। कंद को अच्छी तरह धुलने के बाद पानी में उबालते हैं। उबालते समय चूने के पानी या सोडियम बाई कार्बोनेट का उपयोग करते हैं। कंदों को 40–50 मिनट तक उबालते हैं जब तक हल्दी में से एक विशेष गंध या झाग आना प्रारंभ हो जाये। इसके अतिरिक्त उबले हुए कंद को उगली से या लकड़ी से दबाने पर अच्छे से दबने लगे तो यह जान लें कि कंद पूर्णतया उबल चुका है।

### सुखाना

उबले हुए कंदों को धूप में सुखाया जाता है। कंद को साफ फर्श पर दरी या अपने सुविधानुसार वस्तु का प्रयोग कर 5–7 सेंटीमीटर मोटी परत कर सुखायें। धूप की स्थिति और तीव्रता के अनुसार कंद 7–10 दिनों में अच्छी तरह (6 प्रतिशत नमी) सूख जाते हैं। कंदों को आधुनिक मशीनों के माध्यम से $60^0$ तापमान के गर्म वायु पर आसानी से सुखाया जाता है।

## हल्दी की पॉलिशिंग

कंदों के सूखने के बाद प्राप्त हुई हल्दी अच्छी नहीं दिखती। कंदों के बाहरी आवारण को आपस में रगड़ते हैं जिससे कंदों के ऊपरी सतह पर चमक हो जाती है इस प्रक्रिया के द्वारा रंग चढ़ाने को पॉलिशिंग कहलाती है। यह कार्य हस्तचालित मशीन से चलने वाले ड्रम से भी किया जाता है। हल्दी को रंग के लिये 1 किलोग्राम हल्दी पीस कर उसे 1–1.25 क्विंटल हल्दी को रंगते हैं जिससे हलदी का पीलापन ऊपर से एक समान दिखें।

## बीज भंडारण

हल्दी के कंदों को अगले वर्ष बोआई हेतु बीज को संग्रहित कर लेते हैं। संग्रहित करने से पहले इन कंदों को 0.25 प्रतिशत इंडोफिन एन–15, 0.15 प्रतिशत बाविस्टीन, 0.05 प्रतिशत मेलाथियान से 30 मिनट तक उपचारित करते हैं। उपचारित कंदों छाएँ में सुखायें। उसके बाद कंदों रखने के लिये गड्ढे सूर्य की धीमी रोशनी से दूर रहें। गड्ढा 1 मीटर लंबा तथा 30 सेंटीमीटर गहरा समतल आकार का होना चाहिए।

## हल्दी से बनने वाले उत्पादन

हल्दी का पाउडर मसालों में प्रयोग होता है। हल्दी से तेल निकाला जाता है इसमें 3 से 5 प्रतिशत बोलाटाइल ऑयल निकलता है जो स्टीम डिस्टीलेसन द्वारा निकाला जाता है जो हल्दी पाउडर से निकाला जाता है। इसे निकालने में 8–10 घंटे में निकालता है टर्मकेरिक ओलियोरोजिन यह साल्वेन्टर एक्सट्रेक्शन विधि से निकाला जाता है इसकी कीमत कुर्कुमिन की मात्रा पर निर्भर करती है।

# बागवानी के लिये समस्याग्रस्त मृदाओं की उपयोगिता

देवेन्द्र पाण्डेय[1], अजय कुमार त्रिवेदी[2], विनोद कुमार सिंह[3] एवं घनश्याम पाण्डेय[4]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

विश्व में अम्लीय मृदाओं का क्षेत्रफल 800 मिलियन हेक्टेयर है जबकि भारत में अम्लीय मृदाएँ 100 मिलियन हेक्टेयर में हैं। असम की 95 प्रतिशत मृदाएँ अम्लीय हैं एवं जम्मू कश्मीर का 30 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्रफल अम्लीय मृदाओं के अंतर्गत आता है। इन मृदाओं में चाय की खेती (4–6 पी.एच. मान) सफलतापूर्वक की जा सकती है। देश का भौगोलिक क्षेत्रफल 329 मिलियन हेक्टेयर है जिसमें 143 मिलियन हेक्टेयर में खेती की जाती है जबकि 117 मिलियन हेक्टेयर परती एवं बंजर भूमि है। 6.7 मिलियन हेक्टेयर भूमि लवण प्रभावित है जिसमें लगभग 56 प्रतिशत भाग क्षारीय है। अभी तक लगभग 1.74 मिलियन हेक्टेयर ऊसर भूमि का सुधार किया जा सका है।

समस्याग्रस्त मृदाओं में जैविक, रासायनिक और भौतिक रूप से समस्याग्रस्त मृदाएँ आती हैं। सामान्यतया 6 सेंटीमीटर से अधिक पानी प्रतिदिन मृदा में छन–छन कर अंदर जाता है जिसके कारण मृदा से पोषक तत्वों का मृदा कटाव द्वारा ह्रास हो जाता है तथा उचित जल निकास का नहीं होना एवं वायु संचार का मृदा में कम होना आदि जैसी समस्याएँ होती हैं।

## फल वृक्षों की लवणीय सहन क्षमता

| yo.k lgu'khyrk | fofue; 'khy lksfM;e izfr'kr | Qy o{k |
|---|---|---|
| अधिक | 40–50 | बेर, हल्दी, कैथा, सपोटा |
| मध्यम | 30–40 | पोमग्रेनेट |
| कम | 20–30 | अमरूद, नींबू, अंगूर |
| संवेदनशील | 20 से कम | आम, कटहल, केला |

[1,2,4]प्रधान वैज्ञानिक एवं [3]मुख्य तकनीकी अधिकारी

## अम्लीय मृदाएँ

| eǹk dk ih-,p- eku | eǹk dh vEyrk izÑfr |
|---|---|
| 3–4 | बहुत अधिक |
| 4–5 | अधिक |
| 5–6 | मध्यम |
| 6–7 | हल्का |

सूक्ष्म जीव जो कि भारी धातुओं का उपयोग कर सकते हैं।

| | |
|---|---|
| कैडिमियम | *साइटोवैक्टर* स्पीसीज |
| कॉपर | *बैसिलस* स्पीसीज |
| कोबाल्ट | *जूगलिया* स्पीसीज |
| नीकिल | *जूगलिया* स्पीसीज |
| जिंक | *वैसिलस* स्पीसीज |
| क्रोमियम | *सूडोमोनास एबिगुवा, एग्रोबैक्टिरियम* स्पीसीज |

## किस्मों का चयन

किसी एक फल की विभिन्न किस्मों की मृदा के प्रति प्रतिक्रिया अलग–अलग होती है। कुछ किस्में लवणीय या क्षारीय मृदा के प्रति संवेदनशील होती हैं जबकि उसी फल की अन्य किस्में सहनशील होती हैं। अतः ऊसर/बंजर भूमि के लिये उपयुक्त सहनशील किस्मों का चयन करना चाहिए। कुछ उपोष्ण फलों की संवेदनशील एवं सहनशील किस्में निम्नलिखित हैं।

## ऊसर के प्रति फल वृक्षों की किस्म की अभिक्रिया

| Qy o{k | lgu'khy fdLe | laosnu'khy fdLe |
|---|---|---|
| अमरूद | लखनऊ–49 (सरदार अमरूद) | इलाहाबादी सफेदा, चित्तीदार, एपिल गुआवा |
| आँवला | चकैया, कंचन, नरेन्द्र–7, नरेन्द्र–6 | बनारसी, कृष्णा, नरेन्द्र–10 |
| अंगूर | ब्यूटी सीडलेस | किसमिस चरनी |
| बेर | बनारसी कड़का, कैथली, उमरान | गोला |

### सहिष्णु किस्म का चयन

इन किस्मों के अलावा कुछ अन्य फलों की किस्मों को भी इस प्रकार की भूमि में लगा कर उद्यानिकी को बढ़ाया जा सकता है, जैसे बेल (नरेन्द्र बेल–5, नरेन्द्र बेल–'9, सी.आई.एस.एच. बी–1 एवं गोमायशी), जामुन (कोकम बहडोली, सी.आई.एस.एच–जे–37, एवं सी.आई.एस.एच. जे–42), शरीफा (बालानगर, मैमथ, लाल सीता फल एवं अर्का सहन), इमली (औरंगाबाद, राहुरी एवं पेरियाकुलम के सेलेकसन, गोमा प्रतीक), लेमन (कागजी कलान एवं पंत लेमन–1) एवं लाइम (विक्रम प्रमालिनी एवं साई सरवती)।

### प्रतिरोधी मूलवृंत का उपयोग

ऊसर भूमि का पौधों के मूलतंत्र से सीधा संबंध उनके विकास से होता है। प्रतिरोधी मूलवृंतों के उपयोग करने से एक स्तर तक मृदा में उपस्थित सोडियम, क्लोराइड, सल्फेट आयनों का कम अवशोषण होता है। इस प्रकार की ऊसरीली मृदाओं में प्रतिरोधी मूलवृंतों पर किस्म विशेष का प्रत्यारोपण कर आंशिक आम, अंगूर तथा नींबू प्रजाति के पौधों की अच्छी खेती की जा सकती है। मृदा स्वास्थ्य के सुधार के साथ–साथ उत्पादन भी अधिक प्राप्त किया जा सकता है। इन फलों के प्रतिरोधी मूलवृंत निम्नलिखित हैं।

### फलों फसलों के प्रतिरोधी मूलवृंत

| | |
|---|---|
| आम | नीलेश्वर ड्वार्फ, कुरूक्कन, बप्पाकाई, ओलूर |
| अमरूद | सरदार किस्म के बीजू पौधे |
| अंगूर | डागरिज, साल्ट क्रीक टेलकी, 1613, 1616 |
| नींबू वर्ग | क्लियोपेट्रा, रंगपुर लाइम, रफ लैमन |
| शरीफा | *अनोना रेटीकुलाटा* |
| आँवला | देशी आँवला |
| बेर | *जिजीफस रोटन्डीफोलिया* एवं *जिजीफस न्यूमलेरिया* |
| चीकू | खिरनी महुआ |
| अंजीर | गूलर, देशी बेल |
| बेल | देशी बेल |

### फल वृक्षों का चयन तथा प्रवर्धन विधि

देश के उपोष्ण क्षेत्र में ऊसर–बंजर भूमि का क्षेत्रफल अधिक है। ऐसी भूमि में एक वर्षीय फसलों का प्रबंधन आर्थिक दृष्टि से लाभकारी उत्पादन बागवानी फसलों की तुलना में उपयुक्त नहीं है। बागवानी फसलों के लाभकारी उत्पादन के लिये फसल का चयन, उचित दूरी पर रोपण तथा उपयोग की जाने वाली प्रवर्धन विधि बहुत ही महत्वपूर्ण एवं निर्णायक कारक का कार्य करती है। उपोष्ण क्षेत्र की ऊसर बंजर भूमि के लिये उपयोगी प्रमुख फल, उनकी रोपण दूरी तथा प्रवर्धन विधि निम्नलिखित है।

### उपोष्ण क्षेत्रों के लिये उपयोगी फल वृक्ष तथा उनकी रोपण दूरी एवं प्रवर्धन विधि

| Qy o{k | jksi.k nwjh ¼ehVj½ | izo/kZu fof/k |
|---|---|---|
| खजूर | 6 × 6 | अंतः भूस्तारी |
| बेर | 8 × 8 | चश्मा (पैबन्दी, वलय एवं विरूपित वलय) |
| अनार | 5 × 2 | सख्त काष्ठ कलम, गूटी |
| आँवला | 8 × 8 | कलम बंधन (भेंट, कोमल शाख बंधन), चश्मा (पैबन्दी एवं विरूपित वलय) |
| जामुन | 10 × 10 | बीज, पैबन्दी चश्मा, कोमल शाख बंधन |
| शरीफा | 5 × 5 | कलम, गूटी, पैबन्दी चश्मा |
| बेल | 6 × 6 | स्टूलिंग, गूटी, पैबन्दी चश्मा |
| अंजीर | 6 × 6 | सख्त काष्ठ कलम |
| करौंदा | 2 × 2 | बीज, सख्त काष्ठ कलम |
| फालसा | 2 × 2 | बीज |
| इमली | 12 × 12 | बीज, पैबन्दी चश्मा, कोमल शाख बंधन |
| नींबू वर्गीय फल | 5 × 5 | बीज, पैबन्दी चश्मा, गूटी, स्टूलिंग |
| अमरूद | 6 × 6 | स्टूलिंग, गूटी, पैबन्दी चश्मा |

सामान्य संस्तुत दूरी से 20–25 प्रतिशत कम दूरी पर पौधों को रोपित किया जाये।

### रोपण हेतु गड्ढे की तैयारी

फल वृक्षों की रोपण दूरी तथा गड्ढे का आकार पूर्ण वृक्ष के वृद्धि के समय आकार पर निर्भर करता है। इसलिए फल वृक्ष इस प्रकार रोपित किये जाने चाहिए कि पूर्ण वृद्धि के बाद बाहरी शाखाएँ आपस में सट तो जायें पर

एक–दूसरे में अन्दर तक प्रवेश न करें। वृक्षों को सूर्य का प्रकाश पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता रहे। साथ ही कीट तथा व्याधियों का संक्रमण भी कम हो। रोपण सामान्यतः संस्तुत दूरी से 20–25 प्रतिशत कम दूरी पर किया जाना चाहिए।

सामान्यतः ऊसर भूमि में मिट्टी अथवा कंकड़ की तह 30–100 सेंटीमीटर गहराई तक विद्यमान होती है। इस सतह को प्रत्येक दशा में गड्ढे की खुदाई के समय तोड़ देना चाहिए जिससे रोपित पौधों की जड़ का विकास अवरुद्ध न हो और जल निकास भी समुचित हो। गड्ढों की खुदाई का कार्य मई–जून में पूरा कर लेना चाहिए। इन गड्ढों में वर्षा होने पर मटमैला पानी भर जाता है, जिसमें काफी मात्रा में लवण घुले रहते हैं, अतः मटमैले पानी को 2–3 बार निकाल कर गड्ढे की भराई की जानी चाहिए। सोडियम प्रतिशत तथा मृदा के पी.एच. मान के अनुसार गड्ढे की भराई करते समय भी मृदा में उपलब्ध सोडियम की 50 प्रतिशत मात्रा को मृदा सुधारकों जस्ता, पाइराइट अथवा अन्य उपायों को प्रतिस्थापित कर दिया जाय तो चयनित फल वृक्षों की बागवानी सुगमतापूर्वक ऊसर भूमि में भी जा सकती है।

उपलब्धता के अनुसार किसी एक मृदासुधारक का उपयोग किया जाना चाहिए। मृदा सुधारकों की अनुपलब्धता की स्थिति में प्रत्येक गड्ढे में 50–60 किलोग्राम प्रेसमड प्रति गड्ढा का उपयोग भी लाभकारी पाया गया है। मृदा सुधारक, जैसे जिप्सम, विशेषकर पाइराइट का उपयोग करने पर 2–3 सप्ताह तक रासायनिक अभिक्रिया पूर्ण होने के बाद ही पौध रोपण किया जाये। गोबर की खाद, बालू, मृदा सुधारक और कीटनाशी (100 ग्राम एल्डेक्स) गड्ढे की ऊपरी भूमि में मिलाकर 15–25 सेंटीमीटर ऊँचाई तक गड्ढे की भराई की जानी चाहिए। इन गड्ढों में 2–3 वर्षा बाद पौध रोपण करना चाहिए।

## रोपण प्रबंधन

### (क) स्वस्थाने बाग के स्थापन को प्रोत्साहन

सामान्यतः कायिक प्रवर्धित पौधों की मूसला जड़े कटी होती हैं। अतः इनका मूलवंत्र भूमि की ऊपरी सतह पर ही फैला रहता है। मूलतंत्र को गहराई तक विकसित करने हेतु स्वस्थाने बाग स्थापन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस विधि में गड्ढे की तैयारी कर इनमें पॉलिथीन की थैली अथवा भूमि में तैयार मूलवृन्त का रोपण कर इनके स्थापन के बाद चयनित किस्मों का प्रत्यारोपण किया जाना चाहिए। इस विधि से स्वस्थ तथा दीर्घायु फलवृक्ष तैयार होते हैं। साथ–ही–साथ गहराई तक मूलतंत्र के विकास के कारण कड़ी परत स्वतः टूट जाती है। परिणामतः भूमि से जल अवशोषण क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है।

### (ख) ऊसर भूमि में उग रहे देशी पौधों का उपयोग

ऊसर एवं समस्याग्रस्त भूमि में देशी आम, अमरूद, बेर, करौंदा आदि के पौधे स्वतः उग जाते हैं। परन्तु उन पौधों के फल अच्छे नहीं होते हैं। अतः इन देशी किस्मों का शिखर रोपण कर बागवानी फसलों को बढ़ावा देना एक अच्छा विकल्प हो सकता है। आँवला, बेल तथा बेर में लगभग शत–प्रतिशत सफलता के साथ ही द्वितीय वर्ष से फूल और तृतीय वर्ष से फलत प्राप्त हो जाती है।

### (ग) उपयुक्त विधि और भौतिक समस्याग्रस्त सिंचाई

ऊसर भूमियों की जल धारण तथा जल भेदन क्षमता अच्छी नहीं होती है। सामान्यतः ऊसर भूमि में कम जल माँग वाले फल वृक्ष ही रोपित किये जाते हैं। पलेवा, बाढ़ सिंचाई करने पर इनके मूलतंत्र के श्वसन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पानी का वाष्पीकरण हो जाने पर हानिकारक लवण एवं क्षार सक्रिय जड़ों के संपर्क में आ जाते हैं। परिणामतः इनका प्रतिकूल प्रभाव फल वृक्षों के विकास पर पड़ता है। अतः ऊसर बंजर भूमि में थोड़े–थोड़े अंतराल पर थालों में हल्की सिंचाई अधिक लाभकारी होती है। थालों में गर्मियों में 7–10 दिन के अंतराल पर तथा शरद ऋतु में आवश्यकतानुसार 10–15 दिन के अंतराल पर सिंचाई की जानी चाहिए। फल वृक्षों की पत्तियों के नहीं रहने पर पानी की आवश्यकता कम होती है। फूल आने के समय भी सिंचाई नहीं की जानी चाहिए। इन दशाओं के लिये उपयोगी सिंचाई विधियाँ निम्नलिखित हैं।

¼½ Vi d fl apkbZ

टपक सिंचाई प्रणाली का उपयोग दिन–प्रतिदिन फलदार फसलों में बढ़ता जा रहा है। इस विधि से कम पानी से अधिक पौधों की सिंचाई की जा सकती है। देश में लगभग एक लाख हेक्टेयर क्षेत्र में इस विधि द्वारा सिंचाई की जा रही है। इसका उपयोग फल, सब्जियों,

अलंकृत पौधे, गन्ना, अनाज आदि में किया जा रहा है। महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, कर्नाटक और आंध्रप्रदेश राज्यों में इस विधि का विशेष रूप से उपयोग हो रहा है। उत्तर प्रदेश में टपक सिंचाई की लोकप्रियता एवं उपयोग विशेषकर फलदार फसलों में तेजी से बढ़ रहा है। इस विधि के उपयोग को बढ़ावा देने हेतु सरकार द्वारा अनुदान प्रदान किया जा रहा है। अतः इसके व्यावसायिक उपयोग हेतु बागवानों के बीच अधिक–से–अधिक जागरूकता की आवश्यकता है।

½2½ ?kMk+ fof/k fl pkbZ

इस विधि में रोपित पौधों से 30–40 सेंटीमीटर दूरी पर मिट्टी में गड्ढा खोदकर 15–20 लीटर क्षमता का घड़ा भूमिगत स्थापित कर दिया जाता है। घड़े की पेंदी में एक छोटा छिद्र कर इसमें एक पुराने कपड़े की बत्ती डाल देते हैं। घड़े में पानी भरकर ऊपर मिट्टी से ढ़क दिया जाता है। रिसाव द्वारा बूँद–बूँद पानी पौधों की चूषक जड़ों के पास उपलब्ध होता रहता है। इस प्रकार 3–4 घड़े पानी द्वारा एक माह तक आवश्यकतानुसार मृदा में नमी बनी रहती है।

### (घ) जल संचयन

जल संचयन जल प्रबंधन की एक ऐसी विधा है जिसके तहत वर्षा के जल को अधिक–से–अधिक मात्रा में एकत्र किया जाता है। उसे वाष्पोत्सर्जन की क्रिया से बचाया जाता है एवं पानी को उस समय पौधों को उपलब्ध कराया जाता है जब पौधों को इसकी सबसे ज्यादा आवश्यकता होती है। इसके अलावा पौधों के समीप छोटा तालाब ''माइक्रो कैचमेंट'' बनाकर भी बरसात के जल को पौधों के लिये उपयोगी बनाया जाता है। कैचमेंट का आकार, उसका ढलान विभिन्न क्षेत्रों के लिये विभिन्न प्रकार का होता है।

### (ङ) पलवार का प्रयोग

रोपित पौधों के चारों तरफ थाले में हल्की सिंचाई कर सूखी पत्तियाँ, घास फूस, ईख की पत्ती, पुआल एवं भूसा आदि से ढक कर मृदा नमी को संरक्षित किया जाता है। पलवार के प्रयोग से खरपतवारों की कमी के साथ ही भूमि का तापमान भी नियंत्रित रहता है। मृदा नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण हेतु प्लास्टिक फिल्म अधिक कारगर पायी गयी है पर नियमित रूप से जैविक पदार्थों का उपयोग पलवार के रूप में करने से भूमि की भौतिक दशा तथा उर्वरता में सुधार की अधिक संभावना होती है। साथ–ही–साथ कम खर्च में स्थानीय रूप से यह प्राप्त किया जा सकता है।

जैविक पदार्थों के अवरोध पर्त का उपयोग करने से केंचुओं की संख्या स्वतः बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप पौधों की वृद्धि, फलत तथा फलों की गुणवत्ता में भरपूर बढ़ोत्तरी होती है। इसके अलावा कुछ रसायनों के छिड़कााव के द्वारा पत्तियों पर एक बारीक पर्त बन जाती है जिससे उनके द्वारा होने वाले वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रिया धीमी पड़ जाती है। इन रसायनों में मुख्य रूप से एक्रोपाल, किवोलिनाइट, विल्टप्रूफ, मोवीलीफ, वेपरगार्ड एवं इसके अलावा 0.5 से 1.0 प्रतिशत तरल पैराफिन, 1.5 प्रतिशत पावर ऑयल एवं 4–6 प्रतिशत किवोलिन का छिड़काव पौधों पर करने से पौधों द्वारा पानी उपयोग करने की क्षमता को कम किया जा सकता है।

### (च) हरी खाद का उपयोग

ऊसर मृदाओं में वृक्ष रोपण विधि से केवल गड्ढों की मिट्टी का सुधार किया जाता है तथा बीच की भूमि पूर्ववत बनी रहती है। नव रोपित पौधों के बीच तीन–चार वर्षों तक नियमित रूप से दलहन कुल के पौधे जैसे, ढैंचा, सनई उगाकर उसकी पल्टाई फूल आने के पहले करने से भूमि की भौतिक दशा में काफी सुधार के साथ मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ती है। जिसके बाद अन्तराशस्य फसलें, जैसे सब्जी, फूल, सगंध तथा बहुमूल्य औषधीय पौधों की खेती सुगमतापूर्वक की जा सकती है। वर्षा ऋतु में ढैंचा की बोआई करने से अधिक वर्षा का आँवला अथवा बेर के पौधों पर प्रतिकूल प्रभाव भी नहीं पड़ता है।

### (छ) अंतराशस्यन का प्रयोग

फल वृक्ष अपनी वृद्धि तथा फलत के अनुसार 6–8 वर्षों में संस्तुत रोपित दूरी में फैल जाते हैं तथा बीच की जगह अनेक वर्षों तक खाली पड़ी रहती है। यदि वृक्षों के बीच की भूमि में अन्तराशस्य फसलें उगाई जायें तो बागवान की आय में सुधार के साथ ही भूमि की भौतिक दशाओं में भी सुधार तथा मृदा उर्वराशक्ति में बढ़ोत्तरी होती है। अन्तराशस्य फसल का चुनाव इस प्रकार करना

चाहिए कि वह मुख्य रोपित फल वृक्षों से प्रतियोगिता न करें। इसलिए अधिक बढ़वार वाली फसलें यथा गन्ना, ज्वार, बाजरा और अधिक नमी चाहने वाली फसलें जैसे धान, बरसीम आदि को अन्तराशस्यन के रूप में नहीं लगाना चाहिए।

इस प्रकार उपोष्ण क्षेत्र की ऊसर, बंजर एवं समस्याग्रस्त मृदाओं में फलोत्पादन की प्रचुर संभावनाएँ हैं।

## तकनीकी सुझाव

1. उपोष्ण क्षेत्र की ऊसर, बंजर एवं समस्याग्रस्त भूमियों पर कुछ देशी फल वृक्षों के पौधों को जंगली रूप से उगाया जाता है जो शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क, सूखाग्रस्त एवं लवण युक्त मृदा में अच्छे पनपते हैं। उनको एकत्र कर संरक्षित करने की आवश्यकता है।
2. उपोष्ण क्षेत्र के फल वृक्षों जैसे बेर, अनार, कैथा, बेल, आँवला, बेर आदि पानी की कम माँग वाली फसलों के सुधार एवं इनकी उत्पादन तकनीकों के ऊपर गहनता से कार्य करने की आवश्यकता है।
3. ऊसर, बंजर, लवणीय मृदाओं के क्षेत्रफल के अनुसार निर्देशिका (डायरेक्टरी) बनाकर उनमें वातावरणीय कारकों को ध्यान में रखते हुए फल वृक्षों का चयन कर विभिन्न चयनित फलों की उपयुक्त किस्मों का बृहत रूप से रोपण करना चाहिए।
4. फल वृक्षों का चयन करते समय मृदा एवं जल के स्तर का विशेष ध्यान रख उसी के अनुरूप फसलों का चयन करना चाहिए जिससे भू–जल का समुचित उपयोग किया जा सके।
5. उपोष्ण क्षेत्र की ऊसर, बंजर भूमि के लिये पानी की अत्यधिक कमी होती है। अतः जो भी पानी उपलब्ध होता है उसका समुचित प्रयोग टपक या फौव्वारा सिंचाई विधि से करना चाहिए जिससे अधिक उत्पादन प्राप्त हो सके।
6. उपोष्ण क्षेत्र में ज्यादातर लवणीय या क्षारीय मृदाएँ पायी जाती हैं। अतः लवणीय क्षारीय मृदाओं के प्रति प्रतिरोधी फल वृक्षों एवं मूलवृन्तों का चयन एवं उनकी प्रजातियों का उचित चुनाव करना चाहिए।
7. इस प्रकार की समस्याग्रस्त मृदाओं हेतु फल आधारित फसल प्रणाली को बढ़ावा देकर यहाँ के लोगों की आय बढ़ाने का एक अच्छा माध्यम साबित हो सकता है।
8. उपोष्ण क्षेत्रों में लगाये जाने वाले फलों की बीमारियों की समस्याओं के लिये एकीकृत पादप रोग एवं कीट नियंत्रण माडल विकसित करने की आवश्यकता है।
9. इन क्षेत्रों में गुणवत्ता युक्त फल वृक्षों की पौध प्राप्त करना एक समस्या है। अतः ऐसे क्षेत्रों में उच्च गुणवत्त युक्त फलदार पौधों की नर्सरी की स्थापना को बढ़ावा देना चाहिए।
10. इन क्षेत्रों में मृदा समस्याग्रस्त होती है तथा वातावरणीय कारक भी अधिकांशतः प्रतिकूल होते हैं। अतः उपलब्ध तकनीकी जानकारी के प्रसार को बढ़ावा देना चाहिए जिससे वहाँ के बागवानों में फल वृक्षों की खेती के प्रति तकनीकी जानकारी के साथ–साथ उत्पादन के प्रति रुझान पैदा हो सके।
11. देशी फल वृक्ष के स्थान पर उच्च उत्पादकता वाली किस्मों को प्रोत्साहन देने से अच्छी आमदनी की संभावना होती है।
12. फल वृक्षों में फलत की शुरुआत देर से होती है। अतः अन्तराशस्यन के रूप में सब्जी, सगंध एवं औषधीय पौधों का समावेश करने से बागवानी द्वारा शुरु से ही आमदनी प्राप्त होती है जिससे बागवानी के प्रति उनका रुझान बढ़ता है तथा मृदा स्वास्थ्य फसल के लिये निरंतर अनुकूल बना रहता है।

•❋••❋••❋••❋•

e fnj ky ; t kus d ks ?kj l s p y r k g Si hus oy k] fd l i Fk l s t kÅ¡ \ v l e al e ag Sog Hkky k Hkky k] v y x &v y x i Fk c r y kr s l c i j e S; g c r y kr k g¡ vj kg i d M+r w, d p y k p y ] i k t k, x k e /kq kky kA

–हरिवंशराय 'बच्चन'

# बंजर भूमि में औद्यानिक गतिविधियों द्वारा फल उद्यानिकी प्रोत्साहन की संभावनाएँ

देवेन्द्र पाण्डेय[1], अजय कुमार त्रिवेदी[2], देवानन्द गिरी[3] एवं शिव पूजन[4]

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

भारत के कुल भू–भाग 32.9 करोड़ हेक्टेयर का लगभग 57 प्रतिशत अर्थात 17.5 करोड़ हेक्टेयर विभिन्न कारणों से बंजर पड़ा है। इसके प्रमुख कारक जल तथा वायु द्वारा भूमि का क्षरण, जलभराव, हानिकारक लवणों की सांद्रता में वृद्धि आदि हैं। समेकित प्रयास द्वारा बंजर भूमि पर औद्यानिक गतिविधियों की असीम संभावनाएँ हैं। बंजर भूमि विभिन्न प्रकार की होती है। अतः बंजर भूमि किस प्रकार की है एवं भूमि में कौन–कौन सी औद्यानिक फसलों की संभावना हो सकती है इसकी जानकारी भूमि के समुचित उपयोग के लिये आवश्यक है।

## बंजर भूमि के प्रकार

### 1. शुष्क तथा अर्द्ध शुष्क प्रक्षेत्र

देश के भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 12 प्रतिशत भू–भाग शुष्क अथवा अर्द्ध शुष्क प्रक्षेत्र के अंतर्गत आता है। इस भू–भाग पर लगभग 2 करोड़ लोग तथा 2.3 करोड़ पशु निवास करते हैं जो विश्व के अन्य शुष्क प्रक्षेत्रों की तुलना में अधिक सघन है। इस दबाव के कारण यहाँ उपलब्ध जंगलों का दोहन होने के कारण इनकी उत्पादकता में निरंतर ह्रास हो रहा है जिसके कारण धीरे–धीरे एक बड़ा क्षेत्र बंजर भूमि के रूप में परिणत होता जा रहा है। शुष्क क्षेत्र (3.2 लाख वर्ग किलोमीटर) का 62 प्रतिशत राजस्थान में, 20 प्रतिशत गुजरात, 7 प्रतिशत आंध्र प्रदेश, 5 प्रतिशत पंजाब, 4 प्रतिशत हरियाणा, 3 प्रतिशत कर्नाटक तथा 0.4 प्रतिशत क्षेत्र महाराष्ट्र में है।

### 2. बीहड़ भूमि

देश के लगभग 40 लाख हेक्टेयर भू–भाग में विस्तृत बीहड़ क्षेत्र एक विकराल समस्या बन गया है। बीहड़ भूमि उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात आदि राज्यों में प्रमुख रूप से है। उत्तर प्रदेश में यमुना तथा चंबल नदियों के आस–पास की भूमि पर वनस्पति नहीं होने के कारण खुली हुई जमीन से वर्षा ऋतु में उपजाऊ मिट्टी का तीव्रता से क्षरण होता है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादक भूमि भी धीरे–धीरे बीहड़ के रूप में परिवर्तित होती जा रही है। उत्तर प्रदेश के आगरा, एटा, मैनपुरी, इटावा आदि जिलों में बीहड़ भूमि खेती तथा बागवानी के लिये एक प्रमुख समस्या है। उत्तर प्रदेश बीहड़ भूमि की समस्या से सबसे अधिक प्रभावित है जहाँ लगभग 12.0 लाख हेक्टेयर भूमि बीहड़ है।

### 3. ऊसर भूमि

भारत में लगभग 72 लाख हेक्टेयर ऊसर भूमि है। ऊसर भूमि की समस्या विशेष रूप से पंजाब, हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश में है। ऊसर भूमि को उपस्थित लवणों की बहुलता के आधार पर लवणयुक्त ऊसर तथा क्षारयुक्त भूमि के रूप में वर्गीकृत किया गया है। केवल उत्तर प्रदेश में 12.90 लाख हेक्टेयर ऊसर भूमि है। प्रदेश में ऊसर की समस्या विशेषकर अलीगढ़, एटा, मैनपुरी, इटावा, फतेहपुर, इलाहाबाद, प्रतापगढ़, रायबरेली, उन्नाव, लखनऊ, हरदोई, आजमगढ़ आदि जनपदों में है। पश्चिमी जनपदों में लवणीय तथा मध्य एवं पूर्वांचल में क्षारीय ऊसर की समस्या विशेष रूप से देखी गयी है।

## समस्या का आँकलन

बंजर भूमि का विकास स्थान विशेष में जानवरों को खुला छोड़ने, वहाँ पर उपलब्ध वनस्पतियों के काटने, वर्षा तथा तेज वायुवेग से ऊर्वर मिट्टी के क्षरण के कारण निरंतर होता रहता है। परिणामस्वरूप उपजाऊ भूमि से कुछ ही वर्षों में ऊर्वर मिट्टी बह जाने के कारण बंजर के रूप अथवा कही बीहड़ के रूप में परिवर्तित हो जाती है। ऐसे क्षेत्रों की प्रमुख विशेषताएँ/समस्याएँ निम्नानुसार हैं।

[1,2]वरिष्ठ वैज्ञानिक [2]एवं [3]शोधकर्मी

### (1) उर्वरता में ह्रास

भूमि के निरंतर क्षरण होने से भूमि के ऊपर की सतह की मिट्टी बह जाती है तथा निचली सतह की अनुर्वर भूमि जिसमें जीवांश की कमी होती है शेष रह जाती है जिसके कारण भूमि अनुपजाऊ हो जाती है तथा धीरे–धीरे/बीहड़ भूमि में परिवर्तित हो जाती है।

### (2) नमी की कमी

ऊर्वर मिट्टी तथा जीवांश का निरंतर ह्रास होने के कारण जल धारण क्षमता में कमी आ जाती है। परिणामतः वनस्पतियाँ स्वयं विलुप्त हो जाती हैं।

### (3) हानिकारक लवणों तथा क्षार की बहुलता

प्रायः लवण बाहुल्य जल से सिंचाई करने, समुद्र के किनारे जल वाष्पित होने तथा क्षार की सघनता बढ़ते रहने के कारण भूमि ऊसर ग्रस्त हो जाती है। इनका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित प्रकार से है।

¼v½ y o.k; Dr Å l j %ऐसी भूमि की सतह पर कैल्सियम, मैग्नीशियम, पोटैशियम के क्लोराइड और सल्फेट आयनों की प्रचुरता होती है। भूमि का जल पटल ऊँचा हो जाता है। भूमि की विद्युत संचालकता 4 मिली म्होज प्रति सेंटीमीटर से अधिक तथा विनिमयशील सोडियम 15 प्रतिशत से कम होता है। ऐसी भूमि का पी.एच. मान 8.5 से कम होता है।

¼c½ {kkj ; Dr Å l j %ऐसी भूमि में सोडियम कार्बोनेट तथा बाइकार्बोनेट की सांद्रता बढ़ जाती है। भूमि की विद्युत संचालकता 4 मिली म्होज प्रति सेंटीमीटर से कम, विनिमयशील सोडियम 15 प्रतिशत से अधिक, पी.एच. मान 7.5–11.00 तक होता है। ऐसी भूमि में 30–100 सेंटीमीटर गहराई में कंकड़ की तह पायी जाती है।

उपरोक्त दोनों प्रकार की भूमि लवण अथवा क्षार की बहुलता, जीवांश की कमी तथा उचित जल निकास के अभाव में सामान्यतः बंजर पड़ी रहती है। कहीं–कहीं वर्षा अच्छी होने पर किसान धान की खेती कर लेते हैं।

विभिन्न अनुसंधानों से प्रमाणित हुआ है कि उपर्युक्त लगभग सभी प्रकार की बंजर भूमि का उपयोग औद्यानिक फसलों की बागवानी के लिये किया जा सकता है। इस निमित्त औद्यानिक फसलों का चयन तथा औद्यानिक तकनीकी का विकास एवं सम्यक उपयोग आवश्यक है।

## उपयुक्त औद्यानिक फसलों का चयन

शुष्क अथवा अर्द्ध शुष्क जलवायु हेतु गहरी मूसल जड़ों वाले फल वृक्ष जिनमें पत्तियाँ थोड़ी अथवा पत्ती सतह पर मोम जमाव, दबे हुए पर्णरन्ध्र, पर्णपाती पत्तियाँ, बरसात के समय पुष्पन, फल विकास एवं परिपक्वता आदि गुणों वाले पौधों का चयन करना चाहिए।

### 1. शुष्क प्रक्षेत्र हेतु उपयुक्त फल वृक्ष

खजूर, आँवला, बेर, इमली, महुआ, अमरूद, शरीफा, लसोड़ा, फालसा, करौंदा आदि में पौधे शुष्क प्रक्षेत्र में बागवानी हेतु उपयुक्त होते हैं।

### 2. ऊसर भूमि हेतु उपयुक्त फल

फल वृक्ष जो ऊसर भूमि में विषाक्त मात्रा में विद्यमान धनायन अथवा ऋणायन की अवहेलना अथवा न्यून अवशोषण क्षमता रखते हों। बागवानी हेतु उपयुक्त होते हैं। इसके साथ ही उत्सर्जन, उपवर्जन, तनुकरण तथा परासरणी समायोजन की क्षमता रखने वाले फलों की बागवानी व्यावसायिक रूप से की जा सकती है। इन गुणों के अलावा पौधों की मरूदभिद प्रवृत्ति तथा गहरा मूलतन्त्र, पर्णपाती होना आदि गुण उपयोगी होते हैं।

आँवला, बेर, जामुन, इमली, लसोड़ा, महुआ, खिरनी, शरीफा, कैंथा, अंजीर, करौंदा, फालसा, बेल आदि बंजर भूमि में बागवानी के लिये उपयुक्त फल वृक्ष हैं। इस प्रकार के पेड़ों में शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क परिस्थिति को सहने हेतु गुणों का वर्णन निम्नलिखित है।

### 1. बेर

यह सूखा क्षेत्र में उगने वाला एक फल है। यह लवणयुक्त मृदा एवं लवणयुक्त पानी के प्रति सहनशील होता है। इसकी जड़े बहुत गहरायी से जल अवशोषण करने में सक्षम होती है। इस फल में पुष्पन बरसात शुरु होने के साथ प्रारंभ हो जाता है तथा फल अत्यधिक गर्मी पड़ने से पहले ही पककर तैयार हो जाते हैं। बेर के पौधे अत्यधिक गर्मी में अपनी सारी पत्तियाँ गिरा देते हैं जिससे पौधे में होने वाली वाष्पोत्सर्जन क्रिया अत्यधिक कम हो जाती है और पौधों को अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती है। साथ–ही–साथ पत्तियों की सतह पर क्यूटिकिल की मोटी परत एवं कलिकाओं पर स्केल पाये जाते हैं जो

इन्हें ताप एवं सूखा के प्रति प्रतिरोधी क्षमता प्रदान करते हैं।

## 2. लसोड़ा

यह अत्यन्त सूखा रोधी पौधा है जिसे लगाने के एक साल बाद भी इसको पानी की आवश्यकता नहीं के बराबर होती है। इस पौधे की विशेषता यह है कि शुरूआती गर्मी के दिनों में फलों के समाप्त होने के बाद यह पेड़ अपनी सारी पत्तियाँ गिरा देता है जिससे पौधों में पानी की आवश्यकता अत्यधिक कम हो जाती है। इसके पेड़ों में पुष्पन दिसंबर–जनवरी के माह में होता है तथा फल तीन माह में तैयार हो जाते हैं। इसके फलों को कच्चे में ही तोड़ लिया जाता है क्योंकि इन्हें मुख्यतः अचार बनाने में प्रयोग किया जाता है।

## 3. अनार

इस फल के पौधे लवणीय मृदा एवं उथली मिट्टी में सफलतापूर्वक उगाये जा सकते हैं। अनार के पौधों में सूखा सहन करने की विशेष क्षमता होती है। सामान्यतः अनार के वृक्षों में पुष्पन साल में तीन बार होता हैः अम्बे बहार (बसन्त में पुष्पन), मृग बहार (वर्षा ऋतु में पुष्पन) एवं हस्त बहार (वर्षा ऋतु के बाद में पुष्पन)। यदि अनार में केवल मृग बहार में पुष्पन लिया जाये तथा बाकी समय पेड़ों को तनाव में रखा जाये तो पेड़ों में बढ़वार एवं फलत ऐसे समय में होती है जब वातावरण में नमी की उपलब्धता होगी एवं पौधा शुष्क परिस्थिति में भी अच्छी फलत देगा। इसके पौधे गर्मी में पत्तियाँ गिरा कर पानी की आवश्यकता को कम कर लेते हैं।

## 4. शरीफा

यह भी एक सूखा रोधी पौधा है जो बंजर भूमि में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसका पौधा सूखा, लवणीय मृदा एवं कुछ हद तक लवणीय पानी की सिंचाई के प्रति भी सहनशील होता है। इसके पौधे उथली मिट्टी में भी सफलतापूर्वक उगाये जा सकते हैं। वृक्षों में पुष्पन जून–जुलाई में होता है जब वातावरण में ज्यादा नमी होती है तथा नवंबर–दिसंबर में फल तुड़ाई योग्य हो जाते हैं। पौधे की पत्तियाँ गर्मी में गिर जाती है जिससे पौधों को पानी की आवश्यकता काफी कम हो जाती है।

## 5. अमरूद

इसके पौधे मृदा लवणता को कुछ हद तक सह लेते हैं जिससे समस्याग्रस्त भूमि में भी अमरूद की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसके पेड़ वर्ष में तीन बार पुष्पित होते हैं। बसन्त ऋतु में (अम्बे बहार), वर्षा ऋतु में (मृग बहार) तथा वर्षा ऋतु के बाद (हस्त बहार)। अतः पुष्पन एवं फलन को मृग बहार के रूप में नियंत्रित कर अच्छी फलत प्राप्त किया जा सकता है। अत्यधिक गर्मी में पौधे अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं जिससे पौधों की पानी की आवश्यकता कम हो जाती है।

## 6. आँवला

यह एक ऐसा फल है जो लवणीय एवं क्षारीय दोनों मृदाओं में भी पैदा होता है। सूखा सहन करने की इस पेड़ में अद्‌भुत क्षमता होती है। इस पेड़ में फूल फरवरी–मार्च के महीने में आते हैं। तत्पश्चात पुष्प से फल बनना शुरू हो जाता है तथा इस अवस्था में ही फल सुसुप्तावस्था में चले जाते हैं तथा पूरी गर्मी भर फल सुसुप्ता अवस्था में रहते हैं। इस प्रकार जून–जुलाई में बरसात शुरू होने के साथ फल बढ़ते हैं तथा अक्टूबर–नवंबर में फल पककर तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार से आँवला शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों के लिये बहुत ही उपयोगी फल है।

## 7. फालसा

सूखाग्रस्त भूमि में उगाने के लिये फालसा एक बहुत ही उपयोगी पौधा है। शुरूआती गर्मी में फलों की तुड़ाई के बाद पेड़ अपनी सारी पत्तियाँ गिरा देते हैं तथा मौसम को सफलतापूर्वक बर्दाश्त कर लेता है। इस फल में पुष्पन दिसंबर एवं जनवरी के माह में होता है तथा अप्रैल माह में फल पककर तैयार हो जाते हैं।

## 8. बेल

बेल के पौधे सूखे क्षेत्र एवं लवणीय मृदाओं में सफलतापूर्वक उगाये जा सकते हैं। इस पौधे की विशेषता यह है कि इससे पुष्पन बरसात में शुरू होता है। गर्मी आने तक ये पककर तैयार हो जाते हैं। अतः फल के बढ़वार के समय वातावरण में नमी होती है। इसके पेड़ को क्षारीय मृदा एवं कुछ हद तक दलदली भूमि में भी

उगाया जा सकता है। इसके अलावा बेल का पौधा गर्मी में अपनी सारी पत्तियाँ गिरा देता है जिससे इसकी पानी की आवश्यकता अत्यधिक कम हो जाती है और पौधा सूखे की परिस्थिति को सफलतापूर्वक सहन कर लेता है।

### 9. कैथा

कैथा का पौधा भी सूखा एवं लवणीय मृदा को अच्छी तरह से सहन कर लेता है। इसका मुख्य कारण इसका विस्तृत जड़ तंत्र तथा पुष्पन एवं फलों का विकास उसी समय पर होना जब वातावरण में नमी की मात्रा अधिक हो इसको शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में उगाने के लिये उपयुक्त फल वृक्ष बनाता है।

### 10. जामुन

एक बार यदि प्रारंभ में जामुन का पौधा स्थापित हो जाये तो यह सूखा एवं हल्की लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। यह गुण इसके विस्तृत जड़ तंत्र के कारण होता है। इसमें पुष्पन बसंत ऋतु में होता है तथा फलों की बढ़वार बरसात के मौसम में होती है। इस प्रकार से यह शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में बागवानी के लिये उपयुक्त पाया गया है।

### 11. करौंदा

यह एक अत्यंत ही सूखा रोधी पौधा होता है। इस पौधे में पुष्पन एवं फल वृद्धि ऐसे समय में होती है जब वातावरण में अत्यधिक नमी हो (बरसात के मौसम में)। इस प्रकार से यह शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्र में उगाने हेतु उपयुक्त फल वृक्ष है।

### 12. खजूर

खजूर का पौधा लवणीय मृदा एवं पानी को सफलतापूर्वक सहन कर सकता है। इसके पौधों को जून तक पर्याप्त ताप यूनिट की आवश्यकता होती है ताकि फलों का विकास ठीक प्रकार से हो सके। यदि फलों का विकास जून तक पर्याप्त नहीं होता है तो अधिक बरसात एवं अत्यधिक आर्द्रता के कारण फलों के फटने की समस्या हो जाती है। इस प्रकार की परिस्थिति राजस्थान एवं गुजरात में होती है। ऐसा प्रायः कहा जाता है कि इस पौधे का ऊपरी भाग अत्यधिक गर्मी में तथा जड़ तंत्र पानी में होता है।

### 13. अंजीर

इसके पौधों में लवणीय मृदा एवं सूखे को अच्छी तरह से सहन करने की क्षमता होती है। इसके फलन को नियंत्रित कर बरसात के मौसम के साथ जोड़ा जा सकता है एवं फलों को जाड़े में लिया जा सकता है। यह पौधा गर्मियों में अपनी पत्तियाँ गिरा कर सूखा सहन कर लेता है।

इसके अलावा भी कुछ भारतीय पौधे बंजर भूमि पर सफलतापूर्वक उगाये जा सकते हैं और उनकी बागवानी से व्यावसायिक लाभ कमाया जा सकता है, जैसे इमली (जिसमें की अत्यधिक गहरा जड़ तंत्र होता है), केर (जिसमें अत्यधिक कम पत्तियाँ होती हैं तथा तने में लिस–लिसा पदार्थ पाया जाता है) आदि।

अतः औद्यानिक फसलों की समुचित जानकारी से बंजर, लवणीय, क्षारीय, सूखाग्रस्त आदि मृदाओं में भी सफलतापूर्वक व्यावसायिक बागवानी कर न केवल लाभ कमाया जा सकता है अपितु मृदा सुधार भी किया जा सकता है। ऐसी गतिविधियों से मृदा क्षरण को काफी हद तक रोका भी जा सकता है।

### पतंजलि योग सूत्र 1

योग के सारे मार्ग वास्तव में गहरे रूप से एक ही समस्या से संबंधित है : मन का उपयोग कैसे करें? ठीक प्रकार से उपयोग किया हुआ मन उस बिंदु तक पहुँच जाता है जहां यह अ–मन बन जाता है। गलत प्रकार से किया हुआ मन उस बिंदु तक पहुँच जाता है, जहाँ यह मात्र अराजकता बना होता है।

पागलखाने में बैठे एक पागल आदमी ने और बोधि वृक्ष के नीचे बैठे बुद्ध ने, दोनों ने मन का प्रयोग किया है। ठीक प्रकार से उपयोग करने पर यह मिटने लगता है और एक घड़ी आती, जब यह होता ही नहीं है।

गलत प्रकार से उपयोग किया मन अनेक बन जाता है। गलत प्रकार से प्रयुक्त होने पर यह भीड़ बन जाता है और अंत में केवल पागल मन ही वहां होता है और तुम बिलकुल अनुपस्थित होते हो। *–ओशो*

# अमरूद में सघन बागवानी एवं छत्रक प्रबंधन

के.के. श्रीवास्तव[1] दिनेश कुमार[2] एवं प्रदीप कुमार शुक्ल[3]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

भारतीय एक कृषि प्रधान देश है और देश की 17 प्रतिशत जनसंख्या, 11 प्रतिशत पशुधन का निर्वाहन मात्र 2.3 प्रतिशत भू–भाग पर निर्भर करता है। भारत की जनसंख्या पिछले 50 वर्षों के दौरान बेतहासा बढ़ी है। बढ़ती जनसंख्या के साथ–साथ हमारी कृषि का भी विकास हुआ है और भारत खाद्यान्न आयातक से निर्यातक देश बन गया है। लोगों के पोषण आवश्यकता के प्रतिपूर्ति हेतु सरकारों ने औद्योगिक फसलों पर ध्यान दिया और भारत में रेनबो क्रांति के द्वारा फलों के उत्पादन में आशातीत वृद्धि की। भारत का फल उत्पादन में चीन के पश्चात दूसरे स्थान पर है। औद्योगिक फसलों का उत्पादन 1950–51 की तुलना में 7–8 गुना बढ़ा है। भारत फलों के उत्पादन में भी चीन के बाद दूसरे स्थान पर है।

भारत विश्व के संपूर्ण फल उत्पादन का 11 प्रतिशत से अधिक उत्पादन करता है। भारत में फलों के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल एवं उत्पादन 7.2 मीट्रिक हेक्टेयर, 88 मिलियन टन है। भारत आम, केला, पपीता, अनार, सपोटा एवं आँवला के उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान रखता है। अंगूर की उत्पादकता में भारत प्रथम स्थान पर है। विश्व के औसत उत्पादकता की तुलना में भारत केला एवं सपोटा में विश्व के औसत उत्पादकता से भी अधिक है जबकि नींबू, आम, सेब, अमरूद, नासपाती, बादाम, अखरोट, पपीता एवं सपोटा की औसत उत्पादकता विश्व के औसत उत्पादकता की तुलना में कम है।

फलों की औसत उत्पादकता कम होने के अनेक कारण हैं जिसमें परंपरागत दूरी पर पौध रोपण, विभिन्न प्रकार की व्याधियाँ एवं कीटों का प्रभाव, छत्रक प्रबंधन, निश्चित सिंचाई पद्धति का कम उपयोग तथा पुरानी बीजू पौधों का रोपण आदि हैं। उपयुक्त कारकों में सर्वाधिक प्रभाव डालने वाला कारक प्रति इकाई क्षेत्र में कम पौधों का रोपण तथा उचित छत्रक प्रबंधन का अभाव है। एक शोध के अनुसार बागवानी के विभिन्न कारकों में छत्रक प्रबंधन एवं सघन बागवानी उत्पादकता में 60–70 प्रतिशत से अधिक का योगदान करता है। उक्त कारक को ध्यान में रखते हुए इस विषय का विस्तारपूर्वक विवरण निम्नानुसार प्रस्तुत है।

बढ़ती आबादी, फलों की बढ़ती माँग और शहरीकरण के कारण बागवानी के लिये उपलब्ध भूमि धीरे–धीरे घटती जा रही है। फलों की माँग को देखते हुए अधिक उत्पादन अति आवश्यक है। इसके लिये प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक–से–अधिक पौध रोपण या सघन बागवानी कर अधिक उत्पादकता के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। सघन बागवानी में प्रति इकाई क्षेत्र को सर्वाधिक उत्पादक बनाया जाता है। सघन बागवानी एक तकनीक है जिसमें प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक–से–अधिक पौधों का रोपण किया जाता है। प्रारंभ के वर्षों में 5–8 वर्ष तक पौधों के मध्य प्रतिस्पर्धा नही होती है। परन्तु कालांतर में पौधों के बीच अंतराल कम होने के साथ–साथ प्रकाश की रोशनी पेड़ के केन्द्र में नहीं पहुँचती है जिस कारण पेड़ में कीट लगते हैं तथा उनमें रोग का जन्म होता है। जिन बागों में छत्रक प्रबंधन नहीं होता है उनमें पौधे आपस में प्रतिस्पर्धा करते हैं तथा पेड़ के अन्दर सूक्ष्म जलवायु के निर्माण के कारण अन्य समस्याएँ उत्पन्न होने लगती हैं। शोध में यह भी पाया गया है कि सघन बागवानी एवं छत्रक प्रबंधन का कार्य साथ–साथ किया जाता है तथा यह शतत चलने वाली प्रक्रिया है। पुराने परंपरागत बागों में कम उत्पादकता का कारण पेड़ के केन्द्रीय भाग में रोशनी का अभाव होने के कारण कीटों तथा व्याधियों की सघनता बढ़ती है। पुराने बगीचों में फलत पेड़ के शीर्ष में लगने का कारण पेड़ के ऊपरी भाग पर ही सूर्य के प्रकाश का पड़ना जिस कारण छत्रक के उस भाग पर जहाँ प्रकाश पड़ता है, फल का टिकाव होता है। छत्रक प्रबंधन द्वारा इस समस्या का निदान किया जा सकता है। सघन बागवानी एवं छत्रक प्रबंधन पर किये गये शोधों के अति उत्साही परिणाम प्राप्त

[1,2,3]प्रधान वैज्ञानिक

हुए हैं।

सघन बागवानी आधुनिक भौतिक विज्ञान के सिद्धांत पर आधारित है। सघन बागवानी में पौधों को पास–पास लगाया जाता है और आधुनिक विज्ञान के सिद्धांत का प्रयोग कर पौधे की शाखाओं की इस तरह सधाई की जाती है जिससे पेड़ अधिक–से–अधिक सौर ऊर्जा का दोहन कर सकें।

## सघन बागवानी की आवश्यकता

भारत की तेजी से बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण, भूखंडन और औद्योगिकीकरण के कारण बागवानी के लिये उपलब्ध भूमि क्षेत्र दिन–प्रतिदिन कम होती जा रही है। इसके अतिरिक्त उपयुक्त भूमि की कमी, उच्च लागत आवश्यकता, जल की कमी, संस्कार के द्वारा अधिक जल के दोहन पर रोक, श्रम समस्या बढ़ती जनसंख्या के कारण बढ़ती माँग, पोषण के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण फलों एवं सब्जियों की बढ़ती माँग आदि। रूसी परिस्थितियों के कारण ही सघन बागवानी प्रौद्योगिकी का मानकीकरण हुआ। सघन बागवानी की प्रौद्योगिकी का सर्वप्रथम प्रयोग यूरोपीय देशों में आड़ू में किया गया जो अत्यंत सफल रहा। कालान्तर में, यह प्रौद्योगिकी अन्य फलों जैसे सेब, नाशपाती, खुवानी, आलू बुखारा आदि में किया गया और सफल रहा जिसके कारण फलों की उत्पादन एवं उत्पादकता में बहुत वृद्धि हुई। सघन बागवानी पर सर्वाधिक शोध पश्चिमी देशों में प्रारंभ हुआ।

आज अधिकांश पौधों के पेड़ के बढ़वार को नियंत्रित करने वाले क्लोनल मूलवृंत पर उगते हैं और उन्हें सघन बागवानी में लगाया जाता है। सघन बागवानी का मुख्य सिद्धांत है पेड़ के फलत एवं वानस्पतिक वृद्धि के मध्य संतुलन स्थापित करना तथा उनको स्वस्थ भी रखना होता है। इस बागवानी में क्षैतिज एवं उर्ध्व रूप में जगह का सर्वाधिक दोहन होता है।

## सघन बागवानी

सघन बागवानी के सिद्धांत में प्रति इकाई क्षेत्रफल से कुल उत्पादन बढ़ जाता है परन्तु प्रति पौध उत्पादन कम होता है। उत्पादन बढ़ने का कारण प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक संख्या में पौध लगाना है सघन बागवानी हेतु पेड़ की किस्म आनुवांशिक रूप से कम वानस्पतिक वृद्धि करने वाली, उचित शाखा तराशी तकनीक एवं वृद्धि नियामक रसायन के उपयोग द्वारा पौध वृद्धि को नियंत्रण में रखा जाता है।

सघन बागवानी की शुरुआत यूरोप में सेब के फल में प्रारंभ हुई। आज सघन बागवानी की तकनीक का उपयोग न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, यूरोप तथा अमेरिका में किया जाता है। प्रति इकाई क्षेत्रफल में पौध के आधार पर सघन बागवानी को निम्न वर्ग में बाँटा जाता है।

प्रति हेक्टेयर 100 – 150 पेड़ परंपरागत बाग
250 – पेड़ कम सघन बाग
250 – 550 मध्यम सघन बाग
500 – 1250 सघन बाग
1250 – से अधिक अति सघन बाग

अमरूद (*सीडियम ग्वाजावा* एल.) पूरे वर्ष हरा रहने वाला एवं पोषण से भरपूर फल है। इसका उद्‌भव, उष्ण अमेरिका, दक्षिण मेक्सिकों से लेकर उत्तर दक्षिण अमेरिका है (मर्टन, 1987), अमरूद के वृहत अनुकूलन क्षमता के कारण यह उपोष्ण एवं उष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में होता है। अमरूद को 1000–2000 घन मीटर/हेक्टेयर/वर्ष पानी की आवश्यकता होती है (लगौदो एवं साथी, 2002), अमरूद की काश्तकारी के लिये 15–30 डिग्री सेंटीग्रेट तापमान के साथ औसत तापमान 18 डिग्री सेंटीग्रेट तापमान सबसे उपयुक्त माना जाता है। अमरूद में विटामिन सी 2–3 गुना अधिक होती है। अमरूद में विटामिन सी की मात्रा 486 से 871 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम गूदा में दर्ज किया गया है।

अमरूद का आदर्श छत्रक ऐसा होना चाहिए जिससे वह अधिक–से–अधिक संभावित सिद्धांतों को संतुष्ट करे। अमरूद का आदर्श छत्रक बौना, फैलावदार, मुख्य साख बड़ा एवं केन्द्र खुला होना चाहिए।

अमरूद की सर्वाधिक उत्पादन पाकिस्तान, ब्राजील, मेक्सिको, इजिप्ट, भारत, कोलंबिया, बेनेजुयेला और दक्षिण अफ्रीका है। अमरूद की उत्पादकता 5–50 टन/हेक्टेयर विभिन्न जलवायु, अंतराल एवं किस्मों में दर्ज की गयी है।

अमरूद में फल नयी शाखा पर लगते हैं और यह नये कल्ले पुरानी शाखाओं पर वृद्धि करता है। पुष्प कल्ले के

शीर्ष एवं पार्श्व भाग पर लगता है। सामान्यतः पुष्प, पत्ती एवं शाख के जोड़ (एक्सिल) पर लगता है। पुष्प 1–2 या तीन की गुच्छे में लगते हैं।

अमरूद में फलत, पौधे में आने वाले नये कल्ले पर निर्भर करता है। अधिक नये कल्ले आने से अधिक फल लगने की संभावना रहती है। ऊपर की ओर वृद्धि करने वाले शाखाओं में नये कल्ले का विकास शीर्षस्थ भाग पर होता है और नीचे की कलिका सुषुप्त ही रह जाती है। इस प्रक्रिया के शीर्षस्थ भाग का प्रभावीकरण कहते हैं।

अमरूद को सामान्यतः 5–6 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है जिसमें 278–400 पौध/हेक्टेयर लगते हैं और अधिक नजदीक लगाने से फल की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इलाहाबाद सफेदा को विभिन्न दूरी (2×2, 2×4, 2×3, 4×4, 4×6 एवं 6×6) मीटर पर लगाया गया और पाया गया कि सर्वाधिक प्रति पौध उपज 6×6 मीटर पर लगाये गये पेड़ में सबसे कम उपज दर्ज की गयी। फल की उपज प्रति हेक्टेयर सर्वाधिक 2×4 मीटर पर दर्ज की गयी। अमरूद में हेज रो एवं आयताकार पौध रोपण सबसे उपयुक्त पाया गया। एक शोध में पया गया कि अमरूद को पूर्व–पश्चिम दिशा में लगाने पर अधिक उपज, उत्तर दक्षिण दिशा की तुलना में दर्ज की गयी। पश्चिम के फैलाव में अधिक फलत क्षेत्रफल दर्ज किया गया। अमरूद को 6×2 मीटर पर लगाने पर लगभग 2 से 3 गुना अधिक उपज प्राप्त होती है।

अमरूद के अतिसघन बागवानी 27000 पौध/हेक्टेयर (60×60 सेंटीमीटर), 37000 (90×30 सेंटीमीटर) और 73000 पौध/हेक्टेयर (45×30 सेंटीमीटर) पर लगाने पर पता चला कि 27000 पौध/हेक्टेयर से कम में उत्पादकता अच्छी रहती है एवं इससे और कम पौध संख्या प्रति हेक्टेयर लगाने की एवं शोध की आवश्यकता है। केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ में 2×1 मीटर (5000 पौध/हेक्टेयर) में उत्पादकता दर्ज की गयी।

## छत्रक प्रबंधन

अमरूद की शाखाओं पर अधिक कल्ले के विकास से उत्पादन में बढ़ोतरी हो सकती है। अधिक कल्ले के विकास के लिये शाख को झुकाने से पार्श्व भाग में प्रसुप्त कलिका सक्रिय हो जाती है और शीर्षस्थ प्रभावीकरण कमजोर हो जाती है। इस तकनीक से अधिक पुष्प का उत्पादन होता है। शाख को झुकाने से नीचे के भाग में कार्बन नाइट्रोजन के अनुपात बढ़ने के साथ–साथ प्रोटीन का भी सान्द्रता बढ़ जाती है जिससे अधिक पुष्प का उत्पादन होकर अधिक फल टिकाव होता है।

अमरूद में फलत नये कल्ले पर आते है। अतः इसमें छत्रक प्रबंधन आसान एवं उत्तरदायी होता हैं। सघन बागवानी में काट–छाँट द्वारा छत्रक प्रबंधन किया जा सकता है। यदि अमरूद में छत्रक प्रबंधन न किया जाये तो छत्रक के आंतरिक भाग में प्रकाश का प्रवेश कम होता हैं जिस कारण फलत एवं गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। सघन विधि में लगाये गये बाग में उत्पादक क्षमता बनाये रखने के लिये छत्रक प्रबंधन आवश्यक हैं। सधाई करने से पेड़ का मध्य खुला होता है तथा मजबूत आधार भूत पेड़ का ढ़ाँचा तैयार होता है और शाखाओं में अधिक फलत के साथ–साथ गुणवत्ता अच्छी होती है। मध्य खुला सधाई प्रणाली वहाँ ठीक होती है जहाँ पौधे को एकल मुख्य शाख प्रणाली में सधाई की जाती है। एकल शाख प्रणाली में पौधे को एक 50–60 सेंटीमीटर की ऊँचाई पर कृंतन किया जाता है जिसके नीचे 4 शाखाओं को चारों दिशाओं में 10–15 सेंटीमीटर की दूरी पर बढ़ने दिया जाता है जिससे मुख्य प्राथमिक शाखा का विकास होता है, इन शाखाओं को उनकी लंबाई का आधा या एक तिहाई छोड़कर काट दिया जाता है। अगले 3–4 वर्ष बाद 2 अन्य शाखाओं को प्रोत्साहित किया जाता है। शाखाओं के विकास के समय ध्यान देने की आवश्यकता है कि शाखा एवं मुख्य तने के मध्य उचित कोण (क्रास एंगल) होना चाहिए जिससे पेड़ का उचित क्षैतिज वृद्धि हो सके। अमरूद में क्षैतिज शाखा अधिक फलत देती है जबकि सीधी ऊपर की ओर बढ़ने वाली शाख में फलत कम या नहीं के बराबर होती है। इस प्रकार सीधी बढ़ने वाली शाखा को झुकाकर क्षैतिज वृद्धि होतु प्रोत्साहित किया जाता है। क्षैतिज शाख वृद्धि प्रोत्साहन से शाख की कलिका क्रियासील होकर पुष्पकलिका में परिवर्तित हो जाती है और इसमें फलत प्रारंभ होती है। मुख्य शाख के नीचे भाग से वृद्धि करने वाले सकर को नियमित ढंग से निकालना चाहिए। अमरूद की शाखाओं को $90^0$ झुकाने से पेड़ की वानस्पतिक वृद्धि का नियंत्रित किया जा सकता

है और फल उत्पादन भी अधिक होता है। एक शोध के अनुसार झुकायी गयी शाखाओं में 21.43 किलोग्राम तथा बिना उपचार वाले शाखाओं में केवल 7.10 किलोग्राम फल प्रति पौध प्राप्त हुआ ।

## इस्पेलियर आर्कीटिक्चर तकनीक अमरूद की उत्तम गुणवत्ता का फल

अमरूद की पौध आर्कीटेक्चर (इस्पेलियर या टायर) द्वारा अमरूद लगाकर उत्तम गुणवत्ता के अधिक फल का उत्पादन करने में सफलता पायी है। इस तकनीक में एक वर्ष में फलत प्रारंभ हो जाता है। प्रथम वर्ष एक पौध से 35–45 फल प्राप्त होते हैं तथा औसतन फल बड़े (230–290 ग्राम प्रति फल) 7–9 किलोग्राम/पेड़ प्राप्त होते हैं। प्रति हेक्टेयर 1415 टन उपज प्राप्त की जा सकती है, 55–62 प्रतिशत फल 'ए' ग्रेड के होते हैं। इस तकनीक से पौधों की सधाई करने पर उत्तम गुणवत्ता के फल प्राप्त होते हैं जिससे किसान अधिक लाभ कमा सकते हैं। इस तकनीक में पौधे की सधाई तार के सहारे की जाती है। सर्वप्रथम एंगल लगाकर 45–50 सेंटीमीटर के अन्तराल पर चार से पाँच तार फैलाया जाता है। इन्हीं तारों पर पौधों की सधाई की जाती हैं। इस तकनीक में पौधे–से–पौधे की दूरी 3 मीटर तथा कतार–से–कतार की दूरी 1.5 मीटर होता है। इस पद्धति में उगाये गये पौधों की नियमित काट–छाँट आवश्यक है जिससे पौधे की कतार से कतार के मध्य वृद्धि को नियंत्रित किया सके। इस पद्धति में पौधों की 8–10 सहायक शाखाओं को ही विकसित किया जाता है जिस पर फल टिका होता है। इस तकनीक में काट–छाँट एवं बेंडिंग से नियमित रूप से नयी फल देने वाली शाखाओं का विकास होता रहता है। पौधों पर छिड़काव सुविधाजनक रहता है एवं फलों की बैगिंग, कीट एवं व्याधिनाशक रसायनों के घोल का छिड़काव में कम मात्रा लगती है तथा कम समय में अधिक–से–अधिक पेड़ों का छिड़काव किया जा सकता है। शाखाओं को 90 डिग्री कोण पर तार के सहारे सधाई की जाती है जिससे पौधे के प्रत्येक भाग पर उचित प्रकाश पड़ता है और अधिक तथा उत्तम गुणवत्ता के फल का उत्पादन होता है।

*अमरूद की सघन बागवानी*

*अमरूद के सघन बाग में इस्पेलियर सधाई द्वारा अधिक उत्पादन*

### रश्मिरथी

l e> dj nkss k eu esa HkfDr Hkfj ;s
fi r keg dh rjg lEeku dfj;s
eu q rk dk u;k usr k mBk gS
txr ls T;ksfr dk T;ksr k mBk gSA

*—दिनकर*

# फल मक्खियों के प्रकोप से बचाव हेतु प्रभावी ट्रैप विकसित

गुंडप्पा[1] एवं पी. के. शुक्ल[2]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

फल मक्खियों के प्रकोप से बारिश के मौसम में आकर्षक दिखने वाले फल और सब्जियाँ मैगट (सूंड़ियों) से भरी हो सकती हैं। बाहर से देखने पर इनकी उपस्थिति ज्ञात नहीं हो पाती है और फलों को काटने के बाद भी धोखा हो सकता है। अतः जरूरी है कि हर कोई इन्हें पहचाने और खाने से पहले गौर से देख कर इनकी अनुपस्थिति सुनिश्चित कर लें। मादा फल मक्खियाँ विकसित हो रहे सब्जियों और फलों में अंडे देती हैं जो एक सप्ताह के भीतर मैगट के रूप में विकसित होकर और गूदे को खाती हैं। प्रारंभ में इनकी उपस्थिति पहचानना कठिन होता है। यह गूदे से मिलते–जुलते सफेद या मटमैले रंग की होती हैं। इनकी अधिक संख्या होने पर गूदे में सड़न हो जाती हैं और फल खराब होकर गिर जाते हैं। जिससे प्रभावित फल और सब्जियाँ खाने के लिये अनुपयुक्त हो जाती हैं। बरसात के मौसम में इस तरह की क्षति बहुत अधिक होती है जो किसानों को भारी आर्थिक नुकसान पहुँचाती हैं। फलों के मक्खियों के गंभीर प्रकोप के कारण आम की देर से पकने वाली प्रजातियों, अमरूद की बरसात की फसल और सब्जी फसलों को अधिक हानि पहुँचती हैं। यदि समय पर उचित हस्तक्षेप नहीं किया जाता है तो बरसात के मौसम में लगभग 80 प्रतिशत तक फल क्षतिग्रस्त हो सकते हैं।

इस कीट के महत्व को ध्यान में रखते हुए प्रभावी फल मक्खी के लिये फेरोमोन ट्रैप विकसित की गयी है। ये फेरोमोन ट्रैप नर मक्खियों को आकर्षित करती हैं और इससे मादा मक्खियों द्वारा उत्पन्न होने वाले अंडों के निषेचन में व्यवधान होता है। फल मक्खियों के प्रबंधन के लिये बाजार में विभिन्न प्रकार के ट्रैप उपलब्ध हैं जो या तो महँगे हैं या सस्ते। लेकिन बरसात के मौसम के अनुरूप तकनीकी रूप से ठीक नहीं हैं। जुलाई महीने के दौरान उत्तर भारत में भारी बारिश होती है। बारिश के कारण फल मक्खी ट्रैप में जल के प्रवेश से गुटके डूब जाते हैं और जल्द ही अप्रभावी हो जाते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए, भाकृअनुप–केंद्रीय उपोषण बागवानी संस्थान, लखनऊ ने दोषों को दूर करने के लिये एक प्रभावी डिजाइन विकसित की है। संशोधित जाल में गर्दन पर दोनों तरफ से मक्खी के प्रवेश छेद को विशेष फ्लैप बरसात के मौसम के दौरान पानी के प्रवेश को रोकने के लिये डिजाइन किया गया है। इसके अलावा यह डिजाइन बारिश के पानी से गुटके की रक्षा करता है। बाजार में उपलब्ध अन्य ट्रैप डिजाइनों की तुलना में यह सस्ता भी है। फल मक्खियों के भारी प्रकोप के चलते बारिश के मौसम में अमरूद के अच्छे फलों की फसल कम होती है। यदि यह ट्रैप सही समय पर लगाया जाता है तो बरसात के मौसम में भी अमरूद की फसल कम प्रभावित होती है। किसानों के लिये उनकी आवश्यकता के अनुसार समय पर ट्रैप हर जगह उपलब्ध होना कठिन रहता है। अतः भाकृअनुप–केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान डाक के द्वारा मामूली कीमत पर किसानों को ट्रैप की आपूर्ति करने के लिये सुविधा प्रदान की है। फल मक्खियों से फसल को बचाने के लिये इच्छुक किसान इस ट्रैप का लाभ उठा सकते हैं।

ट्रैप खरीदने के लिये निदेशक को ई–मेलः nursery.cish@gmail.com या पोस्ट से पत्र भेजें।

पता : निदेशक, भाकृअनुप–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, पोस्ट : काकोरी, लखनऊ–226 101

एनईएफटी/आरटीजीएस के माध्यम से खाते में भुगतान किया जा सकता है :

खाता धारक : आईसीएआर–यूनिट–सीआईएसएच, लखनऊ

खाता क्रमांकः 1153012101000034

आईएफएससी कोड : PUNB0619500

प्रति 5 ट्रैप कीमत : 65×5 = 325/– + डाक व्यय 500 ग्राम भार के स्पीड पोस्ट का (दूरी के अनुसार दर अलग–अलग, पोस्ट ऑफिस से पता करें)।

[1]वैज्ञानिक एवं [2]प्रधान वैज्ञानिक

# फल फसल पौधशालाओं में होने वाले रोग एवं उनका प्रबंधन

प्रभात कुमार शुक्ल[1]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

फल पौधों के प्रजनन का कार्य मुख्यतः कायिक विधि द्वारा किया जाता है। इस विधि से पौधों को तैयार करने के लिये आधार पादप के बीज से पौधशाला में क्यारी बनाकर या थैलियों में बीज की बोआई कर उन्हें तैयार किया जाता हैं। पौध तैयार करने के लिये उचित मौसम में ही बीज की बोआई या कायिक कलम की रोपाई की जानी चाहिए अन्यथा रोगों का प्रकोप अधिक होता है। भूमि में उग रहे पौधे सदैव ही मृदा में उपस्थित रोगकारी जीवों के संपर्क में रहते हैं। आदर्श परिस्थितियों में भी कुछ–न–कुछ पौधे संक्रमित हो जाते हैं। इस प्रकार के संक्रमण से आवश्यक नहीं है कि रोगों के लक्षण उत्पन्न हों। इसी प्रकार पौधशाला में उग रहे पौधे भी वायु जनित फफूँद आदि रोगकारी जीवों के संक्रमण से रोगग्रस्त होते हैं। यदि वातावरण रोगकारी जीवों के लिये सहायक होता है और पौधों की सहिष्णुता कमजोर होती है तो अनेक प्रकार के रोगों के लक्षण उत्पन्न होते हैं। पौधशाला में पौध के कुछ महत्वपूर्ण रोगों के लक्षणों एवं उनके नियंत्रण का विवरण प्रस्तुत है।

## 1. स्तंभ विगलन एवं ग्रीवा विगलन (डेम्पिंग ऑफ या कॉलर रॉट)

बीज से उगे हुए कोमल पौधे इस रोग का शिकार होते हैं। मिट्टी में अधिक मात्रा में उपलब्ध जल के साथ दिन के समय अधिक तापमान इस रोग को बढ़ाने में सहायक होता है। इस रोग को उत्पन्न करने करने वाले फफूँद भूतल पर कोमल तने में संक्रमण कर गलन पैदा कर देते हैं। गोलाकार या अनियमिताकार जलसिक्त धब्बे निचले तने को पूरी तरह घेर लेते हैं। सड़न के कारण रोगग्रस्त भाग गलकर तथा गहरे भूरे या काले रंग में बदल जाते हैं और फिर पौधा गिरकर मर जाते हैं। जमीन के कुछ ऊपर और नीचे जड़ तक तना इससे प्रभावित होता है जिससे जड़ का विगलन हो जाता है। संक्रमित भाग पर फफूँदी का जाल एवं स्क्लेरोशिया देखी जा सकती हैं। इस रोग से बचाव हेतु सिंचाई सीमित मात्रा में शाम के समय की जानी चाहिए। वर्षा ऋतु में जल निकास का उचित प्रबंध रखना चहिए। बीज बोआई से एक सप्ताह पूर्व क्यारी की मृदा का उपचार थायोफेनेट मिथाइल या कार्बेन्डाजिम के 0.2 प्रतिशत के घोल से करना चाहिए। यदि पौध में रोग के लक्षण प्रकट हो रहे हों तो उपरोक्त से ही या मैटालैक्सिल के 0.2 प्रतिशत घोल का इस प्रकार प्रयोग करना चाहिए कि पौधों की पत्तियों पर छिड़काव के साथ–साथ जड़ क्षेत्र भी सिंचित हो जाये।

## 2. पौध का म्लानि या उकठा (विल्ट)

इस रोग का प्रकोप सामान्यतः एक माह से अधिक उम्र के पौधों में होता है। रोगकारी फफूँद का प्रारंभिक संक्रमण भूमि स्तर से लेकर 5 सेंटीमीटर गहराई तक स्थित जड़ में होकर ऊपर की ओर बढ़ता है। संक्रमित पौधों को मृदा घोल की आपूर्ति बाधित होती है। रोग का प्रथम लक्षण अंतस्थ शाखाओं के सिरे की पत्तियों के पीला पड़ने एवं उनमें हल्के कुंचन के रूप में प्रकट होता है। बाद में अमरूद के पौधे की पत्तियाँ रक्ताय भूरे रंग की हो कर धीरे–धीरे मुड़ने लगती हैं और अन्त में पूरा पौधा मुरझाकर सूख जाता है। संक्रमित मृदा में उग रहे आम के पौधों में भी उकठा का संक्रमण हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप संक्रमित पौधे पौधशाला में भी उकठ सकते हैं या सालों बाद बाग में मरते हैं।

उकठा रोग से बचाव हेतु एक ही स्थान पर बार–बार पौधा नहीं उगाना चाहिए। बीज बोआई के पूर्व मृदा का उपचार 0.2 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम के घोल से करना चाहिए। पौधे उगाने से 15 दिन पहले गढ्डों में 2 प्रतिशत फार्मलीन के 5 लीटर घोल को डालकर पॉलिथीन से ढकने से भी रोग पर नियंत्रण होता है। रासायनिक विधि के अतिरिक्त मृदा में 5 किलोग्राम प्रति वर्ग मीटर *ट्राइकोडर्मा विरीडी* शोधित कंपोस्ट खाद का प्रयोग भी लाभकारी होता है।

[1]प्रधान वैज्ञानिक

साथ ही पौधों के स्थान परिवर्तन के समय जड़ों को कटने–टूटने से बचाना चाहिए।

### 3. कलम (ग्राफ्ट) जोड़ सड़न

कलमी पौधों को तैयार करने के लिये मूलवृंत से कलम को जोड़ने की क्रिया संपन्न की जाती है। चूँकि इस क्रिया को करने में तने का अंदरूनी भाग कटने के साथ वातावरण के सीधे संपर्क में आता है, अतः वायु, जल या माली के हाथों अथवा यंत्रों में उपस्थित फफूँदी के बीजाणु इसमें पहुँच सकते हैं। यह बीजाणु कलम बाँधने के बाद अन्दर–ही–अन्दर संक्रमण करते हैं जिससे कलम सूख जाती है। इस प्रकार से होने वाली क्षति से बचने के लिये ध्यान रखें।

- कलम हेतु चयनित सभी मूलवृंत पूर्णतः स्वस्थ हों।
- कलम हेतु चयनित मातृ वृक्ष भी रोग रहित हों।
- कलम बाँधने के तुरंत पूर्व कलम को 0.1 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम के घोल से उपचारित कर लें।
- उपचारित कलम और यंत्रों को विसंक्रमित बर्तन में रखें।
- कार्य प्रारंभ करने से पूर्व हाथों को साबुन से धोएँ तथा विसंक्रमित दस्ताने पहन कर कलम बाँधने का कार्य करें।

कलम से तैयार हो रहे पौधों की देख–रेख रखना चाहिए और यदि कोई कलम मर गयी हो तो उस पौधे को पौधशाला से हटा देनी चाहिए। पौध पर 15–20 दिन के अंतराल पर कार्बेन्डाजिम (12 डब्लू.पी.) + मैंकोजेब (63 डब्ल्यू. पी.) के 0.2 प्रतिशत या हेक्साकोनाजोल (5 एस.एल.) के 0.05 प्रतिशत घोल का अदल–बदल कर छिड़काव करना चाहिए।

i kS k' kky k d smi j kDr r hu i zeq[k j kx ksa d sv fr fj Dr v u sd , s sj kx gks sg Sa t ks e kr ` o`{k v kS i kS k' kky k d s i kS kks a d s fy ; s l e L; k mRi Uu d j r s g SA mu d k fo o j . k fu Eu ku q kj g SA

### 1. आम का खर्रा रोग

इस रोग का प्रकोप आम के मातृ वृक्षों और पौधशाला में पत्तियों पर होता है जिससे भारी क्षति होती है। इस रोग का प्रकोप प्रायः प्रति वर्ष होता है, परन्तु मौसम आधारित कारकों द्वारा क्षति की सीमा या अधिक हो सकती है। यदि अधिकतम तापमान 30–35 डिग्री सेल्सियस के मध्य और वायु में नमी की अधिकतम मात्रा 75 प्रतिशत के कम होती है तो यह रोग तेजी से फैलता है। इस समय यदि 2–3 दिनों तक तेज हवा चलती है तो इस रोग का प्रकोप विस्तृत क्षेत्र में हो सकता है। क्षति से बचने के लिये विलयनशील गंधक (80 प्रतिशत सक्रिय तत्व) के 0.2 प्रतिशत (2.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) अथवा डाइनोकैप (48 प्रतिशत सक्रिय तत्व) या हैक्साकोनाजोल (5.0 प्रतिशत सक्रिय तत्व) के 0.1 प्रतिशत (1.0 मिली. प्रति लीटर पानी) के घोल का छिड़काव करना लाभप्रद होता है।

### 2. ऐन्थ्रेकनोज

लगभग सभी फल फसलें इस रोग के प्रकोप से प्रभावित होती हैं। इस रोग का फफूँद कोमल प्ररोह और पत्तियों पर सामान्य तापमान (22–30 डिग्री सेल्सियस) और वर्षा, अधिक ओस एवं हवा में नमी की 80 प्रतिशत से अधिक मात्रा होने पर तेजी से संक्रमण करता है। अतः वृक्षों पर नयी वृद्धि के समय तथा रोग के लिये मौसम अनुकूल होने पर कॉपर हाइड्राक्साइड (77 डब्लू.पी.) के 0.3 प्रतिशत अथवा मेन्कोजेब (63 डब्लू.पी.) + कार्बेन्डाजिम (12 डब्लू.पी.) के 0.2 प्रतिशत घोल (2.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए।

### 3. काली फफूँद (सूटी मोल्ड)

पत्तियों पर काले रंग की फफूँद पौधों के सामान्य स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। इस फफूँद के उगने के प्रमुख कारण रस–चूसक कीट (भुनगा, गुजिया, माहूँ एवं स्केल कीट) होते हैं। यह कीट एक मधु द्रव का त्याग करते हैं जिस पर काली फफूँद पनपती है। यह फफूँद अधिक ओस एवं हवा में अधिक आपेक्षिक आर्द्रता की स्थिति में तेजी से उगती है। इसके नियंत्रण हेतु उक्त कीटों का नियंत्रण आवश्यक है। साथ ही विलयनशील गंधक (80 प्रतिशत सक्रिय तत्व) 0.2 प्रतिशत + डायमेथोएट (30 प्रतिशत सक्रिय तत्व) 0.2 प्रतिशत के घोल का छिड़काव प्रभावशाली पाया गया है।

### 4. जीवाणु कैंकर रोग

आम की पत्तियों पर होने वाला जीवाणु संक्रमण

मुख्यतः वर्षा ऋतु में होता है। इस रोग के लक्षण कोणिक आकार के उभरे हुए गहरे भूरे धब्बों के रूप में प्रगट होते हैं। इस रोग को बढ़ाने में वर्षा सहायक होती है। वर्षा की बूंदों के संक्रमित स्थान पर पड़ने पर छींटों से यह रोग फैलता है। ऐसा देखा गया है कि अधिक नमी (80 प्रतिशत से अधिक) और 25–35 डिग्री सेल्सियस तापक्रम इस रोग की वृद्धि के लिये उपयुक्त होता है। इस रोग से बचाव हेतु स्ट्रेप्टोसाइक्लिन के 0.02 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिए। साथ ही पौधों के मध्य या बाग के अन्दर वायु आवागमन सुचारु रखना चाहिए।

## 5. उल्टा सूखा रोग

फल वृक्षों की टहनियों का ऊपर से नीचे की ओर सूखना इसका मुख्य लक्षण है। पेड़ों के पत्ते सूख जाते हैं। टहनियों में अन्दर की ऊतक में भूरापन दिखता है। पौधशाला में कलम बंधन का स्थान यदि प्रभावित होता है तो पौधे मर जाते हैं। संक्रमित टहनियों की 10 सेंटीमीटर नीचे (हरे भाग से) से छँटाई के बाद कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या कॉपर हाइड्रॉक्साइड 0.3 प्रतिशत का छिड़काव प्रभावशाली है। मोटी कटी डालियों के कटे भाग पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या कॉपर हाइड्रॉक्साइड 5 प्रतिशत का लेप लगाना प्रभावशाली होता है।

## 6. गुम्मा रोग (मालफार्मेशन)

आम के प्रभावित पौधों में वानस्पतिक वृद्धि विकृत होती हैं तथा पर्व संधियाँ फूल जाती हैं। पर्व छोटे रह जाते हैं तथा शाखा के प्रभावित भाग गुच्छे का रूप धारण करते हैं। संक्रमण रहित सांकुर शाखा से विनियर अथवा क्लेफ्ट विधि द्वारा प्रवर्धन करना चाहिए। नेपथिलिक एसिटिक एसिड 200 पी.पी.एम. का छिड़काव प्रभावशाली होता है। रोग ग्रस्त टहनियों को नियमित रूप से तोड़ कर जला या गड्ढे में दबा देना चाहिए।

## 7. उकठा रोग (विल्ट)

उकठा रोग किसी भी फसल के लिये एक गंभीर समस्या है। इस रोग के प्रबंधन के लिये आरंभ में यह पता नहीं लगाया जा सकता है कि कौन सा पेड़ रोगी है। अतः रोगग्रस्त प्रक्षेत्र से इसके फैलाव एवं रोगकारी फफूँदों के प्रसार यथासंभव नियंत्रित करते हुए नये पेड़ों को संक्रमण से बचाने के प्रयास और लक्षणों की प्रारंभिक अवस्था देखते ही प्रबंधन के उपाय किये जायें।

- गहरी जुताई के समय जड़ों को क्षति होती है जिससे जड़ों में संक्रमण की संभावना अधिक होती है। इससे बचने के लिये आम और अमरूद के बागों में कम से कम जुताई की जानी चाहिए। बाग स्थापित करने के प्रारंभिक वर्षों में यदि बाग में पौध या अन्तःफसलें पैदा की जायें तो जुताई और गुड़ाई पेड़ों के जड़ विन्यास क्षेत्र से बाहर करनी चाहिए।
- बागों में कटाई–छँटाई के उपरांत ताँबा युक्त फफूँदी नाशकों (कॉपर सल्फेट या कॉपर हाइड्रॉक्साइड) से पुताई (50 ग्राम लीटर पानी) या छिड़काव (3.0 ग्राम प्रति लीटर पानी) करना चाहिए। साथ ही एक पेड़ की छँटाई के बाद कटाई यंत्र को उपचारित करने के बाद ही दूसरे पेड़ पर प्रयोग करना चाहिए।
- कलमी पौधों को तैयार करने हेतु कलम सदैव स्वस्थ पेड़ों से ही प्राप्त की जानी चाहिए। साथ ही कलम बनाते एवं लगाते समय थोड़े–थोड़े अन्तराल पर चाकू एवं हाथों को उपचारित करते रहना चाहिए।
- बाग में कीटों पर नियंत्रण रखना चाहिए क्योंकि यह रोगी पेड़ों पर उपस्थित फफूँद को स्वस्थ पेड़ों पर पहुँचा सकते हैं। विशेष रूप से आम के पेड़ों में स्कोलीटिड बीटिल की उपस्थिति होने पर क्लोरपाइरीफॉस (2 से 3 मिलीलीटर लीटर पानी) के 15 दिनों के अन्तर पर दो छिड़काव कर तुरन्त नियंत्रण किया जाना चाहिए।
- संक्रमित पेड़ों की लकड़ी में कवक जाल एवं बीजाणु उपस्थित होते हैं। अतः उकठा रोग से ग्रस्त हो कर मरे पेड़ों को काट कर बाग से दूर ले जाना चाहिए। इसकी लगड़ी को जलाने के लिये उपयोग में लाना चाहिए। पेड़ निकालने के बाद बने गड्ठे में लकड़ी एवं घास जलाकर औऱ जड़ क्षेत्र की मृदा में 50–150 ग्राम थायोफेनेट मिथाइल या कार्बेन्डाजिम मिलाकर सिंचाई कर गड्ठे को रोगमुक्त करना चाहिए।
- आम और अमरूद के संक्रमित पेड़ों के आस–पास की जड़ क्षेत्र की मृदा में 50–150 ग्राम थायोफेनेट मिथाइल या कार्बेन्डाजिम मिलाकर सिंचाई करना

चाहिए। साथ ही कार्बेन्डाजिम या प्रोपीकोनाजोल का (1.0 ग्राम/मिलीलीटर प्रति लीटर पानी) छिड़काव करना चाहिए।

- अमरूद के बाग में प्रति वर्ष वर्षा पूर्व 500 ग्राम से 1.0 किलोग्राम नीम की खली के साथ 25–50 ग्राम *ट्राइकोडर्मा हारजियानम* या *टी. विरीडी* के प्रयोग से पौधे अनेक वर्षों तक रोग मुक्त रहते हैं।
- सिंचाई हेतु पेड़ों की कतारों के मध्य नाली बनाकर हर पेड़ का थाला बनाकर अलग–अलग उनकी सिंचाई करना चाहिए या बेहतर होगा कि टपक सिंचाई पद्धति अपनायें।
- बागों में कॉपर हाइड्रॉक्साइड का 3.0 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर पर अक्टूबर माह में छिड़काव करना चाहिए।
- बागों में उम्र के आधार पर संस्तुत मात्रा में गोबर की खाद एवं उर्वरकों की आपूर्ति नियमित अंतराल पर करनी चाहिए। अन्य संस्तुत शस्य क्रियाएँ भी समय पर संपन्न करनी चाहिए।

## 8. बेल का पर्ण धब्बा एवं झुलसा रोग

पौधशाला में बेल की तैयार हो रही पौध पर पर्ण धब्बा रोग का प्रकोप होता है जो बाद में पत्तियों के झुलसा की स्थिति उत्पन्न कर देता है। इस रोग का समुचित नियंत्रण न होने पर पूरा प्ररोह सूख सकता है और बड़ी क्षति भी हो सकती है। इस रोग के नियंत्रण हेतु पत्तियों पर एक–दो स्थान पर लक्षण दिखने पर मैन्कोजेब के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। छिड़काव के 15–20 दिन बाद अगर रोग बढ़ रहा हो तो दूसरा छिड़काव कार्बेन्डाजिम का 0.1 प्रतिशत के घोल से करें। भूमि पर गिरी हुई रोगग्रस्त पत्तियों को एकत्र कर जला देना चाहिए।

## 9. जड़ ग्रन्थि रोग

यह रोग सूत्रकृमि से उत्पन्न होता है। इसकी सूक्ष्म सूड़ियाँ कृषि भूमि की मृदा में रहती हैं। अलग–अलग कुल की फसलों पर इस सूत्रकृमि की अलग–अलग प्रजातियों द्वारा रोग उत्पन्न किया जाता है। सूत्रकृमि की अमरूद पर रोग उत्पन्न करने वाली प्रजाति, *मिल्वाइडोगाइन इंटेरोलोबी* है। भारत में विगत दो वर्षो में इसे उत्तर प्रदेश, राजस्थान, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और मध्य प्रदेश राज्यों में देखा गया है। इन राज्यों में इस प्रजाति के फैलाव के पीछे संक्रमित पौध का स्थानांतरण ही प्रमुख कारण प्रतीत होता है। देश के अन्य स्थानों पर संक्रमित पौध के माध्यम से इसके फैलाव की संभावना बनी हुई है।

जड़ग्रन्थि सूत्रकृमि की सूंड़ी नम मृदा में बिना भोजन किये भी एक वर्ष तक जिन्दा रह सकती है। जब यह अपनी पसंद के पौधे की जड़ों के संपर्क में आती हैं तो उसकी कोशिकाओं से रस चूसना प्रारंभ करती हैं। कोमल जड़ों में यह धीरे–धीरे पूर्णतः अंदर घुस जाती हैं और जड़ के अंदर यदि मादा बन गयी तो सारा जीवन एक ही स्थान पर व्यतीत करती हैं। सूड़ी अगर विकसित होकर नर बनती है तो यह जड़ से बाहर आ जाते हैं। जड़ के अंदर स्थापित मादा का घर जड़ग्रन्थि ही होती है। इस ग्रन्थि में मादा इस प्रकार से बैठी होती है कि मिट्टी में घूम रहे नर इससे संपर्क कर सकते हैं। इसके द्वारा उत्पन्न अंडों के गुच्छे जड़ की सतह पर लगे दिखायी देते हैं। अंडों के एक गुच्छे में 100 से 500 तक अंडे होते हैं। इन गुच्छों का रंग प्रारंभ में मटमैला, सूंड़ी विकसित होने पर गुलाबी और सूड़ियों के निकलने के बाद काला हो जाता है। अंडों से निकली सूंड़ियाँ नयी जड़ों में प्रवेश कर जाती हैं। अनुकूल परिस्थितियों में सूत्रकृमि का जीवन चक्र 25–27 दिन में पूर्ण हो जाता है। इस सूत्रकृमि की अधिकतम संख्या बलुई से बलुई–दोमट मृदा में पायी जाती हैं। मृदा के कणों का आकार जैसे–जैसे महीन होता है सूत्रकृमि की गतिविधियों पर विपरीत प्रभाव उत्पन्न करता है।

प्रायः कृषि प्रक्षेत्र में बीज बोकर पौध उगाने का प्रचलन है। मूलवृन्त उगाने या नया बाग लगाने में अगर संबंधित प्रक्षेत्र की मृदा में पहले से ही जड़ग्रन्थि सूत्रकृमि की अधिक संख्या मौजूद होती है तो स्वस्थ्य पौधे उगाना कठिन हो जाता है। अतः आवश्यक है कि पौध उगाने के लिये ऐसे प्रक्षेत्र का चयन किया जाये जिसमें कम–से–कम पिछले तीन वर्ष अमरूद की पौध नहीं उगायी गयी हो। साथ ही सूत्रकृमि ग्राही अन्य फसलें (जैसे, बैंगन, टमाटर, मिर्च, शकरकन्द, तंबाकू, तरबूज, सेम, आलू, कद्दू, चुकन्दर, तुलसी, गुलाब, लहसुन, बंदगोभी, मक्का, मूंगफली, प्याज आदि) भी न उगायी गयी हों। पौध को उगाने से पहले

प्रक्षेत्र में जुताई कर खरपतवार नष्ट करना चाहिए। पूरे प्रक्षेत्र में उभरी हुई 1.0 से 1.5 मीटर चौड़ी क्यारियाँ बनाकर उनका उपचार सूत्रकृमि की उपस्थिति हेतु मृदा जाँच कराने के बाद प्राप्त संस्तुतियों के आधार पर करना चाहिए। उक्त जाँच के लिये मृदा के ऊपरी स्तर से 15 सेंटीमीटर गहराई तक की मिट्टी को मिलाकर प्रत्येक स्थान से 100 ग्राम मिट्टी के नमूने खेत से कम–से–कम 20 स्थान प्रति एकड़ लेकर प्रयोगशाला में भेजना चाहिए। ध्यान रहे कि खुदाई हल्के हाथों से करें नमूनों पर अधिक भार/दवाब न हो तथा नमूने जिस दिन इकट्ठे करें उसी दिन प्रयोगशाला पहुँचाएँ। सूत्रकृमियों की जाँच हमारे संस्थान से करायी जा सकती है। यदि मृदा में सूत्रकृमि नहीं हैं तो सावधानी हेतु प्रति वर्ग मीटर 100 ग्राम नीम की खली मिलाने के 10–15 दिन उपरांत बीज की बोआई करना चाहिए। यदि सूत्रकृमि उपस्थित हैं तो अन्य प्रक्षेत्र चयनित करना चाहिए या प्रति वर्ग मीटर 50 ग्राम कार्बोफ्यूरान या 200 ग्राम नीम की खली मिट्टी में मिलाने के 15 दिन बाद बोआई करनी चाहिए। कार्बोफ्यूरान का प्रयोग बुरकाव द्वारा करना चाहिए। नीम की खली के साथ जैविक जीवनाशी (*ट्राइकोडर्मा हारजियानम* या *टी. विरीडी*) 25 ग्राम/वर्ग मीटर का प्रयोग किया जा सकता है। मृदा उपचार के उपरांत भूमि नम बनाये रखना चाहिए। इस प्रकार से उगायी गयी पौध रोग मुक्त रहने की पूरी संभावना होती है लेकिन पौध को थैलियों में स्थानांतरित करते समय जड़ों के स्वास्थ्य पर नजर रखना चाहिए।

खेत में बीज बोकर उगायी गयी पौध को थैलियों में स्थानांतरित करने हेतु तैयार की जा रही थैलियों को भरने के लिए मिश्रण भी सूत्रकृमि मुक्त होना आवश्यक है। इसके लिये उपजाऊ खेत की मिट्टी को पक्के फर्श पर या पॉलिथीन चादर पर डालकर पहले तो खूब सुखायें और फिर इसे गीला कर पॉलिथीन से ढककर गर्मियों में 10 दिन तक धूप से विसंक्रमित होने दें। इसके बाद इसमें नीम की खली 25–50 ग्राम प्रति किलोग्राम तथा ट्राइकोडर्मा 10 ग्राम प्रति किलोग्राम मिला कर थैलियाँ तैयार करें। तैयार थैलियों को संक्रमित भूमि पर न रखें।

खेत में बीजू पौध उगाने के स्थान पर यदि कोमल शाखाओं के छोटे–छोटे टुकड़े लगाकर पौध तैयार की जाये तो संक्रमण की संभावना कम की जा सकती है और कलम बाँधने की भी आवश्यकता नहीं होगी। यह विधि अनेक स्थानों पर अमरूद की पौध उगाने हेतु अपनायी जा रही है।

मुख्य प्रक्षेत्र में पौधे लगाने से पहले गड्ढे तैयार करने की संस्तुति की गयी है। गड्ढे से निकाली गयी मिट्टी के नमूने लेकर उसमें सूत्रकृमि की उपस्थिति की जाँच करानी चाहिए। यदि जड़ग्रन्थि में सूत्रकृमि पाये जाते हैं तो गड्ढा भरते समय नीम की खली 250–500 ग्राम के साथ 25 ग्राम ट्राइकोडर्मा या कार्बोफ्यूरान 50 ग्राम प्रति गड्ढा मिट्टी में मिलाना चाहिए। सूत्रकृमि नहीं हो तब भी नीम की खली प्रयोग कर सकते हैं क्योंकि यह रोग नियंत्रक के साथ–साथ समुचित पोषक तत्व भी उपलब्ध कराती है। इस प्रकार गड्ढे तैयार करने के लगभग 15 दिन बाद पौधे लगाना चाहिए। बाग में प्रति वर्ष वर्षा पूर्व 500 ग्राम से 1 किलोग्राम नीम की खली के साथ 25–50 ग्राम ट्राइकोडर्मा के प्रयोग से पौधे अनेक वर्षों तक रोग मुक्त रहते हैं। अमरूद की फसल के अच्छे उत्पादन के लिये इसकी कटाई–छँटाई का विशेष महत्व है। जिन बागों में कभी कटाई–छँटाई नहीं की जाती है, प्रायः फलों का आकार और स्वाद भी घटने लगता है। इसके अतिरिक्त पौधे अधिक रोगग्राही भी हो जाते हैं। अतः समुचित खाद और उर्वरकों के प्रयोग के साथ–साथ रोग प्रबंधन के उपायों के साथ–साथ नियमित कटाई–छँटाई भी करना चाहिए।

पौधशाला प्रबंधन एक अत्यंत जिम्मेदारी का कार्य है। थोड़ी सी असावधानी से रोग नये क्षेत्रों में रोगी पौधों के साथ पहुँच जाते हैं। अतः ध्यान रखें कि बिक्री पूर्व पौधों के स्वास्थ्य की सघन जाँच की जाये।

# पपीते के मुख्य विषाणु रोग एवं उनका प्रबंधन

निधी कुमारी[1], पी.के. शुक्ल[2] एवं गुंडप्पा[3]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

पपीता व्यापक रूप से उष्ण और उपोष्ण क्षेत्रों में पैदा किया जाता है। भारत पपीता का अग्रणी उत्पादक देश है। भारत और ब्राजील दोनों विश्व पपीता उत्पादन के क्षेत्र में 50 प्रतिशत से अधिक उत्पादन का योगदान करते हैं। भारत में पपीता मुख्य रूप से आंध्र प्रदेश, असम, उड़ीसा, महाराष्ट्र गुजरात, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान में उगाया जाता है। यह भारत में कुल 136.1 हजार हेक्टेयर क्षेत्र में उगाया जाता है जिससे 6107.8 हजार मीट्रिक टन उत्पादन प्राप्त होता है। पपीते की फसल को फफूँद, जीवाणु, सूत्रकृमि एवं विषाणु रोगों से काफी क्षति होती है। लेकिन इनमें विषाणु रोग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। विषाणु रोगों के कारण इसके उत्पादन, गुणवत्ता और पौधे की दीर्घायु में कमी आती है जिसके कारण दुनिया भर में इस पौधे के विषाणु रोगों का आर्थिक महत्व माना जाता है। पपीते के विषाणु रोग निम्नलिखित है।

1. रिंग स्पॉट विषाणु
2. पपीते का मोजाइक विषाणु
3. पपीते की पत्तियों को मोड़ने वाला विषाणु
4. टमाटर स्पॉटेड विल्ट विषाणु
5. पपीता का पत्ता विकृत करने वाला विषाणु
6. पपीता मेलेइरा विषाणु
7. पपीता के पत्तों को हल्का पीला करने वाला विषाणु
8. पपीता में घातक पीलापन करने वाला विषाणु
9. पपीता एपिकल नेकरोसिस/अतिक्षय विषाणु

माना जाता है कि पपीते में विषाणु रोगों के कारण उत्पादकता में 100 प्रतिशत तक की क्षति हो सकती है। यह विषाणु रोग फलों की व्यावसायिक गुणवत्ता में अत्यधिक कमी और कई बार पौधे की मृत्यु का कारण भी होते हैं।

[1,3]वैज्ञानिक एवं [2]प्रधान वैज्ञानिक

विभिन्न विषाणु रोगों में से अत्यधिक महत्वपूर्ण दो विषाणु है जिसके कारण विश्व भर में पपीते के उद्योग को भारी नुकसान झेलना पड़ता है।

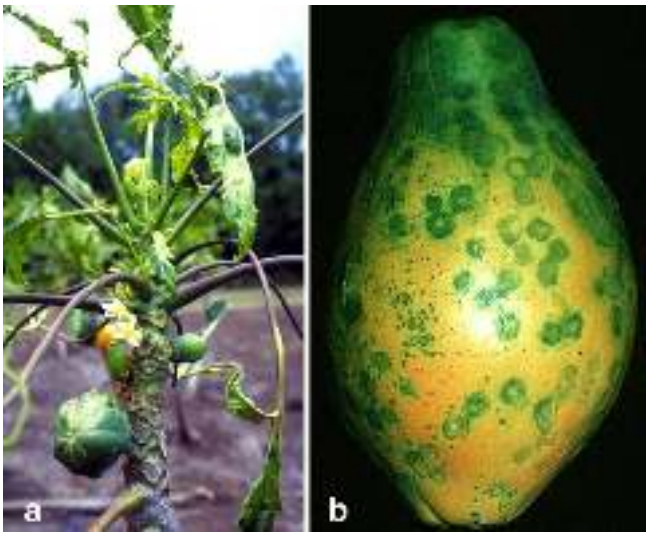


*चित्र–1 पपीते का रिंग स्पॉट विषाणु के लक्षण (सौजन्य–गूगल)*

## पपीते का रिंग स्पॉट विषाणु

पपीते की पत्तियों में इस विषाणु के कारण वृत्ताकार धब्बे वाले बीमारी होती है। इसके कारण फलों एवं पत्तियों में वृत्ताकार धब्बे, मटमैला पन एवं विकृति आ जाती है (चित्र–1)। यह विषाणु संक्रमित पौधे से स्वस्थ पौधे में विभिन्न प्रकार की यांत्रिक गतिविधियों के माध्यम से फैलता है। इसके अलावा यह माहू (एफिड) जो एक छोटे आकार का रस चूसने वाली कीट है की अनेक प्रजातियों द्वारा भी प्रसारित होता है। संक्रमित फल के बीज से इस विषाणु का प्रसारण अब तक नहीं देखा गया है। यह विषाणु दुनिया भर में पपीते के बड़े पैमाने पर व्यावसायिक उत्पादन के लिये बड़ी बाधा है। यह विषाणु पहली बार हवाई (संयुक्त राज्य अमेरिका) में देखा गया था परंतु अब यह फिलीपींस, भारत, थाईलैंड, ताइवान, दक्षिण अमेरिका एवं पपीते की खेती वाले अन्य क्षेत्रों में पाया जाता है।

### प्रबंधन

विषाणु पौधों का प्रबंधन सबसे जटिल कार्य होता है क्योंकि एक बार संक्रमण हो जाने पर उपचार संभव नहीं होता है। इसलिए इस रोग से बचाव ही एक मात्र विकल्प है। पपीते की पौध महीन जाल वाली मच्छरदानी के अंदर उगानी चाहिए तथा रोपाई के बाद इन्हें नायलॉन नेट (40–60 मेष) से ढ़क कर रखना चाहिए। संक्रमित पौधों को हटाना एवं नष्ट करना इस विषाणु के प्रसार को नियंत्रित करने का एक उत्तम तरीका है। यह विषाणु माहू (एफिड्स) से प्रसारित होता है। इसलिए बागों में एफिड्स का नियंत्रण विषाणु के प्रसार को नियंत्रण करने में सहायक होता है। एफिड्स के नियंत्रण के लिये डाइमेथोएट 30 ई.सी. 2 मिलीलीटर प्रति लीटर या मिथाइल डेमेटॉन 30 ई.सी 2 मिलीलीटर/लीटर का छिड़काव आवश्यकता अनुसार 10–15 दिन के अंतराल पर करना चाहिए।

## पपीते की पत्तियों को मोड़ने वाला विषाणु

यह विषाणु एक बेगोमोवायरस है जो जैमिनिवीरिड़ी परिवार से संबंध रखता है। इस विषाणु के कारण पत्तियाँ अन्दर और नीचे की तरफ मुड़ जाती है और एक उलटी कटोरी की तरह का आकार बना लेती है। पत्तियों की नसें गहरे रंग की हो जाती हैं और संक्रमित पौधे की पत्तियाँ गिर जाती हैं एवं पौधे की वृद्धि रूक जाती है। इस विषाणु के कारण फूलों और फलों के उत्पादन पर भी भारी नुकसान होता है। यदि फल होते भी हैं तो वह भी छोटे एवं विकृत आकार के होते हैं तथा असमय गिर जाते हैं (चित्र–2)।

*पपीते की पत्तियों को मोड़ने वाले विषाणु के लक्षण (सौजन्य–गूगल)*

इस विषाणु का यंत्रवत् प्रसारण नहीं होता है बल्कि सफेद मक्खी द्वारा एक पौधे से दूसरे पौधे में फैलता है। इस विषाणु की मेजबान प्रजातियों की काफी विस्तृत श्रृंखला है जो इसके व्यापक प्रसारण में भूमिका निभाती है। इस विषाणु के कारण 90–100 प्रतिशत तक उपज में हानी हो सकती है विशेषकर जब अन्य विषाणु प्रजातियाँ जैसे पपाया रिंग स्पॉट वायरस भी मौजूद हो।

### प्रबंधन

सभी विषाणु रोगों को रोगथाम के लिये प्रक्षेत्र की स्वच्छता अनिवार्य है। चूँकि यह विषाणु सफेद मक्खी द्वारा प्रसारित होता है, अतः सफेद मक्खी का नियंत्रण इस विषाणु के प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। खेतों में पीले चिपचिपे जाल की स्थापना करनी चाहिए। सफेद मक्खी के विसंक्रमण दिखने पर इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 1 मिलीलीटर/3 लीटर और एसिटामिप्रिड 20 एस.पी. 0.5 ग्राम/लीटर का छिड़काव करना चाहिए। संक्रमित पौधे को जल्द ही खेत/बाग से कहीं दूर नष्ट कर देना चाहिए।

## विषाणु प्रसरण में कीटों की भूमिका

पौधों को संक्रमित करने वाले विषाणु विभिन्न प्रकार के जीवों द्वारा संचरित होते हैं जिनमें कीट, सूत्रकृमि, फफूँद इत्यादि शामिल है। वास्तव में, यह जीव एवं अन्य माध्यम जैसी की संक्रमित बीज, यांत्रिक प्रसारण इत्यादि विषाणु का एक पौधे से दूसरे पौधे में जाने की उनकी क्षमता और उनके अस्तित्व को सुनिश्चित करते हैं। जबकि कुछ पौधों के विषाणु कई अलग–अलग कीटों की प्रजातियों द्वारा प्रेषित हो सकते हैं अन्य विषाणु अत्यधिक विशिष्ट होते हैं, संभवतः किसी एक प्रजाति द्वारा ही प्रेषित होते हैं। ऊपर बताये गये जीवों में से कीट विषाणु रोगों के संचारण का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है। आधे से अधिक विषाणु रोग, रोगग्रस्त से स्वस्थ पौधे में कीटों द्वारा प्रेषित होते हैं। अनेक कीट जैसे माहू (एफिड), भुनगा कीट, सफेद मक्खी, गुजिया कीट, थ्रिप्ट, बीटल्स (भृंग), घुन इत्यादि विषाणु रोगों के प्रसरण के माध्यम हैं। परंतु इन सभी में से एफिड्स और सफेद मक्खी, 500 से अधिक पौध विषाणु के संचरण के प्रमुख माध्यम है। अतः निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि इन कीटों के माध्यम से फैलने वाले विषाणुओं की रोकथाम के लिये स्वस्थ पौध का प्रयोग, बचाव एवं इन कीटों की आबादी को नियंत्रित रखना लाभकारी पपीता उत्पादन के लिये आवश्यक है।

# शिमला मिर्च में विषाणु रोगों का खतरा एवं इसकी रोकथाम

निधी कुमारी[1] एवं प्रेम नाथ शर्मा[2]

[1]भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

[2]प्रोफेसर, पादप रोग विज्ञान विभाग, चौधरी सरवन कुमार कृषि विश्वविद्यालय, हिमाचल प्रदेश

## भूमिका

भारत में सब्जी की खेती समतल से पहाड़ी क्षेत्रों तक विभिन्न प्रकार की कृषि जलवायु परिस्थितियों में की जाती है। फलों एवं सब्जियों के उत्पादन के क्षेत्र में भारत का विश्व में चीन के बाद दूसरा स्थान है। यहाँ फलों और सब्जियों का उत्पादन 1990–91 के 174.95 मिलियन टन से बढ़कर 2016–17 में 287 मिलियन टन हो गया है। यहाँ पैदा की जाने वाली सब्जियों में आलू, टमाटर, प्याज, गोभी, शिमला मिर्च, बैंगन इत्यादि प्रमुख हैं। इनमें शिमला मिर्च अपना विशेष महत्व रखता है।

शिमला मिर्च किसानों के लिये अत्यधिक लाभकारी होने के कारण उनके बीच मशहूर है। यह वार्षिक सब्जियों में से एक है। शिमला मिर्च सोलानेसी परिवार की सब्जी है जिसमें शिमला मिर्च के अलावा मिर्च, बैंगन, टमाटर आदि सब्जियाँ भी आती हैं। विश्व के शिमला मिर्च के कुल उत्पादन में भारत का एक चौथाई योगदान है। भारत में शिमला मिर्च की खेती हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, आंध्र प्रदेश तथा नीलगिरी की पहाड़ियों में गर्मी के मौसम में की जाती है। साथ ही कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, बिहार, पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में इस सब्जी की खेती सर्दी के मौसम में की जाती है।

शिमला मिर्च को अंग्रेजी में कैप्सिकम और पैपर कहा जाता है। यह मुख्य रूप में सब्जी और सलाद के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। शिमला मिर्च अधिकतर लाल, हरे या पीले रंग का होता है। इसमें विटामिन–ए, विटामिन–सी, बीटा–कैरोटिन, आयरन, पोटैशियम, जिंक, कैल्सियम आदि प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते हैं। बाजार में शिमला मिर्च की माँग बढ़ने के कारण इसकी खेती किसानों के लिये अत्यधिक लाभदायक है। इस फसल के लिये दिन का तापमान 21 से 28 डिग्री सेंटीग्रेड और रात्रिकालीन तापमान 16 से 18 डिग्री सेंटीग्रेट उपयुक्त पाया गया है। शिमला मिर्च के लिये बलुई दोमट और दोमट मिट्टी उपयुक्त पायी गयी है। इसकी खेती के लिये खेत में जल निकासी की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए। इसके लिये मिट्टी का पी.एच. मान 6.5 से 8 उपयुक्त होता है।

वैसे तो शिमला मिर्च को सर्दी का फसल माना जाता है, परंतु संकर किस्मों के आगमन के कारण इसकी खेती गोवा जैसे राज्य में भी संभव हो पायी है। आज के समय में इस फसल का उज्ज्वल भविष्य देखते हुए उत्तर प्रदेश सरकार भी इस सब्जी की खेती को बढ़ावा दे रही है।

शिमला मिर्च के उत्पादन में अनेक प्रकोप के कारण भारी नुकसान होता है। शिमला मिर्च में आर्द्रगलन रोग, भभूतिया रोग, जीवाणु उकठा, पर्ण कुंचन, पैपर माइल्ड, मोटल विषाणु रोग, खीरा मोजैक विषाणु, टमाटर का पीला पत्ता मुड़न विषाणु, टमाटर धब्बा मुरझान विषाणु, तंबाकू मोजैक विषाणु, टमाटर मोजैक विषाणु, श्यामवर्ण रोग आदि प्रमुख रोग होते हैं। शिमला मिर्च के लिये विषाणु रोग बहुत ज्यादा हानिकारक होते हैं।

## पैपर माइल्ड मोटल विषाणु

यह विषाणु पहली बार इटली में 1984 में देखा गया था। भारत में यह हिमाचल प्रदेश में पॉलीहाउस में पैदा की जाने वाली शिमला मिर्च पहली बार शर्मा एवं पटियाल (2011) द्वारा खोजा गया। पी.एम.एम.ओ.वी. एक कठोर रॉड आकार का विषाणु है। इस विषाणु के कारण पत्तों में हल्के से गंभीर हरे धब्बे पड़ जाते हैं। इस विषाणु के कारण शिमला मिर्च के पौधे के पत्तों में मुड़न और धब्बे आ जाते हैं। पत्ते अपने सामान्य आकार और रंग में नहीं रहते एवं उनमें कुट्टिभ चित्र प्रतिमान बन जाते हैं। संक्रमित पौधा सामान्य पौधों की तुलना में अत्यधिक छोटा रह जाता है तथा उत्पादकता भी बहुत कम हो जाती है।

[1]वैज्ञानिक एवं [2]प्रोफेसर

*चित्र 1 : पेपर माइल्ड मोटल विषाणु के शिमला मिर्च के पत्तों एवं फलों पर लक्षण*

संक्रमित पौधों के फलों का आकार विकृत होता है तथा ये माप में अत्यधिक छोटे रह जाते हैं (चित्र 1)। यह विषाणु एक संक्रमित पौधे से स्वस्थ पौधे में संपर्क के माध्यम से संचारित होता है। हालाँकि इस विषाणु की लंबी दूरी का संचरण संक्रमित बीजों के माध्यम से होता है। संक्रमित बीजों के साथ–साथ, इस विषाणु का संचारण, संक्रमित मिट्टी द्वारा भी होता है। परंतु इस विषाणु को प्रसारित करने वाले किसी कीट की सूचना अभी तक नहीं प्राप्त हुई है। पी.एम.एम.ओ.वी. बहुत कम पौधों के विषाणुओं में से एक है जो मानव रोगविज्ञान के साथ भी जुड़ा हुआ है। यह शिमला मिर्च आधारित खाद्य उत्पादों और मानव मल में अपने संयंत्र मेजबान पर संक्रमण को प्रेरित करने की क्षमता के साथ पाया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, जापान से पीने के पानी, अपशिष्ट जल, नाली का पानी और नदी के पानी में इस विषाणु का पता लगाने वाली रिपोर्टों की बढ़ती संख्या इस विषाणु को मानव मल प्रदूषण का एक अच्छा संकेतक के रूप में बताती है। इस विषाणु का मनुष्य में बुखार, पेट दर्द आदि जैसे कष्टों के साथ एक सकारात्मक सहसंबंध स्थापित किया जाता है।

## शिमला मिर्च के अन्य विषाणु रोग

### खीरा मोजैक विषाणु

यह विषाणु अनेक क्षेत्र के पौधों में संक्रमण करता है। इस रोग के अनेक लक्षण हैं जिसमें पत्तों का पीला, संकरा एवं मड़ना, मोजैक धब्बे पड़ना शामिल है। संक्रमित पौधों की वृद्धि धीमी होती है अथवा रुक जाती है। यह विषाणु करीब 25 एफिड की प्रजातियों द्वारा फैलाया जाता है। इस रोग के कारण से लगभग 60 प्रतिशत या उससे भी अधिक उपज का नुकसान होता है।

### टमाटर का धब्बा मुरझान विषाणु

यह विषाणु पौधों की 1000 से अधिक प्रजातियों में संक्रमण करता है। पौधों में इस विषाणु या किसी अन्य विषाणु का भी प्रकोप सबसे अधिक तब होता है जब संक्रमण काफी युवावस्था में होता है। इस विषाणु के कारण संक्रमित पौधों की पत्तियों में हरिमहीन एवं परिगलित वृत बन जाते हैं जो फलों में भी नजर आते हैं। यह विषाणु थ्रिप्स (कीटों) द्वारा फैलाया जाता है।

### विषाणु रोगों का प्रबंधन

विषाणु रोग से एक बार यदि पौधा संक्रमित हो जाये तो पौधे का उपचार रासायनिक या जैविक विधि से नहीं किया जा सकता है। इसकी रोकथाम के लिये बचाव ही केवल सबसे अच्छा उपाय है। किसानों को उच्चतम सफाई व्यवस्था, स्वस्थ बीज और पौध का उपयोग करना चाहिए। किसानों को इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि पौधों में किसी तरह का अपघर्षण न लगे जिसके कारण से विषाणु पौधें के अन्दर प्रवेश करता है। काम करने वाले उपकरणों को मद्यसार आदि से अच्छी तरह साफ रखें जिससे संक्रमित पौधों का रस निकल जाये। यदि संभव हो तो फसल चक्र का प्रयोग करें। पॉलीहाउस एवं खेत की स्वच्छता एवं स्वस्थ पौध का प्रयोग ही इनसे मुख्य नियंत्रण है।

# मृदा परीक्षण में मृदा नमूना का महत्व

विनोद कुमार सिंह[1], घनश्याम पाण्डेय[2], तरुण अदक[3] एवं ज्योति मीना[4]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

बागवानी के लिये मृदा स्वास्थ्य का अच्छा होना अत्यन्त आवश्यक है। मृदा पर्यावरण को संतुलित बनाये रखने के लिये खाद एवं उर्वरक की मात्रा का निर्धारण मृदा परीक्षण पर निर्भर करता है। इसलिए मृदा नमूना सही तकनीकी विधि द्वारा एकत्रित किया जाना चाहिए जिससे मृदा परीक्षण का सही परिणाम मिल सकें। मृदा नमूना सही नहीं होने पर मृदा विश्लेषण के परिणाम 80–90 प्रतिशत तक प्रभावित हो सकते हैं और खाद एवं उर्वरक संस्तुति के परिणाम प्रतिकूल पाये जाते हैं। मृदा परीक्षण की उपयोगिता समयानुसार उद्यानिकी एवं पुष्पोत्पादन के लिये अति महत्वपूर्ण हैं। मृदा विश्लेषण से मृदा का स्वस्थ्य निरंतर बने रहने के साथ–साथ फसल उत्पादन भी गुणवत्तायुक्त प्राप्त होता है।

## मृदा नमूना के कारक

### 1. मृदा नमूना एकत्र करना

- मृदा नमूना तकनीकी विधि।
- मृदा नमूना के लिये आवश्यक यंत्र।
- खेत का आकार।
- नमूना लेने वाले प्रक्षेत्र का क्षेत्रफल।
- मृदा नमूना लेने का समय।
- मृदा नमूना बिन्दुओं की संख्या।
- मृदा नमूना लेने की गहराई।
- मृदा नमूना का मिश्रण बनाना।

### 2. मृदा नमूना तैयार करना

- मृदा नमूना को छाया में सुखाना।
- मृदा नमूना की पिसाई, कुटाई एवं छँनाई।
- भंडारण एवं रख–रखाव।

### 3. मृदा नमूना के बारे में सूचना

- मृदा नमूना के बारे में सूचना एकत्र करना।
- मृदा परीक्षण के लिये प्रयोगशाला भेजना।

## मृदा नमूना लेने के लिये आवश्यक सामग्री

मृदा नमूना लेने के लिये उस प्रक्षेत्र का मानचित्र लेकर उस क्षेत्र की जमीनी स्थिति का ऑकलन करना चाहिए। मानचित्र के अनुसार प्रक्षेत्र का मापन फीता, प्लास्टिक टोकरी, पॉलिथीन सीट जिस पर मृदा नमूना फैलाकर मिलाकर द्वारा किया जाता है। मृदा नमूना एकत्र करने से पूर्व मृदा की स्थिति एवं उससे संबंधित समस्याओं को ध्यान में रखना चाहिए। इससे मृदा नमूना की उच्च कोटि की किस्म प्राप्त की जा सकती है। मृदा नमूना लेने के लिये खुरपी, आगर (बरमा), कोर, पॉलिथीन का थैला, फावड़ा, कुदाल आदि की आवश्यकता होती है। सबसे पहले चयनित स्थान पर वी आकार का गड्ढा बनायें। इसकी गहराई खाद्यान फसलों के लिये 15 सेंटीमीटर और बागवानी फसलों के लिये 30 सेंटीमीटर रखना चाहिए। फिर दोनों तरफ से 2 सेंटीमीटर परत ऊपर से नीचे तक काटकर थैली में भर लेना चाहिए। यदि आगर का प्रयोग किया गया हो तो वांछित गहराई तक की मृदा को एकत्र करना चाहिए। एकत्रित मृदा नमूना को अन्य पदार्थों से दूर रखना चाहिए।

## मृदा नमूना का आकार

मृदा नमूना का आकार मृदा किस्म और उसमें उगाने वाली फसल पर निर्भर करता है। बागवानी के लिये 0.5 से 1.0 हेक्टेयर, सब्जी की खेती के लिए 0.25 से 0.5 हेक्टेयर और असमतल भूमि से मृदा नमूना के लिये 0.01 से 0.2 हेक्टेयर आकार उचित होता है। परंतु खेत की दशा एवं ढाल को ध्यान में रखते हुए इसके आकार को कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त भूमि की किस्म, जल निकास, फसलोत्पादन, शस्य क्रियाएँ तथा उनका प्रबंधन को ध्यान में रखते हुए नमूना का आकार को तप किया जा सकता है।

[1]मु. तक. अधिकारी, [2]प्रधान वैज्ञानिक, [3]वैज्ञानिक एवं [4]तकनीकी सहायक

## मृदा नमूना क्षेत्र

मृदा किस्म, प्रकार, ढलान, जल निकास आदि को अलग–अलग एकत्र किया जाता है। फिर उसमें से मृदा नमूना के होते हुए भी अलग–अलग रखकर मृदा परीक्षण किया जाता है। जिन स्थानों पर पौधे की अच्छी बढ़वार नहीं होती है तो उसका नमूना अलग से एकत्र किया जाये। पट्टियों में खाद एवं उर्वरक प्रयोग किये गये खेत से नमूना कतारों के बीच से ही लिया जाये।

## मृदा नमूना स्थान बिन्दुओं की संख्या

मिश्रित मृदा नमूना की तैयारी विभिन्न स्थानों से लिये गये नमूनों का किया जाता है। मृदा नमूना कम–से–कम 6 बिन्दुओं से लिया जाना चाहिए।

## मृदा नमूने की गहराई

मृदा नमूने के लिये यह निर्धारित कर लेना चाहिए कि जिस खेत से मृदा नमूना लिया जाना है उसके लिए मृदा पोषक तत्वों के अवशोषण करने की क्षमता एवं पौधों की जड़ों की गहराई को ध्यान में रखना होगा। बारानी खेती के लिये मृदा नमूना अलग–अलग गहराई से लिया जाता है। फलदार पेड़ों के लिये मृदा नमूना 25 सेंटीमीटर गहराई तक लिया जाना चाहिए। पौधों को अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इसलिए दूसरा मृदा नमूना 25–50 सेंटीमीटर गहराई से लेना उचित होगा।

मृदा नमूना लेते समय मृदा की ऊपरी परत की सूखी मिट्टी हटा दी जाती है और नीचे की नम मिट्टी ले ली जाती है जबकि पूरी मिट्टी लेनी चाहिए जिससे संपूर्ण गहराई की मिट्टी का योगदान हो सके।

## मृदा नमूना लेने का समय

सघन कृषि खेती के लिये मृदा नमूना फसल चक्र के बाद प्रति वर्ष या प्रत्येक 3 वर्ष के पश्चात मृदा नमूना लेना चाहिए। मृदा नमूना सदैव फसल कटाई के उपरांत या अगली फसल के लिये खाद एवं उर्वरकों के प्रयोग से पूर्व लिया जाना चाहिए।

## मृदा नमूना तैयार करना

विभिन्न स्थानों से लिये गये मृदा नमूनों को प्लास्टिक चादर या मोटे कागज पर फैलाकर अच्छी प्रकार मिलाना चाहिए। मृदा नमूना को चार भागों में विभक्त करें। फिर उसके आमने–सामने के दो भागों को हटा दें तथा शेष दो भागों को पुनः मिलाकर चार भागों में बाँट दें। इस प्रकार पूरी मात्रा को हटाते हुए अंत में 500 ग्राम मात्रा साफ थैली में भरकर उस पर किसान का नाम, पता, नमूने की पहचान चिह्न लिखकर लगा दें। एक ऐसा ही लेबल थैली के अंदर भी रख दें।

मृदा नमूना को सामान्य तापक्रम लगभग 25 डिग्री सेंटीग्रेड पर छाया में सुखाना चाहिए। मृदा नमूना तैयार करने के लिये लकड़ी या प्लास्टिक के ओखल–मुगरी का प्रयोग करना चाहिए। परीक्षण के लिये मृदा नमूना को खाद एवं उर्वरकों के प्रयोग से एक महीना पूर्व ही प्रयोगशाला को भेजना चाहिए।

## मृदा नमूना लेते समय सावधानियाँ

1. खाद का ढेर, मेड़ या सिंचाई की नाली के पास से मृदा नमूना नहीं लें।
2. यदि खेत में ऊसर हो तो उसका और समस्त खेत का नमूना अलग–अलग लें।
3. मृदा नमूने को किसी भी दशा में उर्वरकों के बोरों के संपर्क में न आने दें।
4. अधिक नमी वाले नमूनों को छाया में सुखाकर ही साफ थैली में भरें।

मृदा परीक्षण प्रयोगशाला द्वारा फसल विशेष के लिये आवश्यक एवं संतुलित पोषक तत्वों की प्रयोग करने की संस्तुति की जाती है। मृदा जाँच के माध्यम से अनावश्यक एवं आर्थिक दृष्टि से अनुपयोगी उर्वरकों के प्रयोग से बचा जा सकता है। इसके द्वारा किसान कम फसल लागत के साथ ही अधिक लाभ पा सकते हैं।

****

ekyk Qsjr tq Hk;k] fQjku eu dk Qsj] dj dk eudk Mkj nseu dk eudk QsjA

*–कबीरदास*

# उपोष्ण फलों के पादप दैहिक विकार एवं उनका प्रबंधन

अजय कुमार त्रिवेदी[1], घनश्याम पाण्डेय[2], देवेन्द्र पाण्डेय[3] एवं सुशील कुमार शुक्ल[4]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

देश के विभिन्न भागों में उपोष्ण फलों का उत्पादन प्रचुरता से किया जाता है जिसका एक प्रमुख कारण उपयुक्त जलवायु की उपलब्धता है। निरंतर बढ़ती जनसंख्या के मद्देनजर फलों की आवश्यकता के अनुरूप उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाना आवश्यक है। फलों की उपलब्धता को बढ़ाने के लिये बागवानी के क्षेत्रफल को बढ़ाना एक अच्छा विकल्प है। लेकिन उपलब्ध बगीचों के उचित प्रबंधन द्वारा उत्पादकता बढ़ाना समय की माँग है जिसे अधिक उपज वाली किस्में लगाकर, समय पर कटाई–छँटाई कर, रोग कीटों एवं पौधों के दैहिक विकारों का उचित प्रबंधन कर बढ़ाया जा सकता है।

आम के फसल उत्पादन को दैहिक विकारों के कारण प्रति वर्ष भारी नुकसान होता है। पौधों के दैहिक विकारों के कारण एवं प्रबंधन को समझना एवं उचित समय पर उन्हें कार्यान्वित करना दोनों ही रोगों एवं कीटों के प्रबंधन की तुलना में जटिल हैं। फल उत्पादन के साथ–साथ निर्यात को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारको में दैहिक विकार मुख्य कारक हैं जो नर्सरी से लेकर तुड़ाई तथा तुड़ाई उपरांत प्रबंधन तक फल उत्पादन की प्रत्येक अवस्था को प्रभावित करते हैं। दैहिक विकारों का प्रभाव पादप दैहिकी पर पड़ता है जिससे न केवल उत्पादन बल्कि फलों की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है।

मंडी में फलों के मूल्य निर्धारण एवं निर्यात के लिये फलों की गुणवत्ता एक प्रमुख मानक है जिसके प्रभावित होने के कारण प्रति वर्ष बागवानों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है। इसलिए अधिक उत्पादन एवं उच्च गुणवत्ता वाले फलों के उत्पादन के लिए दैहिक कारकों पर ध्यान देना एवं उनका उचित प्रबंधन आवश्यक है। कुछ प्रमुख उपोष्ण फलों के दैहिक विकार पौधों की दैहिकी को इतना प्रभावित करते हैं कि ये फसल उत्पादन के लिए समस्या हैं।

[1,2,3,4]प्रधान वैज्ञानिक

## आम के दैहिक विकार एवं उनका प्रबंधन

### 1. अनियमित फलन

इस विकार को एकान्तर या द्विवर्षीय फलन भी कहते हैं। उत्तर भारत में उगाई जाने वाली व्यावसायिक किस्में, विशेषकर दशहरी, लंगड़ा एवं चौसा अनियमित फलन विकार से ग्रस्त होते हैं जबकि दक्षिण भारतीय किस्में तोतापुरी, नीलम, बंगलौरा आदि नियमित फलन देती हैं। इस विकार में भी पेड़ एक वर्ष अधिक फल देते हैं जिसे फलन वर्ष कहते हैं तथा दूसरे वर्ष बहुत कम या बिल्कुल ही फल नहीं देते हैं जिसे अफलन वर्ष कहते हैं। जब पेड़ एक वर्ष अधिक फल देता है तो उसमें पोषक तत्वों की कमी आ जाती है और इस कारण पेड़ नयी कोपलें उगाने में सक्षम नहीं हो पाते हैं। इस विकार के कारण पादप दैहिकी, पैतृक वातावरण जनित, पोषण की कमी तथा वृद्धि नियामकों के असंतुलन को माना जाता है।

इस विकार के प्रबंधन एवं इसके प्रभाव में कमी लाने के लिए फलन वर्ष में पछेती (मार्च–अप्रैल में) आये हुए बौरों (पुष्प गुच्छों) को तोड़ देना चाहिए। पैक्लोब्यूट्राजॉल (कल्टार) पादप वृद्धि नियामक है। इसका सितंबर मास में प्रति पेड़ 3.2 मिलीलीटर प्रति मीटर छाया क्षेत्र की दर से तने से डेढ़–दो मीटर दूरी पर बनायी गयी नाली में प्रयोग करना चाहिए। नये बगीचों में नियमित फलन वाली किस्मों को लगाना चाहिए जैसे आम्रपाली, मल्लिका, अम्बिका एवं अरुणिका आदि तथा बागों की उचित देख–रेख एवं प्रबंधन करना चाहिए।

### 2. गुम्मा (मालफार्मेशन)

यह विकार आम के बौरों (पुष्प गुच्छों) पर उत्तरी भारत में मुख्यतः उत्तर प्रदेश, दिल्ली तथा पंजाब में दिखायी देता है। गुम्मा की प्रबलता कम आयु वर्ग के पेड़ों में अधिक होती है। इस विकार से ग्रस्त बौर फल पैदा करने में अक्षम होते हैं। देखने में पुष्प गुच्छ नर फूलों के गुच्छे लगते हैं जिनका विकास रुक सा जाता है। इन पुष्प गुच्छों की मुख्य एवं

गौण शाखाएँ मोटी, छोटी तथा साधारण की अपेक्षाकृत बड़े फूलों वाली होती हैं। गुम्मा ग्रस्त पुष्प पेड़ों पर काफी लंबे समय तक लगे रहने के कारण दूर से पहचाने जा सकते हैं। यहाँ तक कि यह अगले फलन तक भी पेड़ों पर देखे जा सकते हैं। बागों का पोषण प्रबंधन, पादप रोग संक्रमण, विषाणु संक्रमण एवं हार्मोन असंतुलन आदि गुम्मा के कारण माने जाते हैं। इनमें भी हार्मोन असंतुलन इसका प्रमुख कारण है।

ऐसे बाग जहाँ इस विकार का प्रकोप कम (10 से 14 प्रतिशत) है, उनमें अगेती पुष्प गुच्छों को जनवरी–फरवरी में तोड़ देना चाहिए। लेकिन ऐसे बाग जहाँ पर प्रकोप अधिक एवं बार–बार होता हो वहाँ नेप्थलीन एसीटिक एसिड (एनएए 200 पी.पी.एम.) का छिड़काव अक्टूबर–नवंबर में करना चाहिए। गुम्मा ग्रस्त बौर को तोड़कर जला देना चाहिए। खनिज तत्वों के उचित उपयोग और समय से अन्तः शस्य प्रबंधन कर भी इस विकार को कम किया जा सकता है। गुम्मा प्रभावित शाखाओं तथा पुष्प गुच्छों को तोड़ कर हटा देना तथा कार्बेन्डाजिम (फफूँदनाशक) (0.1 प्रतिशत) के साथ चिलेटेड जिंक (100 पी.पी.एम.) एवं कॉपर (80 पी.पी.एम.) का 14 दिन के अंतराल पर दो बार छिड़काव बौर के गुम्मा को नियंत्रित करने का एक प्रभावी उपचार है। गुम्मा की पहचान के लिये पौधे की बाह्य आकृति से संबंधित चिह्न भी हैं जिनसे गुम्मा विकार का पता लगाया जा सकता है, जैसे कि एक से अधिक कलिकाएँ। आधार पर एक से अधिक उभार वाली शीर्षस्थ कलिका से गुम्मा अधिक होता है। अतः ऐसी कलिका को प्रारंभिक अवस्था में ही तोड़ देना चाहिए।

### 3. फलों का गिरना

आम के फल पुष्प से फल बनने के बाद पूर्ण विकसित फल बनने तक की विभिन्न अवस्थाओं में गिरते रहते हैं। आम के पेड़ में बौरों की तुलना में फलों का टिकाव अनुपात बहुत कम होता है। अधिकांशतः फल फूल से फल बनने के बाद किसी–न–किसी अवस्था में पेड़ से गिर जाते हैं। आम में फल 0.1 प्रतिशत से 0.25 प्रतिशत तक पूर्ण परिपक्वता तक पहुँचते हैं। फलों का गिरना बहुत छोटी अवस्था (पिन हेड) से प्रारंभ होकर पूर्ण विकसित अवस्था तक चलता रहता है। विकसित फलों के गिरने से बागवानों को बहुत आर्थिक हानि होती है। फलों के गिरने की गति आम की विभिन्न किस्मों में अलग–अलग होती है। लंगड़ा किस्म के फल अधिक गिरते हैं जबकि दशहरी में कम। भ्रूण तथा बीजाणु का पतन, तेज आँधी पोषण में कमी और हार्मोन का असंतुलन, कीटों एवं व्याधियों का प्रकोप फलों के गिरने के मुख्य कारण हैं।

फलों को गिरने से रोकने के लिये जब आम के फल मटर के दाने के आकार के हों, एन.ए.ए. या प्लेनोफिक्स (20 पीपीएम), 2–4 डी (10–14 पी.पी.एम.) अथवा एलार (बी–नाईन) (100 पी.पी.एम.) का छिड़काव करना चाहिए। साथ–ही–साथ बाग के उत्तर एवं पश्चिमी दिशा में वायुरोधी वृक्षों यथा देशी आय, जामुन, कमाख आदि पौधों के पास–पास लगाना चाहिए।

### 4. झुमका गुच्छों में फल बैठना

गुच्छों में फलों का लगना एक दैहिक विकार है जिसे बोलचाल की भाषा में 'झुमका' कहा जाता है। झुमका में पुष्पवृन्त की चोटी पर कई फल लगते हैं। ये फल मटर के दाने के आकार या उससे बड़े होकर गिर जाते हैं। इन फलों में बीज नहीं होते हैं। फूलों में परागण नहीं होने के कारण झुमका होता है। इसका मुख्य कारण बागों में परागणकर्ता या परागीकीट का अनुपस्थित होना है। इसके अतिरिक्त एक किस्म की बाग में अन्य प्रजातियों जिनसे परागण हो सकता है के अभाव में भी परागण नहीं हो पाता है। झुमका के अन्य कारणों में पुराने एवं घने बागों का होना, अत्यधिक कीटनाशक दवाओं का प्रयोग तथा उनका पूर्ण खिले पुष्प गुच्छों पर छिड़काव आदि प्रमुख है। फूल आने के समय प्रतिकूल मौसम भी परागीकीटों की क्रियाशीलता को प्रभावित करता है।

एक बाग में एक ही किस्म के पेड़ नहीं लगाने चाहिए। बाग में 4 से 10 प्रतिशत अन्य प्रजातियों के वृक्ष अवश्य लगाने चाहिए जैसे दशहरी के साथ बाम्बे ग्रीन। समय–समय पर पुराने घने बागों की कटाई–छँटाई करते रहना चाहिए। आम में पुष्प आने के समय बागों में मधुमक्खियों की कालोनी को बक्से सहित रखना चाहिये। कीटनाशक दवाइयों का छिड़काव कम–से–कम करना चाहिए। पूर्ण खिले पुष्प गुच्छों (बौर) पर दवा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इस विकार के निराकरण

हेतु अक्टूबर–नवंबर माह में 300 पी.पी.एम. एन.ए.ए. का छिड़काव करना भी उचित पाया गया है।

### 5. कोइलिया

कोइलिया विकार से ग्रस्त होने पर, कंचे के आकार के फल होते ही फलों के निचले हिस्से पीले पड़ने लगते हैं। इस हिस्से का रंग धीरे–धीरे भूरा होता है और अन्त में काला पड़ जाता है। फल की बढ़त के साथ–साथ यह काला हो फल के ऊपरी हिस्सों की तरफ फैलने लगता है। कोइलिया से प्रभावित फल परिपक्व होने से पहले ही गिर जाते हैं। ईट भट्टों के नजदीक के बागों में यह विकार अधिक पाया जाता है।

बाग से भट्टों की दूरी, दिशा एवं संख्या, कोइलिया के प्रकोप को प्रभावित करती है। ईंट भट्टों से निकलने वाली विषाक्त गैसें, जैसे कार्बन मोनोक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, एथिलीन आदि इस दैहिक विकार के कारक हैं। इसके साथ ही पौधों की सिंचाई, पेड़ों की दशा एवं बाग प्रबंधन इस विकार को प्रभावित करते हैं। कोइलिया से प्रभावित क्षेत्र में नियमित अन्तराल पर सिंचाई कर इसके प्रभाव को कम किया जा सकता है। 1.0 प्रतिशत बोरेक्स अथवा 0.5 प्रतिशत कास्टिक सोडा अथवा 0.4 प्रतिशत कपड़े धोने का सोडा का छिड़काव मटर दाने के बराबर फल होने पर करना चाहिये। कोइलिया का प्रभाव अधिक होने पर 14 दिन के अन्तर पर 2 छिड़काव और करना चाहिए। आम के बाग उत्तर–दक्षिण दिशा में ईट भट्टों से लगभग 4–6 किलोमीटर दूर लगाना चाहिए।

### 6. जेली सीड आम का पिलपिला होना

जैली सीड से प्रभावित फलों में गुठली के पास का गूदा अधिक पिलपिला हो जाता है जिससे फल खाने में स्वादिष्ट नहीं लगते हैं। फलों के पिलपिला होने से उनकी भंडारण क्षमता भी कम हो जाती है। फल देखने में तो सामान्य फलों के समान लगते हैं लेकिन इन्हें काटने पर गुठली के पास चारों तरफ का भाग जैलीनुमा गहरा पीला एवं अत्यंत मुलायम रहता है। प्रभावित फलों का पोषकमान भी कम होता है। फलों में कुल विलय ठोस तथा कैरोटिनायड की मात्रा अधिक होती है।

काली प्लास्टिक (100 माइक्रान मोटी) शीट की मल्चिंग के उपयोग से जैली सीड समस्या को कम किया जा सकता है। मल्चिंग के रूप में केले की सूखी पत्तियों का भी उपयोग किया जा सकता है। मल्चिंग (पलवार) मृदा तापमान, खरपतवार, मृदा कीट को नियंत्रित करता है। पौधों को पोषक तत्वों की उपलब्धता सुगम तथा जल संरक्षण भी करता है। फलों को 1–मिथाइल साइक्लोप्रोपीन 170 मिलीग्राम प्रति 5 लीटर आयतन की दर से उपचारित करने से फलों की एथिलीन, कार्बन डाइऑक्साइड एवं श्वसन दर मंद हो जाती है जिससे फलों के पकने की गति मंद होती है तथा फलों में गलन की समस्या भी कम हो जाती है।

## अमरूद के दैहिक विकार एवं उनका प्रबंधन

### 1. डाई बैक

इस विकार से नये और पुराने दोनों ही तरह के पौधे प्रभावित होते हैं। इस विकार में शाखा ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगती है। धीरे–धीरे पौधों की सभी पत्तियाँ गिर जाती हैं। पौधे का ऊपरी सिरा गहरे भूरे रंग का होने लगता है। शाखाएँ सूखने के साथ विकार प्रभावित क्षेत्र के पीछे की ओर बढ़ने लगता है और पूरा पौधा धीरे–धीरे सूख जाता है। आवश्यकतानुसार जस्ता तथा लाइम की उचित मात्रा के प्रयोग से मृदा के पी.एच.मान को परिवर्तित कर पौधों की मृत्यु दर कम की जा सकती है।

### 2. पत्तियों का बैंगनी/भूरा होना (ब्रान्जिंग)

यह विकार खनिज पोषक तत्वों (पोटैशियम, फॉस्फोरस एवं जिंक) की कमी से होता है। फलों के पकने के समय मिट्टी में पोटैशियम और फॉस्फोरस की कमी के कारण उनमें उपस्थित पोषक तत्व पुरानी पत्तियों से फल में एकत्रित हो जाते हैं जिससे पत्तियों में इनकी कमी हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप प्रकाश–संश्लेषण द्वारा बनाये गये पदार्थों का पत्तियों से जड़ों में स्थानांतरण कम हो जाता है और अंतर्ग्रहण भी कम हो जाता है। इस दैहिक विकार से बचाव के लिये अम्लीय मृदा में अमरूद के पौधे नहीं लगाना चाहिए। समय–समय पर अन्तः शस्य क्रियाएँ, संतुलित पोषण एवं इससे कांस्यन से बचाव में सहायक होती हैं।

## कटहल के दैहिक विकार एवं उनका प्रबंधन

### 1. अनियमित आकार

अनियमित आकार के फल कटहल का एक प्रमुख दैहिक विकार है जो अपर्याप्त परागण और पोषक तत्वों के असंतुलन के कारण होता है। पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग एवं उपलब्धता इस विकार के प्रबंधन में प्रभावी भूमिका निभाते हैं। कटहल के पुष्पन, फलन तथा फलों की आतंरिक एवं वाह्य गुणवत्ता के सुधार में बोरॉन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

### 2. अपरिपक्व फलों का गिरना

अपरिपक्व फलों के गिरने से कटहल के बागवानों को भारी नुकसान होता है। प्रतिकूल वातावरणीय परिस्थितियाँ, अनियमित सिंचाई, असंतुलित पोषण, हॉर्मोन्स का असंतुलन कटहल के अपरिपक्व फलों को गिरने के प्रमुख कारण हैं। इस समस्या के प्रबंधन के लिये बेहतर परागण सुनिश्चित करना, पुष्पन से परिपक्व फलों की तुड़ाई की अवस्था तक नियमित सिंचाई तथा हॉर्मोन्स का छिड़काव करना चाहिए।

### 3. शीत प्रकोप

सर्दी के मौसम में तापमान 12° सेंटीग्रेड से कम होने पर कटहल के फल की बाहरी त्वचा का रंग गहरा भूरा तथा गूदे का रंग भूरा हो जाता है। साथ ही गूदा बेस्वाद हो जाता है एवं इसके क्षय की संवेदनशीलता बढ़ जाती है। शीत प्रकोप से बचाव के लिये सर्दी बढ़ने पर पौधों के आस–पास धुआँ करना तथा पौधों की सिंचाई कर देना चाहिए। बाग के चारों ओर वायुरोधी पौधे लगाने से कटहल के पौधों पर शीत का प्रभाव कम होता है।

## आँवला के दैहिक विकार एवं उनका प्रबंधन

### 1. आंतरिक ऊतक क्षय

आतंरिक ऊतक क्षय आँवला का एक प्रमुख दैहिक विकार है। आँवला की कुछ प्रजातियाँ जैसे फ्रांसिस (हाथीझूल), बनारसी आदि आतंरिक ऊतक क्षय के लिये बहुत ही संवेदनशील हैं। इस विकार के लक्षणों की शुरुआत सितंबर के दूसरे–तीसरे सप्ताह में अन्तः फलभित्ति के कड़ा होते समय मध्यफल भित्ति के अंदर वाले भाग के भूरा होने से होती है जो धीरे–धीरे बाह्य फलभित्ति की तरफ बढ़ती है और गूदा भूरा काला हो जाता है। यह विकार फल विकास एवं वृद्धि के समय सूक्ष्म तत्वों मुख्यतः बोरॉन की कमी के कारण होता है। अतः इसके प्रबंधन के लिए सितंबर–अक्टूबर माह में जिंक सल्फेट (0.8 प्रतिशत), कॉपर सल्फेट (0.8 प्रतिशत) एवं बोरेक्स (0.8 प्रतिशत) के मिश्रण का छिड़काव करना चाहिए। इसके साथ ही चकैया, एन–6, एन–7 प्रजातियों को लगाना चाहिए जिनमें इस विकार का प्रभाव नहीं होता है।

### 2. फलों का गिरना

फलों का गिरना आँवला का एक ऐसा दैहिक विकार है जिसके कारण काफी हानि होती है। यह पुष्प एवं फल विकास की तीन अवस्थाओं में होता है। पहली अवस्था में पुष्पन के तीन से चार सप्ताह में लगभग 70 प्रतिशत पुष्प गिर जाते हैं। इसका मुख्य कारण परागण का नहीं हो पाना है। दूसरी अवस्था में प्रसुप्तावस्था की समाप्ति के समय छोटे–छोटे फल गिरते हैं एवं तीसरी अवस्था में फल विकास की विभिन्न अवस्थाओं में फल गिरते रहते हैं। तीसरी अवस्था में फल गिरने के कारण भ्रूणीय एवं दैहिक कारक होते हैं। इसके कारण फल का गिरना अगस्त से शुरु होकर फल तोड़े जाने तक जारी रहता हैं। तीसरी अवस्था में फल गिरने से सबसे अधिक नुकसान होता हैं। आँवला में फल गिरने का कारण पौधों में नमी की कमी, असंतुलित पोषण, हॉर्मोन्स का असंतुलन, तापमान का उतार–चढ़ाव, पौधों की आयु तथा पौधों की प्रजाति हैं। फल तोड़ने में देरी भी फल गिरने का एक कारक होता हैं। आँवला में फल गिरने की समस्या के प्रबंधन के लिये समय–समय पर सिंचाई, संतुलित पोषक तत्वों की उपलब्धता सुनिश्चित करना तथा जिब्रेलिक अम्ल का छिड़काव प्रभावी उपाय है।

## बेल के दैहिक विकार एवं उनका प्रबंधन

### 1. फलों का फटना

बेल की कुछ प्रजातियों में फलों का फटना एक गंभीर समस्या हैं। पेड़ पर फल पकने से पूर्व ही फट जाते हैं। इसका कारण अचानक तापमान एवं आर्द्रता में बदलाव, सूखे के बाद सिंचाई या वर्षा तथा मृदा में बोरॉन की कमी आदि हैं। फलों को फटने से बचाने के लिये समय–समय पर सिंचाई, पौधों के चारों तरफ वायु अवरोधक लगाना तथा पुष्पन एवं फल बनने की अवस्था में बोरेक्स (0.1

प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए। इसके साथ ही पौधों को पोषण देते समय 100 ग्राम बोरेक्स प्रति पौधा खाद मिश्रण में मिलकर देने से यह विकार नहीं होता है।

### 2. फलों का गिरना

बेल में पुष्पन से लेकर फल विकास एवं वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं में पेड़ से फल गिरते रहते हैं। जैसे–जैसे फल आकर में बड़े होते जाते हैं। इनके गिरने से होने वाला नुकसान भी अधिक होता हैं। अतः बेल उत्पादन में फलों का गिरना एक गंभीर समस्या हैं। मृदा में नमी की कमी, असंतुलित पोषण, हॉर्मोन्स का असंतुलन, तेज हवाएँ आदि इस समस्या का कारण हैं। सिंचाई द्वारा मृदा में नमी बनाये रखकर, संतुलित पोषण तथा हॉर्मोन्स के छिड़काव (14 – 20 पी.पी.एम. एन.ए.ए.) द्वारा इस समस्या का प्रबंधन किया जा सकता हैं।

इस प्रकार दैहिक विकारों का उचित प्रबंधन कर न केवल उत्पादन बढ़ाया जा सकता है बल्कि फलों की गुणवत्ता में भी सुधार किया जा सकता है जिससे बागवानों को समुचित आर्थिक लाभ होने के साथ निर्यात भी बढ़ेगा।

आम में गुम्मा (मालफारमेशन)

आम की पत्तियों में कास्यंन

बेल में फलों का गिरना

कटहल में फलों का अनियमित आकर

cksyh ,d vueksy gS tks dksbZ cksys tkuh] fg; s rjktw rkSy ds rc eq[k ckgj vkfuA

—कबीरदास

# कीवी फल के स्वास्थ्यवर्धक गुण

भारती किल्लाड़ी[1], आभा सिंह[2], धर्मेन्द्र कुमार शुक्ल[3], रेखा चौरसिया[4] एवं ज्योर्तिमय लेंका[5]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

कीवी (वैज्ञानिक नाम *एक्टीनीडिया डेलीसिओसा*) देखने में हल्का भूरे रंग का चीकू सा दिखने वाला, रोएंदार तथा आयताकार फल होता है। सबसे पहले इसे चीन में पैदा किया गया जहाँ से यह न्यूजीलैंड पहुँचा और आज यह विश्व में अनेक किस्मों के साथ पैदा किया जाता है। भारत में इसकी खेती मुख्यतः नैनीताल जिले के रामगढ, धरी, भीमताल, बेतालघाट, मुक्तेश्वर आदि क्षेत्रों में की जाती है। बाहर से भूरा रोएंदार और भीतर से चिकना हरा गूदा लिये कीवी सही मायने में पोषक तत्वों का भरपूर खजाना है। इसमें प्रचुर मात्रा में रेशा, विटामिन–सी, विटामिन–ई, ऐंटीऑक्सीडेंट और विभिन्न प्रकार के खनिज लवण विद्यमान होते हैं। कीवी हर मौसम में किन्तु कम मात्रा में मिलने वाला फल है।

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2]प्रधान वैज्ञानिक, [3,4]सहा.मुख्य तक. अधिकारी एवं [5]वैज्ञानिक

## कीवी में पोषक तत्वों की मात्रा (प्रति औसत आकार का फल)

| Øe la | rRo | Ekk=k |
|---|---|---|
| 1. | कैलोरी | 42 |
| 2. | कार्बोहाइड्रेट | 10–11 ग्राम |
| 3. | प्रोटीन | 0.8 ग्राम |
| 4. | वसा | 0.4 ग्राम |
| 5. | रेशा | 2.1 ग्राम |
| 6. | विटामिन–सी | 64 मिलीग्राम |
| 7. | विटामिन–ए | 3 माइक्रोग्राम |
| 8. | लोहा | 0.2 मिलीग्राम |
| 9. | पोटैशियम | 252 मिलीग्राम |
| 10. | फोलेट | 17 माइक्रोग्राम |

## कीवी फल खाने का तरीका

इसे खाने से पहले अच्छी तरह धो लें। इससे फल पर लगी गंदगी एवं प्रदूषक जीवाणु इत्यादि हट जाते हैं। इसके पश्चात इसे चाकू से बीच से काटें। इसे खीरे के सलाद की भांति गोल काट लें। अन्य सलाद में भी मिलाकर इसे खा सकते हैं। अगर छिलका हटाकर इसे खाना चाहें तो इसके किनारों को काटकर चम्मच या चाकू से छिलका निकाल दें और काटकर खायें। छोटे काले बीजों को निकालना आपकी इच्छा पर निर्भर है क्योंकि बीज पूर्णतः खाने योग्य है।

## कीवी फल का उपयोग

कीवी के फल पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण विभिन्न रूपों में उपयोग किये जा सकते हैं जो शरीर की रोग–प्रतिरोधक क्षमता बढाते हैं।

- बेकरी उद्योग में केक बनाने में इसका उपयोग किया जाता है।
- कीवी फल को सलाद के रूप में अन्य फलों के साथ मिलाकर उपयोग में लाया जाता है।

- कीवी फल को सूप (ग्रीन सूप) के रूप में भी उपयोग किया जाता है।
- कीवी फल को पेय पदार्थ के रूप में भी उपयोग किया जाता है।
- कीवी फल को अन्य फलों के साथ मिलाकर मिक्स्ड फ्रूट जैम के रूप में उपयोग किया जा सकता है।
- कीवी फल को दूध के साथ मिलाकर सेक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

## कीवी फल के फायदे

### 1. दिल की बीमारियों से बचाव

कीवी फल में रेशा एवं पोटैशियम प्रचुर मात्रा में होता है जो दिल को गंभीर बीमारियों से दूर रखता है। हृदय रोग के दौरान जब व्यक्ति सोडियम कम कर पोटैशियम लेने कि आदत को बढ़ा लेता है तो इससे बीमारी बढ़ने का खतरा कम हो जाता है। इसके सेवन से बुरे कोलेस्ट्रॉल की मात्रा कम होती है एवं यह अच्छे कोलेस्ट्रॉल को बढ़ाने में भी सहायक होता है जिसके सेवन से हार्ट अटैक आदि अनेक गंभीर बीमारियाँ होने का खतरा नहीं होता है। पोटैशियम की मात्रा को अधिक तथा सोडियम की मात्रा को कम करने से ब्लड प्रेशर नियंत्रित रहता है। इसके सेवन से कैंसर जैसी गंभीर बीमारियों से भी बचा जा सकता है क्योंकि इसमें ऐंटीऑक्सीडेंट विद्यमान होते हैं।

### 2. मधुमेह पर नियंत्रण

कीवी के सेवन से खून में ग्लूकोस का स्तर नहीं बढ़ता और इसी के परिणामस्वरूप इसे खाने से मधुमेह एवं वजन नियंत्रित रहता है।

### 3. गर्भावस्था के दौरान फायदे

कीवी जैसा अद्भुत फल गर्भवती स्त्रियों के लिये एक वरदान है क्योंकि इसमें फॉलिक एसिड होता है जिससे नवजात शिशु के दिमाग का तेजी से विकास होता है।

### 4. पेट के रोगों में लाभदायक

रेशा की प्रचुरता के कारण ये पेट के सामान्य रोगों जैसे पेट दर्द, दस्त एवं बवासीर में लाभप्रद है क्योंकि हमारा पाचन तंत्र अच्छे से काम करता है।

## हड्डी जनित रोगों में लाभप्रद

पोटैशियम की अधिकता के कारण ये हड्डियों एवं मांस पेशियों को मजबूत रखता है जिससे महिलाओं को अधिक उम्र में होने वाले हड्डी जनित रोग जैसे आर्थराइटिस, जोड़ों के दर्द तथा ओस्टियोपोरोसिस जैसी समस्याएँ कम होती हैं।

कीवी के सेवन से नींद की मात्रा 5 से 10 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। इसमें ल्यूटिन पाये जाने के कारण आँखों की बहुत सी बीमारियाँ नहीं होती हैं। आँखों की ज्यादातर समस्याएँ ल्यूटिन के नष्ट हो जाने के कारण ही पैदा होती हैं। हमारी त्वचा में मौजूद कोलाजन को हमारी त्वचा सुन्दर बनाने में विटामिन–सी कि आवश्यकता होती है जो इस फल में पर्याप्त मात्रा में होता है।

अतः तथ्यों के मद्देनजर कीवी को एक स्वास्थ्यवर्धक फल कहा जा सकता है।

### यम, नियम, आसान और प्राणायाम

यम और नियम में आचार को परिष्कृत करने की आवश्यकता पड़ती है। यम में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह होना चहिये। नियम के अंतर्गत पवित्रता, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधान को प्रधानता है। आसान में ईश्वरीय चिंतन के लिए शरीर की भिन्न–भिन्न स्थितियों का विचार है। शरीर की ऐसी दशा हो जिसमें वह स्थिर होकर हृदय को ईष्वरीय चिंतन के लिए उत्साहित करे।

आसन पर अधिकार हो जाने पर योगी शीत और ताप से प्रभावित नहीं होता है। आसन के सिद्ध हो जाने पर ही श्वास और प्रश्वास की गति नियमित करने वाले प्राणायाम की शक्ति उद्भासित होती है। प्राणायाम से मन में एकाग्रता की योग्यता आ जाती है।

# रोग-प्रतिरोधक एवं स्फूर्ति क्षमता बढ़ाने में नींबू का महत्व

ज्योति मीणा[1], घनश्याम पाण्डेय[2] एवं विनोद कुमार सिंह[3]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

वेदों–पुराणों में नींबू को 'अमृत फल' कहा गया है। नींबू स्वयं में एक औषधीय वरदान है। नींबू का उपयोग अधिकांश आयुर्वेदिक औषधि एवं सौंदर्य प्रसाधन संबंधी उत्पाद बनाने के लिये उपयोग किया जाता है। यह मुख्यतः भारत, चीन, ऑस्ट्रेलिया और कैलोडोनिमा के कुछ क्षेत्रों में उत्पादित किया जाता है। इसकी खेती उष्णकटिबंधीय जलवायु वाले क्षेत्रों में की जाती है। भारत में महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और पंजाब राज्यों में नींबू की खेती अधिक की जाती है।

प्राचीनकाल से ही नींबू का उपयोग विभिन्न औषधियों के रूप में किया जाता रहा है। नींबू का वैज्ञानिक नाम 'साइट्रस लेमन' जो कटेसी कुल का महत्वपूर्ण सदस्य है। नींबू का पौधा छोटे मध्य आकार एवं झाड़ीनुमा सघन होता है। इसकी शाखाएँ काँटेदार एवं गोलाकार आकृति की पत्तियाँ शाखानुमा होती हैं। नींबू का कच्चा फल हरे रंग का होता है जो पकने के बाद पीले रंग में परिवर्तित हो जाता है। इसका गूदा अंदर से सख्त एवं रसदार होता है। नींबू की प्रमुख किस्मों में कागजी नींबू, प्रमालिनी, विक्रम चक्रधर, पी.के.एम–1 आदि प्रमुख हैं। इसमें कागजी नींबू बीज रहित प्रजाति सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सबसे अधिक गुणवत्तायुक्त होने के कारण लोगों द्वारा अधिक पसंद किया जाता है। पी.के.एम–1 नींबू प्रजाति के फलों का पौष्टिक युक्त होने के साथ–साथ उत्पादन अधिक मात्रा में प्राप्ति होता है।

## नींबू के उत्पाद

औषधीय गुणों से भरपूर होने के कारण नींबू का रस शरीर के लिये लाभकारी होता है। यह रोग–प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायता करता है। नींबू का मुख्य कार्य अपशिष्ठ तत्वों को नष्ट कर बाहर स्रावण करने में सहायक होता है। यह पाचन क्रिया निष्क्रिय एवं वजन कम होने जैसी कई तरह की बीमारियों से बचाने में फायदेमंद होता है। नींबू पानी का उपयोग रक्त शुद्ध करने एवं चमकती त्वचा में निखार प्रधान करने में लाभदायक होता है। इसे रक्त शोधक भी कहा जाता है। नींबू में मौजूद साइट्रिक अम्ल पेट के लिये बहुत लाभकारी होता है जो पेट से संबंधित अधिकांश समस्याओं से निजात दिलाता है। यह प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करने में मदद और शरीर को स्वास्थ्यवर्धक बनाये रखने में सहायता करता है। अधिकतर नींबू का उपयोग रस के लिये किया जाता है। इसकी शिकंजी बनायी जाती है जो गर्मियों में शरीर के लिये बहुत लाभदायक होता है। नींबू का प्रयोग विभिन्न प्रकार के खाद्य उत्पाद बनाने में भी किया जाता है। नींबू के खाद्य उत्पाद निम्नलिखित प्रकार के हैं।

1. नींबू का रस।
2. नींबू का अचार।
3. नींबू की कैंडी।
4. नींबू का मुरब्बा।
5. सलाद एवं नींबू के पेय उत्पाद।

## नींबू का औषधीय महत्व

प्राचीनकाल से ही मनुष्य भोजन के साथ नींबू का उपयोग करता रहा है। नींबू में विटामिन–सी की प्रचुर मात्रा पायी जाती है। इसके रस में साइट्रिक एसिड होता है तथा पी.एच. मान 2 से 3 के बीच में होता है। विटामिन–सी शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के साथ ही ऐंटीऑक्सीडेंट का काम करता है जो कोलेस्ट्राल को कम करने में मदद करता है। नींबू में खनिज तत्वों की अधिक मात्रा पायी जाती है। नींबू के फल कैल्सियम और फॉस्फोरस के उत्कृष्ठ श्रोत हैं। नींबू के फल में औसतन प्रति 100 ग्राम खाद्य भाग में, नयी 84.6, प्रोटीन 1.5, वसा 1.0, खनिज 0.7, रेशा 1.3 और कार्बोहाइड्रेट 10.9 प्रतिशत होता है। खनिज पदार्थ और विटामिन में प्रति 100 ग्राम नींबू में कैल्सियम 90, फॉस्फोरस 20, लौह 0.3, कैरोटीन

[1]तकनीकी सहायक [2]प्रधान वैज्ञानिक एवं [3]मुख्य तकनीकी अधिकारी

15, थायेमीन 0.02, राइबोफ्लेबिन 0.03, नियासिन 0.1 और विटामिन–सी 63 मिलीग्राम होता है।

## स्कर्वी रोग (दाँतों एवं हड्डियों की बीमारी)

इस रोग के दौरान विटामिन–सी की कमी होने से हड्डियाँ एवं दाँत टेढ़े हो जाते हैं। नींबू में विटामिन–सी प्रचुर मात्रा में व्याप्त होता है जो स्कर्वी रोग से बचाने में एवं इसके इलाज के लिये बहुत लाभकारी है। स्वास्थ्यवर्धक होने के कारण यह जैव–रसायन क्रियाओं को संतुलित करता है। नींबू पानी में मौजूद अम्लीय गुण पोषण तत्वों के अवशोषण में उपयोग होने वाले रसायनों को उत्पादित करता है जो पाचन क्रिया के लिये आवश्यक होते हैं साथ ही यह अम्लता के खतरे को कम करने में मदद करता है। जो लोग पाचन संबंधी बीमारियों जैसे प्लाटिंग गैस, जलन, मिताली, बदहजमी की समस्याओं से परेशान होते हैं उन्हें नियमित रूप से नींबू पानी का सेवन करना चाहिए। यह प्रतिरोधक तंत्र को मजबूती प्रदान करता है। नींबू के रस में बायोफ्लेवोनायड, विटामिन–सी और फाइटोन्यूट्रियम का बेहतर श्रोत है जो शरीर में रोगों के प्रति लड़ने की क्षमता को बढ़ाने में मदद करता है। इसमें मौजूद विटामिन–सी एवं खनिज तत्वों के कारण शरीर को ऊर्जावान बनाये रखने में सहायक होता है।

यह शरीर के वजन को घटाने में बहुत फायदेमंद होने के साथ वसा संतुलन बनाये रखता है। यह कैंसरकारी तत्वों का विरोधी है। कैंसर रोग से बचाने के लिये नींबू–पानी लाभदायक होता है। नींबू का रस तनाव एवं अवसाद को कम करने में सहायता करता है। नींबू ऐंटीऑक्सीडेंट गुणों से भरपूर होता है जो त्वचा में निखार लाता है। नियमित रूप से नींबू पानी पीने से त्वचा सुंदर एवं स्वस्थ दिखती है। पोषण तत्वों का आपसी संतुलन बनाये रखने के साथ–साथ उनके अवशोषण में सहायक का कार्य करता है। यह कब्ज की समस्या दूर करने के लिये बहुत लाभदायक है। प्रतिदिन सुबह गर्म गुनगुने पानी में नींबू का रस मिलाकर पीने से यह समस्या दूर होती है। मधुमेह रोग में यह शरीर के शर्करा स्तर को सामान्य करने में महत्वपूर्ण कारक का कार्य करता है। यह पानी की पूर्ति पूर्ण रूप से करता है जिससे शरीर में पानी की कमी की समस्या दूर होती है।

## नींबू की उपयोगिता

1. गर्मी के मौसम में नींबू–पानी पीने से पेट की गर्मी दूर होती है एवं ताजगी आने के साथ प्यास को भी शांत करता है। पानी में नींबू का रस मिलाकर पीने से पित्त की वजह से पैदा होने वाली जलन की समस्या दूर होती है।
2. नींबू के रस में नारियल तेल मिलाकर बालों की मसाज करने से सफेद बालों की समस्या से छुटकारा दिलाने में सहायता करता है। साथ ही बालों से रूसी को निजात दिलाता है। नींबू के रस को बालों की जड़ों में लगाने से बालों का झड़ना एवं रूसी की समस्या का अन्त होता है। यह तैलीय बालों जैसी समस्या को भी दूर करता है।
3. नींबू के रस में नमक मिलाकर सेवन करने से रक्त संबंधी बीमारियों में लाभ होता है। खून की कमी दूर करने के लिये नींबू एवं टमाटर का रस मिलाकर पीने से लाभ मिलता है।
4. सिर दर्द दूर करने के लिये नींबू के छिलके पीसकर सिर पर लेप लगाने से दर्द में आराम होता है। नींबू का रस और गुलाब जल को साथ मिलाकर लगाने से दाग धब्बों से छुटकारा दिलाता है। नींबू के रस को एलोवेरा जैल के साथ लगाने से भी यह समस्या दूर की जा सकती है।
5. सर्दी लगने की दशा में सिद दर्द के लिये अदरक एवं नींबू का रस आधा चम्मच सेंधा नमक मिलाकर गर्म कर इसे सूँघें। खाँसी, बुखार के लिये नींबू में नमक, काली मिर्च एवं चीनी भरकर गर्म कर चूसने से लाभ मिलता है।
6. बालों में जूँ से निजात पाने के लिये नींबू के रस के साथ लहसून का रस मिलाकर बालों की जड़ों में लगाने से जूँ की समस्या दूर होती है।
7. नींबू का उपयोग त्वचा पर जले के निशान को कम करने में भी किया सकता है।
8. नकसीर को रोकने में भी नींबू का उपयोग किया जाता है।
9. नींबू के रस को गुनगुने पानी के साथ एक चम्मच शहद मिलाकर सेवन करने से शरीर की चर्बी को

कम करता है जिससे वजन घटाने में मदद मिलती है। नींबू का प्रयोग श्वसन संबंधी समस्याओं को दूर करने के लिये भी किया जाता है।

10. चेहरे पर छाईयों जैसी समस्या को दूर करने के लिए नींबू के छिलके पर दूध की मलाई और शहद मिलाकर चेहरे पर लगाने से कुछ दिनों के बाद दाग हल्के होने शुरू हो जायेंगे और धीरे–धीरे खत्म हो जायें। आँखों के नीचे डार्क सर्कल्स जैसी समस्या के लिये भी नींबू बहुत फायदेमंद होता है।
11. मुख की दुर्गन्ध एवं दाँतों के पीलेपन को खत्म करने के लिये नींबू का रस और बेकिंग सोडा मिलाकर ब्रश करने से दाँतों का पीलापन समाप्त करने में मदद करता है।

## उपयोग की सीमाएँ

नींबू के रस का अधिक उपयोग नहीं करना चाहिए। इसके रस में पाये जाने वाले क्षारीय लवण शरीर में पाये जाने वाले स्वतंत्र यूरिक एसिड को बेअसर कर शरीर के भीतर ही पानी और नमक अम्ल बना देते हैं जो शरीर के विभिन्न अंगों में जमा होने लगते हैं ऐसा देखा गया है कि नींबू के रस का ज्यादा उपयोग करने से गुरदों में पथरी बनने की संभावना अधिक होती है।

## भारत के देदीप्यमान स्वर्गीय प्रधानमंत्री माननीय श्री अटल बिहारी वाजपेई जी की कविताएँ

mft ; kjs e s v ák d kj e s

कल कहार में, बीच धार में,
घोर घृणा में, पूत प्यार में,
क्षणिक जीत में, दीर्घ हार में,
जीवन के शत–शत आकर्षक,
अरमानों को ढलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा।

सम्मुख फैला अगर ध्येय पथ,
प्रगति चिरंतन कैसा इति अब,
सुस्मित हर्षित कैसा श्रम श्लथ,
असफल, सफल समान मनोरथ,
सब कुछ देकर कुछ न मांगते,
पावस बनकर ढलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा।

कुछ कांटों से सज्जित जीवन,
प्रखर प्यार से वंचित यौवन,
नीरवता से मुखरित मधुबन,
परहित अर्पित अपना तन–मन,
जीवन को शत–शत आहुति में,
जलना होगा, गलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा।

Bu x bZ

मौत से ठन गई!
जूझने का मेरा इरादा न था,
मोड़ पर मिलेंगे इसका वादा न था,
रास्ता रोक कर वह खड़ी हो गई,
यों लगा जिन्दगी से बड़ी हो गई।
मौत की उमर क्या है? दो पल भी नहीं,
जिन्दगी सिलसिला, आज कल की नहीं।
मैं जी भर जिया, मैं मन से मरूं,
लौटकर आऊँगा, कूच से क्यों डरूँ?
तू दबे पांव, चोरी–छिपे से न आ,
सामने वार कर फिर मुझे आजमा।
मौत से बेख़बर, जिन्दगी का सफर,
शाम हर सुरमई, रात बंसी का स्वर।
बात ऐसी नहीं कि कोई गम ही नहीं,
दर्द अपने–पराए कुछ कम भी नहीं।
प्यार इतना परायों से मुझको मिला,
न अपनों से बाकी हैं कोई गिला।
हर चुनौती से दो हाथ मैंने किये,
आंधियों में जलाए हैं बुझते दिए।
आज झकझोरता तेज तूफान है,
नाव भंवरों की बांहों में मेहमान है।
पार पाने का क़ायम मगर हौसला,
देख तेवर तूफां का, तेवरी तन गई।
मौत से ठन गई!

# विभिन्न वृक्षों, कंदीय एवं अन्य क्यारी में लगाये जाने वाले पौधों, श्रबरी, जैव बाड़ एवं एजिंग हेतु पौधे एवं उनका रोपण

नरेश बाबू[1]

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

बाग लगाने की योजना तैयार करना उतना ही अनिवार्य है जितना किसी पार्टी के लिये मेन्यू तैयार करना। बिना योजना बनाये हो सकता है कि पौधे उग आयें, स्वस्थ भी हों पर वे कोई असर नहीं छोड़ पायेंगे। इसलिए आपके मन में यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि आप कैसा प्रभाव डालना चाहते हैं। इसके लिये आप किसी ग्राफ पेपर पर योजना तैयार करें जिसमें कहाँ कौन से पौधे होंगे, पौधों की क्या ऊँचाई होगी और यथासंभव उनके आकार की भी रूपरेखा दी जायेगी। एक बार योजना बनाइए, सोचिए–विचारिए और उसमें सुधार कर योजना को रूप दें। पौधों का स्थान एक अथवा दो बार में निर्धारित कीजिए जिससे आप सर्वथा संतुष्ट हों अब बगिया वही रूप लेने लगेगी जिसकी आपने योजना बनायी फिर आप आनंद विभोर हो जायेगें। किसी बाग की मुख्य बात उसकी सुंदरता एवं उपयोगिता है। फिर बाग औपचारिक हो या अनौपचारिक। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये बाग में विविध रंग हो, तालमेल और संतुलन होना चाहिए। यदि प्रत्येक पौधा स्वस्थ हो और उसका अपना अलग व्यक्तित्व झलकता हो तो बाग सुंदर लगेगा। इसका असर न केवल आनंददायी होता है बल्कि थकान मिटाने वाला भी। अच्छी बाड़ लगाने हेतु निम्नलिखित उद्यान कार्य करना चाहिए।

Hkwfe d h r Ş kj h

- उर्वरक
- बाड़ लगाने का उपयुक्त समय
- प्रवर्धन (बीज, कलम, दाब द्वारा सकर)
- सिंचाई
- निराई–गुड़ाई
- खड़ी फसल में उर्वरक देना (125 यूरिया, 250 एस.एस.पी., 50 पोटैश, (किलोग्राम/हेक्टेयर) कटाई–छँटाई (प्रथम कटाई संेंटीमीटर ऊँचे 20 सेंटीमीटर ऊँचाई तक पौधों को छोड़कर)।

## बाड़ के लिये पौधों का चयन

Q yw o ky h c kM+d si kS/ks %कचनार, गुड़हल, बेला, टिकोमा, कामिनी, लेन्टाना।

' kh?kz c <+u s o ky h c kM+d si kS/ks %लेन्टाना, जैतू, झाऊ।

Nk; k o ky h c kM+d si kS/ks %जैतू, प्लास, बांस, विलायती कीकर।

N kVh c kM+d s i kS/ks %मेंहदी, नील काँटा, क्लारॉडेंड्रॉन इनर्मी।

l ġ{kk d sfy ; sN kVh c kM+d si kS/ks %ऑस्ट्रेलियन बबूल, नील काँटा, जंगल जलेबी, बर्लेरिया क्रिस्ताता।

Å p h ' kksHkkd kj h c kM+d s i kS/ks %कामिनी, पीली कनेर, अशोक, मेंहदी, चाँदनी एकेलिफा।

{kkj h; Hkwfe d sfy ; s%पीली कनेर, जंगल जलेबी, मेंहदी, विलायती बबूल।

क्यारियों में लगाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के फूलों, पौधों, झाड़ियों, ताड़, फर्न एवं एजिंग हेतु पौधे एवं उनके रोपण के विषय में निम्नलिखित जानकारी दी जा रही है।

## फूल

रंग–बिरंगे और विकसित फूल जीवन में आनंद का संचार करते हैं। ये फूल वार्षिक हो सकते हैं अर्थात हर साल बीज बोकर उगाये जाने वाले और साल भर में अपना जीवन–चक्र पूरा करने वाले। द्विवार्षिक पौधे दो साल में फूल देते हैं और अपना जीवन–चक्र पूरा करते हैं। बहुवर्षीय वे हैं जो एक बार लगाये जाने पर वर्षों तक फूल देते रहते हैं।

[1]प्रधान वैज्ञानिक

## एक वर्षीय पौधे

हमारे देश में सर्वाधिक लोकप्रिय वार्षिक फूल हैं अर्थात ऐसे फूल जो बीज से उगाये जाते हैं उगकर फूल देते हैं और अपने मौसम पर अपना जीवन–चक्र समाप्त कर देते हैं। वार्षिक फूलों का लाभ यह होता है कि आप भाँति–भाँति के रंगों, आकारों और रूपों के फूल ले सकते हैं। ये पौधे आपके बाग में अपेक्षाकृत कम समय तक रहते हैं और इनकी जगह आसानी से दूसरे फूल लगाये जा सकते हैं। ये सस्ते होते हैं और इन्हें बीजों से आसानी से उगाया जा सकता हैं। इन्हें आप क्यारियों में उगा सकते हैं। बाड़ के लिये, गमलों में सजाने आदि में भी इनका उपयोग होता हैं।

## वर्गीकरण

एक वर्षीय पौधे उगने के अनुसार दो प्रकार के होते हैं।

### शीतकालीन

एन्टिरहिनम, कैलेंडुला, डाइनथस, कॉर्न फ्लावर, स्वीट सुल्तान, स्वीट पी, वेर्बेना, फ्लॉक्स, पैन्सी, गुलदाउदी, डहलिया, एस्टर इत्यादि।

### ग्रीष्मकालीन एवं वर्षाकालीन

अमरांथस, बाल्साम, सेलोसिए, गैलार्डिया, कॉसमॉस, डेहलिया, गेंदा, जीनिया, पेटूनिया, जरबेरा, होलीहोक, हैलीक्रायसम, कोचिया, लार्कस्पर, लुपिन, साल्विया, सेपोनेरिया इत्यादि।

## पौधे तैयार करना

पौधे की तैयारी एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसमें पाँच फुट चौड़ी और दस फुट लंबी क्यारी खोद कर तथा उसमें 3–4 किलोग्राम/वर्ग मीटर की दर से गोबर की सड़ी हुई खाद मिला देना चाहिए। इसके बाद बीजों को बो दें। बीजों पर मिट्टी की पतली परत चढ़ा कर सिंचाई करें। प्रतिदिन थोड़ा–थोड़ा पानी देते रहें। 4–6 दिन में बीज अंकुरित हो जाते हैं। जब पौध 20–24 दिन के हो जायें तो इनका रोपण कर देना चाहिए। पौधे–से–पौधे तथा लाइन से लाइन की दूरी 2–2.5 फुट रखनी चाहिए। हल्की बारिश में पौधों को रोपना अच्छा होता है। अगर बारिश नहीं हो रही हो तो पौधे लगाने के बाद पानी देना चाहिए।

## एक वर्षीय पौधों की चुन्ताई

वार्षिक पौधों की एक महत्त्वपूर्ण कृषि क्रिया इनकी चुन्ताई है। इससे पौधे सघन होते हैं और फूल भी लंबे समय तक खिलते हैं। यदि आप चाहें कि आपके पौधे ऊँचे और सीधे हों तथा तने के दोनों ओर फूल लगें तो आपको चुन्ताई करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे मामलों में पत्तों की कक्ष से निकलने वाले प्ररोहों को मसल दें। अधिकांश वार्षिक पौधों में इनकी आवश्यकता होती हैं।

## एजिंग के लिये

कुछ वार्षिक पौधे जो एजिंग के लिये उपयुक्त और लोकप्रिय हैं उनके नाम हैं, एलाइसम, लाइनेरिया, गेंदा, नैस्टर्शियम, पोर्टुलका, वजीनियम स्टॉक तथा बहुवर्षीय जीनया।

## कंदीय पौधे

बोलचाल में कंद का अर्थ है ट्यूबर, राइजोम (प्रकंद) और कौर्म (घनकंद)। कंद या तो गुदगुदे तने या वह कलिका होती है जो भूमि की सतह के साथ–साथ या नीचे होते हैं। ये पौधे के लिये जल तथा पोषण के आरंभिक स्रोत हैं। कंद जमीन के अंदर का तना होता है और पूरी तरह भूमि के अंदर दबा होता है। प्रकंद भी तना होता है, किन्तु यह भूमि की सतह के साथ–साथ रेंगता हैं।

### उदाहरण

d m %देहलिया और कंदीय बेगोनिया

ç d m %कैना और अदरक

d kS Z¼ku d m½ %ग्लैडिओलस, ऐसिडेन्थरा

## रोपण

कंद लगाने की गहराई अर्थात कंद के ऊपर की मिट्टी की गहराई अलग–अलग किस्म के साथ अलग–अलग होती है लेकिन जो कुछ भी हो गहरा लगाया जाये तो इनके सड़ने या फूल न आने का भय रहता है। एक ही

समय पर लगाये गये कंदों (जो कंद अधिक गहराई पर लगाये जाते हैं) में फूल देर से आते हैं। एक ही किस्म के कंद जिन्हें हर साल नहीं निकालना होता है उन कंदों की अपेक्षा जिन्हें हर साल निकालना होता है, उन्हें अधिक गहरे लगाने चाहिए। मैदानों में ग्लैडिओलस के लिये 6–8 सेंटीमीटर, डेहलिया के लिये 10 सेंटीमीटर, नार्सिसस के लिये 4–5 सेंटीमीटर की दूरी रखनी चाहिए।

## कृषि क्रियाएँ

इसके लिये निम्नलिखित प्रकार से मिट्टी के मिश्रण तैयार किये जायें। इसके लिये दोमट मिट्टी एक भाग, पत्ती की खाद एक भाग, सड़ी हुई गोबर की खाद एक भाग जरूरी है। सामान्यतया कंदीय पौधे कुछ अम्लीय मिट्टी पसंद करते हैं। कलिका बनने से पहले अधिक सिंचाई करना हानिकारक होता है। कंद के चारों ओर की मिट्टी को कंद लगाने के समय से लेकर अंत तक नम रखना चाहिए। किसी भी समय इनका पूरी तरह सूखना विनाशकारी सिद्ध हो सकता है।

## वृक्ष और झाड़ियाँ

किसी भी घर की बगिया में वृक्षों और झाड़ियों का प्रमुख स्थान है क्योंकि बाग की सुंदरता तथा शोभा में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं। ये अनेक आकृतियों, आकारों, पत्र–समूह तथा फूलों के रूप में बाग की शोभा बढ़ाते हैं। पोलीएल्थिया लोजिफोलिया वेर, पेन्डुला जैसे पेड़ एक दम सीधे खड़े गरिमामय लगते हैं और मैगनोलिया जैसे लुभावने वृक्षों से संगम दिखायी देता है सुंदरता और शान का। हाइड्रेंजिया और अजेलिया जैसी घनी झाड़ियाँ और पंखनुमा केसिया फूलों वाली प्रूनस जैसी झाड़ियाँ होती हैं। क्रोटन में रंग–बिरंगी चितकबरी पत्तियाँ पायी जाती हैं।

## वृक्षों का चुनाव

वृक्षों का चुनाव अनेक पहलुओं पर निर्भर करता है। भवन की वास्तुकला, उद्देश्य क्या अकेला ऐसा पौधा चाहिए जो आकर्षण का केंद्र हो या पौधों का समूह जिनसे प्रभाव उत्पन्न करना है, उपलब्ध स्थान, पानी का साधन, अपेक्षित रंग योजना और अंत में स्थान की स्थिति। एक मनोहर वृक्ष सेलिक्स बेबीलोनिका है जिसकी लंबी झुकी हुई शाखाएँ पानी में प्रतिबिंबित होती हैं। छोटे बागों में बड़े–बड़े वृक्षों को नहीं लगाना ही बेहतर है क्योंकि उनकी छाया पौधों के लिये हानिकारक है। छोटे बागों के लिये पेड़ों की ऊँचाई 12–15 फुट तक ठीक रहती है।

## वृक्षों के नाम

बॉटल ब्रश, फूल वाली चेरी, एरिथ्रीना, सिल्वर ओक, नीला गुलमोहर, कदम्ब, कैसिया फिस्चुला, मौलश्री, माइकेलिया चंपा, अशोक, पोलीएल्थिया लोजिफोलिया, अरोकेरिया इत्यादि।

## शोभाकारी वृक्ष

p kj n hokj h ; k i "B %भूमि में लगाने के लिये (बड़े उद्यान) बॉटल ब्रश, पुत्रजीवा राक्सबर्गाई, गार्डिनिया लतीफोलिया, बॉहिनिया परपुरिया, क्रोटन सराका इंडिका, गुलाबी केसिया, सिल्वर ओक, मौलश्री इत्यादि।

v d sy s y ,u ; k fd l h v U; LFkku i j %अमलतास, केसिया मार्जिनता, मैगनोलिया, मुराया एक्सोटिका इत्यादि।

c Ms+ m| ku ] e kx kZ v kfn d s fy , %कमरक, सफेद सिरिस, गुलमोहर, कनक चंपा, फाउंटेन ट्री इत्यादि।

## झाड़ियों का चुनाव

झाड़ियाँ भाँति–भाँति रंग, आकृति, आकार तथा अनुकूलता की होती हैं। वृक्षों की तरह, झाड़ी को किसी लॉन या एकवर्षीय पौधों से घिरी हुई शैल उद्यान या किसी शाकीय बार्डर में जहाँ वह अपनी ओर लोगों का ध्यान आकर्षित कर सकें उन्हें उगाया जा सकता है। इन झाड़ियों अजेलिया, कैसिया, गार्डेनिया, हाइड्रेंजिया, इक्सोरा, नेरियम, मेलपीघिया, लेजस्टरोमिया, प्युनिका ग्रेनेटम इत्यादि कुछ नाम हैं। कुछ झाड़ियों को बाड़ के रूप में लगाया जा सकता है, जैसे बोगनविलिया, कोरोनारिया, गुड़हल, ऐजोलिया और रोडोडेन्ड्रोन जैसी झाड़ियाँ व्यापक प्रभाव के लिये उगाई जा सकती हैं। इन्हें जैव बाड़ भी कहते हैं। झाड़ियाँ सदाबहार या पर्णपाती हो सकती हैं। ये विभिन्न पत्रण समूह वाली झाड़ियाँ हो सकती हैं जो अपने सुंदर पत्तों के लिये प्रख्यात हैं जैसे एकेलीफा, एरेलिया, कोलियस, क्रोटन, दुरन्ता प्लूमेरी, किस्म वेरीगेटा आदि।

## झाड़ियों के नाम

एकेलिफा, एलमेंडा, दुरन्ता, क्रोटन, गलफीमिया, जेसिमिनम संबेक, लसोनिया अल्बा, मुराया एक्सोटिका, रात की रानी।

## रोपण

सभी पर्णपाती झाड़ियों को पतियों के झड़ने के तत्काल बाद यानी अक्टूबर–नवंबर या फरवरी–मार्च में लगाना चाहिए। सदाबहार पौधों को बरसात में लगाना चाहिए। एक से दूसरे स्थान पर पौधों की रोपाई भी बरसात में करनी चाहिए।

## काट-छाँट

झाड़ियों की काट–छाँट का उद्देश्य उन्हें अच्छी आकृति प्रदान करना और घनी या सूखी शाखाओं को हटाकर फूलों के विकास को बढ़ावा देना होता है। सदाबहार पौधों की कभी–कभार ठीक आकार देने के अलावा काट–छाँट नहीं की जाती है। पर्णपाती पौधों की काट–छाँट उन पौधों की विकास की प्रकृति पर निर्भर करती है। नयी बढ़वार पर जिन पौधों में फूल लगते हैं, उनकी फरवरी–मार्च में उनकी काट–छाँट की जानी चाहिए। पुरानी बढ़वार पर जिन पौधों में फूल लगते हैं, फूल आने के तत्काल बाद उनकी काट–छाँट की जानी चाहिए। पर्णपाती झाड़ियों की काट–छाँट पत्ते झड़ने के 2–3 सप्ताह बाद करना सुरक्षित होता है। मैदानों में इन झाड़ियों पर लगभग पूरे साल ही फूल आते हैं जैसे, हेमेलिया, टेकोमा, चाँदनी की काट–छाँट बरसात में की जाती है।

## फर्न

फर्न की अनेक जातियाँ और प्रजातियाँ हैं। ये अत्यंत सुंदर, घरेलू पौधे हैं। इनके पत्रण समूह की आकृति, आकार और रंग कुछ अपने ढंग के अलग ही होते हैं और इनको अलग पादप समूह के रूप में रख सकते हैं, जिसे फरनरी कहते हैं। इनको आप गमलों में भी उगा सकते हैं। उष्ण, उपोष्ण, शीतोष्ण जलवायु के लिये फर्न उपयुक्त होते हैं। फर्न को लगाने का स्थान नमी वाला, अच्छी जल निकासी वाला और छायादार होना चाहिए। इन्हें सीधी धूप नहीं सुहाती। इन्हें चूना, गारा और पत्ती की खाद सुहाती है। इनकी जड़ें कंकड़ों से चिपट जाती हैं और ये खूब पनपते हैं। जब एक बार ये भयंकर सूखे की चपेट में आ जाते हैं तो फिर इनका संतोषजनक रूप से पनपना मुश्किल होता हैं। इन्हें स्थान परिवर्तन पसंद नहीं है।

## फर्न के नाम

एडीएन्टम (मेडन हेयर फर्न), टूटने वाले (भंगुर), *एस्प्लेनियम नाईडस* : चौड़े पत्ते वाले, ट्री फर्न, बहुत ऊँचे ये पहाड़ों पर जंगली तौर पर उगते हैं, लाइगोडियमः आरोही लता वाले, प्लेटाइसीरियम, (स्टैग्स हॉर्न फर्न) : मुश्किल से उगने वाले, नेफरोलेपिस, जो आपको दगा नहीं देगी, भले ही भयंकर सूखा पड़े या गर्मी हो या सर्दी या नमी, एजोला, पानी में तैरती है, सेलाजेनेलासः क्रीपिंग मॉस–इसको अत्यधिक नमी और फर्न जैसी वातावरण में जहाँ पत्तों की खाद दी जाती है, उसके साथ उगायी जा सकती है।

## प्रवर्धन

बरसात में मैदानों में फर्न और सेलाजेनेलास को जड़ों के विभाजित भाग से उगाया जाता है और पहाड़ों में बसंत के मौसम में ।

## मिट्टी का मिश्रण

उम्दा मिट्टी मिश्रण में एक भाग दोमट, एक भाग पत्तों की खाद, एक भाग रेत तथा एक भाग कोयले और पत्थर के टुकड़े को मिलाकर लगभग 1.5–2.5 सेंटीमीटर मोटी तह बनायें और आधा भाग गोबर की सड़ी हुई खाद प्रति पौधे की दर से मुट्ठी भर चूना और राख दी जानी चाहिए।

## ताड़

ताड़ अधिकांश रूप से उष्ण प्रदेश के पेड़ हैं और यह हल्की (बलुई मिट्टी), गर्म, नमी वाली जगहों में खूब पनपते हैं। ताड़ की ऐसी प्रजातियाँ हैं जो धूप और अर्द्ध छायादार स्थानों में पनपती हैं। ताड़ के पौधे बरामदे, सीढ़ियों या बाग के छायादार स्थानों के लिये उपयुक्त होते हैं। ये गमलों में भी बहुत सुंदर लगते हैं। इस पर कीट–व्याधियाँ कम लगते हैं। जो पौधे पानी की अत्यधिक कमी के कारण अपेक्षित रहते हैं, वे मुश्किल से ही संभल पाते हैं।

## ताड़ के नाम

Øş kSVk % इन्हें फिशटेल पाम कहते हैं क्योंकि इसकी पत्तियों की शक्ल मछली की पूँछ जैसी होती है।

v kSfj v kSMkSDl k j Sfx ; k % इसे रॉयल पाम या बोतल पाम कहा जाता है। इसकी आकृति बड़ी आकर्षक बोतल जैसी होती है।

, j Sd k % इसे बटर फ्लाई पाम कहा जाता है। इसे गमले में भी उगाया जा सकता है जो बड़ा सुंदर प्रतीत होता है।

## प्रवर्धन

ताड़ बीज से, जड़ या भूस्तारी से उगाया जा सकता है। बीज से प्रवर्धन बहुत धीमा होता है। ताड़ की बहुत कम किस्मों से भूस्तारिकायें निकलती हैं। इन किस्मों में क्रेयोटा, केमेरोप्स, रेपिस हैं। ताड़ गमलों में खूब पनपते हैं। विशेष रूप से उगने वाली प्रजाति कई साल तक एक ही गमले में रह सकती है। स्थानान्तरित करने में ताड़ की मोटी और गुदगुदी जड़ों को क्षति नहीं पहुँचनी चाहिए।

## मिश्रण तैयार करना

ताड़ के लिये अच्छा कम्पोस्ट तैयार करने के लिये एक भाग पत्ती की खाद, एक भाग सड़ी गोबर की खाद, एक चौथाई रेत और दो भाग बाग की मिट्टी का मिश्रण उपयुक्त होगा। इसमें थोड़ी सी मात्रा अमोनियम सल्फेट की मिला दी जाये तो पत्तियों का रंग में और निखार आता है। बरसात के मौसम में लगभग आधा चम्मच महीने भर बाद दो बार देना ठीक रहेगा। जब पौधा बढ़वार के सक्रिय चरण में हो तो गोबर की तरल खाद हर दो सप्ताह बाद देना लाभदायक है।

## निष्कर्ष

किसी प्रकार का कार्य करने के पहले हमें उसके बारे में व्यापक जानकारी होना चाहिए और यदि हो सके तो प्रशिक्षण लेना चाहिए। ठीक तरह से योजना बनाकर वैज्ञानिक तरीके से कार्य करना चाहिए। इस प्रकार से हमारा उद्देश्य अवश्य पूरा होगा और अपने कार्य में जरूर सफलता मिलेगी।

# औद्यानिक फसलों पर पाले का प्रभाव तथा बचाव के उपाय

अजय कुमार त्रिवदी[1], घनश्याम पाण्डेय[2] एवं प्राणनाथ बर्मन[3]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

## पाला क्या है ?

किसानों और बागवानों के सुबह की शुरुआत पक्षियों के चहचहाने की आवाज सुनकर होती हैं। लेकिन वर्ष के बारह महीने मौसम एक समान नहीं रहता हैं। कभी मौसम जीवन के लिये अनुकूल होता हैं तो कभी प्रतिकूल भी। प्रतिकूल मौसम का असर पशु–पक्षियों से लेकर पेड़–पौधों तक, चल–अचल सभी जीवों पर पड़ता हैं। अंतर यह होता हैं की चल जीव अपने बचाव के लिये स्थान परिवर्तन कर सकते हैं लेकिन अचल जीव जैसे पेड़–पौधे इन विपरीत परिस्थितियों को सहन करने के लिये बाध्य होते हैं। वे एक जगह से दूसरी जगह सुरक्षित स्थान पर नहीं जा सकते हैं। जाड़े के मौसम में जैसे–जैसे सर्दी बढ़ती जाती है, उसका असर भी स्पष्ट दिखने लगता हैं। सुबह उठते ही पक्षियों की चहचहाने की आवाज सुनायी नहीं देती है। पक्षी सर्दी से बचाव के लिये इधर–उधर आशियाना ढूंढ रहे होते हैं। लेकिन लगातार गिरता हुआ तापमान एवं बढ़ती हुई ठंड फसलों को नुकसान पहुँचा सकती है। सर्दी के मौसम में दिसंबर–जनवरी महीने में ठंड सबसे अधिक होती है और ठंढ धीरे–धीरे शीत लहर में बदल जाती है। ठंढ के समय जब रात्रि का तापक्रम 5 डिग्री सेल्सियस या इससे भी कम होता हैं तथा हवा रुक जाती है, ऐसे मौसम में ठंड के साथ–साथ पाला पड़ने की संभावना ज्यादा रहती है। पौधों की पत्तियों के अंदर उपस्थित पानी जमने लगता है जिससे कोशिकाभित्ति फट जाती है और कोशिका के अंदर का तरल पदार्थ बाहर की तरफ आ जाता हैं। परिणामस्वरुप पौधा धीरे–धीरे मुरझाने लगता है। इसे पाला या ठंड से जलना कहते हैं। रात्रि का तापक्रम लगातार 3 डिग्री सेल्सियस या इससे कम का तापमान तथा साफ आसमान पाला पड़ने के लिये अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित करता हैं।

पाला मूलतः दो तरह का होता है, अभिवहन (एडवेक्टिव) और विकिरणवाला (रेडिएटिव)। एडवेक्टिव पाला तब पड़ता है, जब ठंडी हवाएं चलती है । इस अवस्था में आसमान खुला हो या बादल हों, दोनों परिस्थितियों में एडवेक्टिव पाला पड़ सकता है। जब आसमान साफ और हवा शांत हो, ऐसी स्थिति में जो पाला पड़ता है उसे रेडिएटिव पाला कहा जाता है। हवा शांत होने से पृथ्वी के ऊपर एक इनवरजन परत बन जाती है। यह एक ऐसी वायुमंडलीय दशा है जो सामान्य परिस्थिति की तुलना में बिलकुल उलटी यानि विपरीत होती है। सामान्य दशा में ताप ऊँचाई बढ़ने से घटता है । लेकिन इनवरजन के कारण ठंडी हवा पृथ्वी की सतह के पास इकट्ठा हो ताजी है और गर्म हवा इस पर्त के ऊपर होती है ।

पौधों पर कम तापमान का प्रभाव तथा उससे होने वाली क्षति दो तरह की होती है। दोनों से पौधे को नुकसान होता है। एक को चिलिंग क्षति कहते हैं जबकि दूसरे को फ्रीजिंग क्षति। तापमान शून्य डिग्री सेल्सियस से ऊपर रहने पर होने वाली क्षति को चिलिंग क्षति कहा जाता है जबकि पौधों के ऊतकों का तापमान शून्य या शून्य से कम होने पर होने वाली क्षति को फ्रीजिंग क्षति कहा जाता है। इस स्थिति में पत्तियों के अन्दर बर्फ जम जाती है। गर्म क्षेत्रों में उगने वाले पौधे रात के 12 से 15 डिग्री सेल्सियस तापमान पर भी क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। कुछ फसलें पाले के प्रति बहुत ही संवेदनशील होती हैं, जैसे कि टमाटर। अतः पाला से बचने का अन्य कोई उपाय न हो तो बेहतर यह होता है कि पकने की स्थिति में आ चुके हरे टमाटर को तोड़ लिया जाये ओर उन्हें उपयुक्त स्थान पर रख दिया जाये जिससे वह प्राकृतिक तौर पर पक जायें। पाला पड़ने से पौधों की पत्तियाँ ज्यादा प्रभावित होती हैं क्योंकि पौधे असमतापी (पोईकिलोथर्मिक) होते हैं, अतः वह अपना तापमान नियंत्रित नहीं कर पाते हैं। उनके शरीर का तापमान वातावरण के तापमान से नियंत्रित होता है। गर्म हवा में पौधे गर्म हो जाते हैं, ठंडी हवा में ठंडे। पाला गिरने से पत्तियाँ सर्वाधिक प्रभावित इसलिए होती हैं कि पत्तियाँ ही पौधे का सर्वाधिक खुला

[1,2]प्रधान वैज्ञानिक एवं [3]वैज्ञानिक

एवं ज्यादा क्षेत्रफल का अंग होती हैं।

पत्तियाँ हवा के आदान–प्रदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती क्योंकि हैं, पत्तियों में पानी की मात्रा अधिक होती हैं। अतः वातावरणीय तापमान में परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव पौधों की पत्तियों पर पड़ता है। पत्ती के अन्दर कोशिकाओं के बीचों–बीच तथा कोशिका के अंदर भी पानी भरा रहता है जो तापमान शून्य या शून्य से कम होने से जम जाता है। सामान्यतः बर्फ पड़ने के बाद पत्तियों के ऊपर जमी हुई बर्फ अधिक दिखायी देती हैं जबकि जमीन पर बर्फ कम दिखायी देती हैं। जो बर्फ मिट्टी पर गिरती हैं वो मिट्टी का तापमान अधिक होने से पिघल जाती हैं जबकि पत्तियों पर बनी रहती है। जागरूक किसान–बागवान पाला पड़ने की संभावना होने पर सिंचाई पहले ही कर देते हैं। सिंचाई करने से मिट्टी गीली हो जाती हैं। गीली मिट्टी अपेक्षाकृत धीरे–धीरे ठंडी होती है। अतः मिट्टी की सतह पर अपेक्षाकृत ज्यादा ताप होने से फसल पाले के दुष्प्रभाव से बच जाती है। सिंचाई करने से पत्तियों में पानी की मात्रा बढ़ जाती है। जब पानी जमता है तब प्रत्येक ग्राम पानी के जमने पर लगभग 80 कैलोरी ऊष्मा उत्सर्जित होती है। अतः पाला पड़ने से पहले पौधों को पानी देने से इनका आंतरिक तापमान जमाव बिंदु से ऊपर बना रहता है और वे क्षतिग्रस्त होने से बच जाते हैं। लेकिन यदि पौधे पाले से प्रभावित हो गये तब सिंचाई कर इन्हें नहीं बचाया जा सकता हैं। पौधों को नुकसान पाला की वजह से नहीं बल्कि पौधों के अंगों, विशेषकर पत्तियों के ऊतकों के आंतरिक तापमान के कारण होता है। यदि तापमान इतना कम है कि वह कोशिका भित्ति को तोड़ दे या कोशिकांग को इतना क्षतिग्रस्त कर दे कि वे वापस अपनी पूर्व स्थिति में न आ पाये तो प्रभावित ऊतक मुरझा जाते हैं। प्रभाव ज्यादा होने पर उनकी मृत्यु भी हो जाती है। सामान्यतः शीत ऋतु वाले पौधे 2 डिग्री सेल्सियस तक का तापमान सहने में सक्षम होते हैं। इससे कम तापमान होने पर पौधों को नुकसान होता है।

## पाला कैसे पड़ता है?

साधारणतः पाला गिरने का अनुमान वातावरणीय स्थिति से भी लगाया जा सकता है। सर्दी के दिनों में जिस दिन दोपहर से पहले ठंडी हवा चलती रहे एवं हवा का तापमान जमाव बिन्दु के लगभग करीब आ जाये, दोपहर बाद अचानक हवा चलनी बंद हो जाये तथा आसमान साफ रहे या आधी रात से ही हवा रूक जाये, तो पाला पडने की संभावना अधिक होती है। विशेषकर रात के तीसरे एवं चौथे पहर में पाला पड़ने की संभावना अधिक होती है। साधारणतया तापमान गिरने की स्थिति में यदि हवा चलती रहे तो पौधों को नुकसान नहीं के बराबर या काफी कम होता है। परन्तु यदि इसी बीच हवा चलनी रुक जाये तथा आसमान साफ हो तो पाला पड़ता है, तो फसलों के लिये नुकसानदायक होता है।

किसी स्थान विशेष की भौगोलिक परिस्थितियाँ भी पाले को प्रभावित करती हैं। यदि किसी स्थान पर टीले एवं पहाड़ियाँ हैं तो वहाँ एक स्थान से दूसरी स्थान की दूरी तो कम हो सकती है। लेकिन ढलान, उँचाई एवं दिशा में परिवर्तन के कारण पाले का प्रकोप भी भिन्न–भिन्न होगा। ढलान की तलहटी में ठंडी हवा नीचे बैठ जाती है क्योंकि यह गर्म हवा से भारी होती है। अतः घाटी में पाला ज्यादा पड़ता है। साथ ही पहाड़ की चोटी पर तापमान कम होने के कारण पाला अधिक प्रभावित करता है। अतः पहाड़ों के शीर्ष एवं घाटियों में पाला अधिक पड़ता है जबकि पहाड़ के अन्य हिस्से उससे बचे रहते हैं।

## पाले के लक्षण

वस्तुतः सर्दी के मौसम में पाले से सभी फसलों को नुकसान होता है। यह नुकसान कुछ फसलों एवं पौधों में अधिक तथा कुछ में कम हो सकता है। पौधों पर पाले के निम्नलिखित मुख्य प्रभाव दिखायी देते हैं।

- पाले के प्रभाव से पौधों की पत्तियाँ एवं फूल झुलसे हुए दिखायी देते है एवं बाद में झड़ जाते हैं।
- पौधों पर लगी हुई फूलों की कलियाँ गिर जाती हैं।
- पौधौं में लगे हुए अधपके फल सिकुड़ जाते हैं और उनमें झुर्रियाँ पड़ जाती हैं।
- पत्ती, फूल एवं फल सूख जाते हैं।
- फल के ऊपर धब्बे पड़ जाते हैं तथा फल का स्वाद खराब हो जाता है।
- पाले के प्रभाव से फूल झड़ने लगते है तथा फल मर जाते हैं।

- प्रभावित फसल का हरा रंग समाप्त हो जाता है तथा पत्तियों का रंग मिट्टी के रंग जैसा दिखता है।
- फलदार पौधों जैसे की आम, पपीता आदि में पाले का प्रभाव अधिक होता हैं।
- अधिक पाले की स्थिति में सब्जी की पूरी की पूरी फसल नष्ट हो सकती है।
- पाले के कारण अधिकतर पौधों के फूलों के गिरने से पैदावार में कम हो जाती है।
- पालाग्रस्त पत्तियों के सड़ने तथा पत्ती, टहनी और तने के नष्ट होने से पौधों में बीमारियों का प्रकोप अधिक होता हैं।
- पाले से प्रभावित फसल, फल एवं सब्जियों में कीटों का प्रकोप बढ़ जाता है।

## पाले से पौधों की सुरक्षा के उपाय

जब पाला पड़ने की संभावना हो तब सिंचाई कर देनी चाहिए। नमीयुक्त जमीन में काफी देरी तक गर्मी रहती है तथा भूमि का तापक्रम एकदम कम नहीं होता है। इस प्रकार पर्याप्त नमी होने पर पाले से नुकसान की संभावना कम रहती है। खेत या बगीचे के चारों ओर घने पेड़ पंक्तियों में लगाने से हवा की ठंडी तरंगे फसलों को कम नुकसान पहुँचाती है। बगीचे या खेत में उत्तर पश्चिम दिशा में वृक्ष घने लगाने से यह वायुरोधी कार्य करते हैं तथा ठंडी हवाओं को खेत या बगीचे में बहने से रोकते हैं। आम, नींबू, अनार आदि के पौधों को घास–फूस या पुआल की टटियों से ढ़क देना चाहिए। पाले से बचाव हेतु फसल पर घुलनशील गंधक (0.4 प्रतिशत) एवं घुलनशील बोरॉन (0.2 प्रतिशत) मिश्रण का पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से पाले का असर बहुत कम होता है। डाइमिथाइल सल्फोआक्साइड 78 मिलीलीटर/1000 लीटर का छिड़काव भी पाले से बचा सकता है। ऐसे छिड़काव का असर दो सप्ताह तक रहता है। यदि इस अवधि के बाद भी पाले की संभावना बनी रहे तो छिड़काव को 15 से 20 दिन के अंतर पर दोहरा देना चाहिए। फसलों को पाले से बचाने हेतु गंधक का छिड़काव करने से न केवल पाले से बचाव होता है बल्कि पौधों में लौह तत्व की जैविक एवं रसायनिक सक्रियता बढ़ जाती है जो पौधों में रोग रोधिता बढ़ाने एवं फसल को जल्दी पकाने में सहायक होती है।

जिस रात पाला पड़ने की संभावना अधिक हो उस रात बगीचे या खेत के उत्तरी–पश्चिमी दिशा से आने वाली ठंडी हवा की दिशा में बगीचे या खेत के किनारे पौधों या फसल के आसपास मेड़ों पर रात्रि में कूड़ा कचरा, घास फूल, पुआल या अनुपयोगी लकड़ी जला कर धुआँ करना चाहिए ताकि खेत में धुआँ आ जाये एवं वातावरण में गर्मी आ जाये। ऐसे स्थानों पर जहाँ पाले से नुकसान की संभावना बहुत ज्यादा रहती है। सुविधा के लिये मेड़ पर 10 से 20 फुट के अन्तर पर जलने योग्य कूड़ा करकट, घास–फूस का ढेर पहले से ही लगा लेना चाहिए जिससे समय पर धुओं करने में परेशानी न हो। ऐसा करने से बगीचे या खेत का तापमान बढ़ जाता है। पौधशालाओं कें पौधों एवं सीमित क्षेत्र वाले उद्यानों/नगदी सब्जी वाली फसलों में भूमि के ताप को कम न होने देने के लिये फसलों को टाट, पॉलिथीन अथवा भूसे से ढक देना चाहिए। नर्सरी, किचन गार्डन एवं कीमती फसल वाले खेतों में उत्तर पश्चिम दिशा में वायुरोधी टटिया बाँधकर क्यारियों के किनारों पर लगा देना चाहिए। ये टटियाँ दिन की समय हटा देना चाहिए।

# समृद्धि में कारगर है राजमा (फ्रेंच बीन) की वैज्ञानिक खेती

नरेश बाबू[1], सुभाष चन्द्र[2] एवं अरविन्द कुमार[3]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

आजकल शाकाहारी भोजन में राजमा की माँग देश–दुनिया में तेजी से बढ़ रही है। राजमा की विशेषता है कि एक तरफ यह जहाँ स्वादिष्ट और स्वास्थवर्धक होता है वहीं दूसरी ओर लाभ के मद्देनजर किसानों के लिये बहुत अच्छी दलहनी फसल है जो मिट्टी की बिगड़ती हुई सेहत को भी कुछ हद तक सुधारने का कार्य करता है। इसकी हरी फलियों का उपयोग सब्जी के रूप में किया जाता है और पौधों के शेष भाग को हल चला कर मिट्टी में ही मिला दिया जाता है जिससे भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ती है। बाजार में राजमा (फ्रेंचबिन) पूरे वर्ष उपलब्ध रहता है। बड़े होटलों के अधिकांश व्यंजनों में बीन का प्रयोग होता है। इसमें विटामिन की मात्रा अन्य सब्जियों के मुकाबले अधिक होती है। विशेष रूप से प्रोटीन की मात्रा (24 प्रतिशत) तो बेहद है। फ्रेंचबिन की सब्जी पेट के रोगी के लिये लाभदायक होती है। रेशेदार होने के कारण यह पाचन क्रिया तथा गैस के रोगियों के लिये लाभकारी होता है। राजमा के दानों में सामान्यतः 23 प्रतिशत प्रोटीन और 60 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट पाया जाता है। इसके 100 ग्राम दानों में 260 मिली ग्राम कैल्सियम, 410 मिलीग्राम फॉस्फोरस एवं 5.8 मिलीग्राम लौह तत्व पाये जाते हैं जो मानव स्वास्थ्य के लिये अत्यंत ही लाभदायक होते हैं। अधिक माँग होने के कारण बाजार में इसकी बीन्स सबसे महँगे दामों में बिकती है। इसलिए राजमा को नकदी फसल के रूप में उगाया जाने लगा है। इसके दानों का बाजार मूल्य दूसरी फसलों की तुलना में कई गुना अधिक होता है। राजमा की खेती परंपरागत ढंग से देश के पहाड़ी क्षेत्रों में की जाती है। इस फसल की नवीनतम प्रजातियों के विकास के बाद अब यह उत्तरी मैदानी भागों में भी इसकी खेती की जा रही है जिससे राजम की खेती करने के प्रति किसानों का उत्साह और भी बढ़ा है। इस फसल में थोड़ी जानकारी एवं सावधानी रखना महत्वपूर्ण है क्योंकि यह फसल जहाँ एक ओर दूसरी दलहनी फसलों के बजाय सर्दियों के प्रति अधिक संवेदी होती है तो दूसरी ओर इसकी जड़ों में नाइट्रोजन एकत्रीकरण की क्षमता भी कम पायी जाती है ।

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]वैज्ञानिक एवं [3]वरिष्ठ तक. अधिकारी

## राजमा की खेती करने के प्रकार

### अंतर फसल के रूप में

राजमा की खेती आम, अमरूद, केला एवं अन्य फल वृक्षों के बगीचे में शुरू में अंतर फसल के रूप में की जाती है। इसकी खेती करने से दैनिक उपयोग के अलावा अतिरिक्त आय के साथ–साथ बाग की उर्वराशक्ति भी बढ़ा सकते हैं क्योंकि बगीचे में शुरूआत में कोई आमदनी नहीं होती है।

### पॉलीहाउस में फ्रेंचबिन की खेती

अधिक गुणवत्ता एवं आय के लिये इसकी खेती पॉलीहाउस में भी सफलतापूर्वक की जाती है। सिंचाई के लिये पॉलीहाउस में लगा स्प्रिंकलर ऊपर से फुहार बरसाता है जिससे इसे नमी मिलती है। यूरिया एवं पोटैश के प्रयोग से बीन का बेहतर उत्पादन होता है। बाजार में इसकी कीमत 30 से 40 रुपये प्रति किलो होती है। सप्ताह में एक क्विंटल उत्पादन होगा जिससे किसान की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी। बीन की खेती दो महीने तक चलेगी। बाद में, इसमें चाइनीज खीरा लगा सकते हैं।

### जैविक खेती

जैविक खेती के लिये भी राजमा की फसल सफलतपूर्वक पैदा की जा सकती है क्योंकि इसकी खेती के लिये को कम खाद एवं उर्वरक की आवश्यकता होती है। इसमें कीट एवं रोग भी कम लगते हैं एवं आसानी से जैविक कीटनाशी के प्रयोग से नियत्रिंत हो जाते हैं।

## राजमा की खेती के लिये उपयुक्त जलवायु और भूमि

### जलवायु

मैदानी क्षेत्रों में राजमा की खेती रबी ऋतु में की जाती है। इसकी फसल वृद्धि के लिये वातावरण का

तापक्रम 20 से 25 डिग्री सेंटीग्रेट के बीच होना उचित रहता है। इसलिए राजमा को शीतोषण एवं समशीतोषण दोनों तरह की जलवायु में उगाया जा सकता है। राजमा की फसल अन्य रबी दलहनों की अपेक्षा पाले के प्रति अधिक संवेदनशील है।

## भूमि

राजमा की खेती के लिये दोमट तथा हल्की दोमट भूमि उपयुक्त है। पानी के निकास की उत्तम व्यवस्था होनी चाहिये भूमि का पीएच मान 6.5 से 7.5 हो तो उसे उत्तम माना जाता है। इसके लिये लवणीय तथा क्षारीय भूमि उचित नहीं होती है।

## खेती की तैयारी

प्रथम जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा 2 से 3 जुताईयाँ देशी हल या कल्टीवेटर से करने के पश्चात पाटा चलाकर खेत समतल कर लेना चाहिए। बोआई के समय भूमि में पर्याप्त नमी अति आवश्यक है। राजमा महीन भूमि की तैयारी चाहता है। दीमक से फसल सुरक्षा हेतु क्लोरपायरीफास 1.2 प्रतिशत 20 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से अंतिम जुताई के समय मिट्टी में मिलाना चाहिए। खेत में जल निकास की समुचित व्यवस्था कर खेत खरपतवार मुक्त होना चाहिए।

## बोआई का समय

राजमा की खेती के उत्पादन पर बोआई के समय का प्रभाव अन्य दलहनी फसलों की अपेक्षा अधिक होता है। देश के उत्तर पूर्वी भाग में राजमा की बोआई का सबसे उपयुक्त समय अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से लेकर नवंबर के प्रथम सप्ताह तक होता है। परंतु देश के उत्तर–पश्चिमी भाग जैसे पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब में अधिकतम उपज सितंबर के मध्य में बोने से प्राप्त होती है। देर से बोआई करने पर उपज में भारी कमी होती है क्योंकि ऐसी अवस्था में तापमान में गिरावट होने के कारण राजमा के पौधों की वानस्पतिक वृद्धि घट जाती है जिससे फलियों की संख्या और दानों के भार में काफी कमी आती है।

## बीज की मात्रा

इसकी खेती के लिये 120–140 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर जरूरत होती है। विशेष रूप से राजमा से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के लिये 2.5 से 3.5 लाख पौधे प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। पौधों की यह संख्या दानों के भार के अनुसार प्राप्त की जाती है।

## बीज शोधन

बीजोपचार फफूँदीनाशी रसायन कार्बेन्डाजिम (50 डब्लूपी) 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित करना आवश्यक है या 2 से 3 ग्राम थीरम से प्रति किलोग्राम बीज की मात्र के हिसाब से बीज शोधन करना चाहिए।

## बोआई विधि

राजमा की खेती के लिये लाइन–से–लाइन की दूरी 30 से 40 सेंटीमीटर रखते है और पौधे–से–पौधे की दूरी 10 सेंटीमीटर रखते है। इसकी बोआई 8 से 10 सेंटीमीटर की गहराई पर करते हैं।

## उन्नत किस्में

### एच.यू.आर.15

यह सफेद दानों वाली किस्म है। इसके 100 दानों का वजन 40 ग्राम तक होता है तथा ये 120 से 125 दिनों में पककर तैयार होती है। इसकी उपज 18 से 22 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

### पी.डी.आर 14 (उदय)

यह बड़े दानों वाली किस्म है जिसके 100 दानों का वजन 44 ग्राम तक होता है तथा इसके दानों का रंग सफेद–चित्तीदार होता है। यह किस्म 125 से 130 दिनों में पककर तैयार हो जाती है तथा इसकी अधिकतम उत्पादन क्षमता 20 से 25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

### वी.एल. 60

यह किस्म खरीफ एवं रबी दोनों मौसम के लिये उपयुक्त हैं। इसके दानों का रंग भूरा एवं 100 दानों का वजन 36 ग्राम तक होता है। यह 110 से 115 दिन में पककर 15 से 20 क्विंटल/हेक्टेयर दाना उपज देती है।

### अन्य किस्में

बी.एल. 63, अम्बर, आई.आई.पी.आर. 96–4, उत्कर्ष, आई.आई.पी.आर 98–5, एच.पी.आर. 35, बी.एल. 63, अरुण और हूर–15 आदि प्रमुख किस्में हैं।

## उर्वरक की मात्रा

राजमा की अधिक उपज लेने के लिये खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करना आवश्यक होता है। गोबर की खाद या कंपोस्ट 5 से 7 टन प्रति हेक्टेयर की दर से खेत की अंतिम जुताई के समय डालना चाहिए। इसके साथ–साथ 120 किलोग्राम नाइट्रोजन, 60 किलोग्राम फॉस्फोरस एवं 30 किलोग्राम पोटैश प्रति हेक्टेयर तत्व के रूप में देना आवश्यक है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा, फॉस्फोरस एवं पोटैश की पूरी मात्रा बोआई के समय तथा बची नाइट्रोजन की आधी मात्रा खड़ी फसल में देनी चाहिए। इसके साथ ही 20 किलोग्राम गंधक की मात्रा देने से लाभ होता है। 20 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव बोआई के बाद 30 दिन तथा 50 दिन में करने पर उपज अच्छी मिलती है।

## सिंचाई

राजमा की जड़ें उथली होने के कारण इसके लिये नम भूमि एवं अधिक पानी की जरूरत होती है। राजमा को 25 दिन के अन्तराल पर तीन से चार सिंचाई, जैसे बोआई के 25, 50, 75 और 100 दिन बाद सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। सिंचाई हल्की करें तथा खेत में पानी रुकना नहीं चाहिए सिंचाई के पश्चात समुचित जल निकासी आवश्यक है।

## खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार नियंत्रण के लिये राजमा की फसल में 1 से 2 निराई–गुड़ाई की आवश्यकता होती है। पहली निराई–गुड़ाई प्रथम सिंचाई के बाद करना चाहिए। गुड़ाई के समय थोड़ी मिट्टी पौधे पर चढ़ा देनी चाहिए जिससे फली लगने पर पौधे को सहारा मिल सके। खरपतवार के रासायनिक नियंत्रण हेतु पेन्डीमेथलीन 3.3 लीटर प्रति हेक्टेयर के हिसाब से 800 से 900 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। बोआई के तुरंत बाद (अंकुरण से पूर्व) छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव के समय भूमि में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।

## रोग रोकथाम

राजमा की खेती में जैसे ही पत्तियों पर मुजैक दिखें, रोगार या डेमेक्रांन को 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। रोगी पौधों को शुरू में ही निकाल देना चाहिए तथा मिट्टी में गड्ढा खोदकर पौधों को डालकर उन्हें ढक देना चाहिए। साथ में डाईथेंन जेड–78 या एम–45 को मिलाकर छिड़काव करना लाभप्रद होता है।

## कीट रोकथाम

राजमा में सफेद मक्खी और माहू कीट लगते हैं। इनकी रोकथाम के लिये कीटनाशक डाइमेथोएट का 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

## कटाई और गहाई

आमतौर पर अक्टूबर से नवंबर में फसल पक जाती है। राजमा की फल्लियाँ पीली पड़कर पकने लगें तब कटाई करनी चाहिए अन्यथा फल्लियाँ चटकने लगती हैं। कटाई कर फसल को सुखाकर गहाई की जाती है तथा दानों को खुली धूप में सुखा लेना चाहिए।

## उपज

आमतौर पर राजमा की उन्नत खेती से 23 से 30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त हो जाती है।

# आम एवं अमरूद के पोषक तत्वों का महत्व

वीणा, जी.एल.[1], उमेश हुड़ेदमनि[2], पारूल सागर[3], मुरलीधरा बी.एम.[4] एवं शैलेन्द्र राजन[5]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

## मानव पोषण में फलों का महत्व

स्वस्थ जीवन शैली में पोषक भोजन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। केवल भोजन ग्रहण करना ही शरीर के विकास के लिये आवश्यक नहीं है। देश के विकास के साथ ही लोगों ने अब अधिक पोषक तत्वों वाले पदार्थों को लेना प्रारंभ कर दिया है जिससे वे ''बीमारियों एवं अतिवाद'' तथा भोजन शैली से उत्पन्न बीमारियों, हृदय रोग और अन्य प्रकार के कर्क रोगों (कैंसर) एवं विकारों से अपना बचाव कर सकें। फल प्रोटीन, खनिज लवण एवं पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण स्वास्थ्य से संबंधित जैव तत्वों को प्रदान करने में एक अहम भूमिका निभाते हैं। फल एवं सब्जी मैग्नीशियम, आयरन, जिंक, कैल्सियम, राइबोफ्लेविन, पोटैशियम एवं भरपूर रेशों का अच्छा स्रोत है। फलों में विभिन्न प्रकार के फाइटोकेमिकल्स उपलब्ध होते हैं जिनका मानव स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव होता है। अतः टमाटर एवं उसके अन्य उत्पादन कैंसर कारकों को कम करने में सहायक होते हैं क्योंकि इसमें लाइकोपिन भरपूर मात्रा में पाया जाता है। बहुत से फल एवं सब्जियाँ, जैसे संतरा, आम, गाजर, तरबूज, पालक, अंगूर एवं अन्य रसीले फल जैसे अनन्नास इत्यादि का नियमित उपयोग अपने पोषक तत्वों से निहित होने के कारण स्वास्थ्य हेतु लाभदायक हैं।

Qy ksa e sa fu fgr i ks"kd i nkFkZ, oa mu d k LokLF; e sa y kHkA

| Øe la | fu fgr r Ro | l zks r | e kuo LokLF; , oa j ksx ksa e sa mi ; ksx |
|---|---|---|---|
| 1. | विटामिन–सी | साइट्रस, अमरूद, कीवी, अनन्नास, स्ट्रॉबेरी, टमाटर | मोतियाबिंद, कैंसर, हृदय रोग, स्ट्रोक |
| 2. | कैरोटिनॉयड (विटामिन–ए) | खुबानी, खरबूजा, आम, अमृत, संतरा, पपीता, आड़ू, अनन्नास | रतौंधी आँखों की रोशनी |
| 3. | विटामिन–ई | बदाम, काजू, मैकडामिया *अखरोट*, पिस्ता, *अखरोट* | सोरायसिस, त्वचा कैंसर |
| 4. | फ्लैवोनॉयड | सेब, ब्लैकबेरी, ब्लूबेरी, क्रैनबेरी, अंगूर, आड़ू, बेर, अनार, स्ट्राबेरी, आम, अमरूद, केला, सेब, नट्स | कैंसर, हृदय रोग, अस्थमा |
| 5. | रेशा | आम, अमरूद, केला, सेब, नट्स | मधुमेह, हृदय रोग |
| 6. | पोटैशियम | केला, पौधे, खुबानी, संतरा, स्क्वैश | उच्च रक्तचाप, स्ट्रोक |

[1,2,4]वैज्ञानिक, [3]परियोजना सहयोगी एवं [5]निदेशक

## मानव पोषण में आम का महत्व

भारत की फसलों में आम (*मैंजीफेरा इंडिका*) एक महत्वपूर्ण फसल है। इसे फलों का राजा भी कहा जाता है जिसमें ऐंटीऑक्सीडेंट की अच्छी गुणवत्ता पायी जाती है, जैसे एस्कॉर्बिक एसिड, कैरिटोनायड, पूर्ण फिनोल, फ्लैवोनोयड इत्यादि। जैव सक्रिय यौगिक आम में पाये जाते हैं। वे मानव शरीर में ऐंटीऑक्सीडेंट की सक्रियता को बढ़ाने और रोग रक्षक का कार्य करते हैं। आम में विभिन्न प्रकार के जैविक सक्रिय तत्व स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छे एवं कैंसर रोधी तत्वों से निहित होते हैं। आम में पानी और लिपिड में घुलनशील सूक्ष्म पोषक तत्व होते हैं। फलों में पाये जाने वाले जैविक सक्रिय तत्वों की गुणवत्ता एवं गुणात्मकता फलों की जीन संरचना को बढ़ाती है। यद्यपि सांद्रता के मानक विभिन्नता प्रकट करते हैं। वे आम जिनमें जीनोटाइप की प्रतिकूलता पायी जाती है। उनमें विभिन्नता होते हुए भी एक बड़ी श्रेणी में पोषक तत्वों का मूल्य भी पाया जाता है। विटामिन–सी के साथ इनमें संपूर्ण फिनॉल का अंतर 33 से 234 मिलीग्राम/100 ग्राम होता है, फ्लैवोनॉयड की मात्रा $4^{-37}$ मिलीग्राम/100 ग्राम, पूर्ण कैरोटिनॉयड की स्तर 1.30–11 मिलीग्राम/100 ग्राम जबकि ऐंटीऑक्सीडेंट का स्तर 0.2–1.40 – मोल प्रति ग्राम होता है।

आम में बीटा कैरोटिन पाया जाता है जो प्रोस्टेट कैंसर

एवं रात्रि अंधता के प्रतिरक्षण का कार्य करता है। फिनॉल तथा उच्चस्तरीय ऐंटीऑक्सीडेंट की सक्रियता कोलोन एवं स्तन कैंसर रोधी होती है। फल में मौजूद फाइबर और पोटैशियम सामग्री दिल की बीमारी और उच्च रक्तचाप को दूर करने में मदद करती हैं। इस प्रकार आम में ऐसे तत्व हैं जो स्वास्थ्य के लिये लाभदायक हैं। शोध से इस बात की पुष्टि हो चुकी है।

## मानव पोषण में अमरूद का महत्व

अमरूद को गरीबों का सेब कहते हैं। अमरूद मायरटेसी कुल का फल है। यद्यपि स्थलीय अमेरिका इसकी उत्पत्ति का स्थान है फिर भी है इसकी फसल पूरे विश्व में उगाई जाती है क्योंकि इसकी अनुकूलता विस्तृत है। अमरूद में एक विस्तृत मात्रा में फाइटोकेमिकल्स तथा पॉलीसैकरायड पाये जाते हैं। इसमें विटामिन और आवश्यक तैलीय गुण भी होते हैं। अमरूद में अत्यधिक मात्रा में ऐंटीऑक्सीडेंट और विटामिन के अतिरिक्त ल्यूटिन, जेक्सैंथिन और लाइकोपिन पाया जाता है। अमरूद में साइट्रस (फल के 100 ग्राम में विटामिन–सी का 80 मिलीग्राम) से अधिक विटामिन सी होता है और इसमें विटामिन–ए की भी भरपूर मात्रा होती है। लाइकोपीन के संदर्भ में यदि देखा जाये तो सर्वाधिक एकल ऑक्सीजन क्वेंचर और प्राक्सिल मूलक पाये जाते हैं जो मानव शरीर में उपस्थित *कैरिओनाइयड* के लिये स्वच्छकार के रूप में कार्य करते हैं। लाइकोपीन की उपस्थिति के कारण इसका गूदा गुलाबी रंग का होता है तथा इसकी किस्में 1.30–4.0 मिलीग्राम/100 ग्राम के बीच रहती है। इसमें संपूर्ण फिनोल 145.0–398.0 मिलीग्राम/100 ग्राम तक होती है। कुल फ्लेवोनॉयड 45–230 मिलीग्राम/100 ग्राम से होती हैं। संपूर्ण ऐंटीऑक्सीडेंट 1.2–4.1 मोल ट्रोलेक्स/100 ग्राम होता है। अन्य अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि ऐंटीऑक्सीडेंट से भरपूर फलों की खपत ऑक्सीडिएटिव तनाव के खतरों को कम करती है। आम और अमरूद सभी उष्णकटिबंधीय लोगों द्वारा खाये जाने वाले महत्वूपर्ण उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय फल हैं। अतः इसको महत्वपूर्ण जैव सक्रिय घटकों को प्रभुद्ध करने से एवं इन फलों के औषधीय गुणों के बारे में जागरूकता पैदा करने से आम लोगों को पोषण सुरक्षा प्राप्त करने में मदद मिलेगी।

## झीनी झीनी बीनी चदरिया

d kgs d Sr kuk d kgs d SHkj u h]<br>
d kS r kj l s chuh pnfj ; kAA1AA

bMk fi ³ xy k r kuk Hkj u h]<br>
l q[ke u r kj l s chuh pnfj ; kAA2AA

v kB d py ny pj [ kk Mksy $<br>
i kp r Ùo xq r huh pnfj ; kAA3AA

l kj d ksfl ; r e kl nl y kx s]<br>
Bksd Bksd d Schuh pnfj ; kAA4AA

l ksp knj l qj uj eqfu v ks<h]<br>
v kf< d Se S h d huh pnfj ; kAA5AA

nkl d chj t r u d fj v ks<h]<br>
T; ksa d È R; ksa èkj nhuh pnfj ; kAA6AA

–*कबीरदास*

# खिरनी में पोषक तत्व का महत्व

ए.के. सिंह[1] एवं गौरव सिंह विशेन[2]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

## परिचय

खिरनी या *मैनिलकारा हेक्जैंड्रा* सैपोटेसी कुल का शुष्क तथा अर्ध शुष्क स्थान पर उगने वाला 20–30 फुट ऊँचा, घना, मध्यम आकार का सदाबहार वृक्ष है। खिरनी के पौधे मुख्यतः जंगलों में पाये जाते हैं। इसका पौधा अत्यधिक सहिष्णु होता है। इसे भारत के उत्तर प्रदेश के सभी क्षेत्रों, महाराष्ट्र के रत्नागिरी, गुजरात के सूरत, मध्य प्रदेश में मांडू आदि क्षेत्रों में बहुतायत से देखा जा सकता है। भारत के अलावा चीन, श्रीलंका, बांग्लादेश, म्यांमार, थाईलैंड, कंबोडिया एवं वियतनाम में भी इसके पौधे पाये जाते हैं। यह बंजर एवं जंगली भूमि के लिये एक आदर्श एवं अनुकूल पौधा है जो मध्य भारत तथा प्रायद्वीपीय भारत में बहुतायत में पाया जाता है। खिरनी गर्मी के मौसम में पकने वाला नीम के फल (निम्बोली) के आकार का कुछ लंबाई लिये हुए किन्तु छोटे आकार का फल है जो पकने पर पीले रंग का मीठे स्वाद वाला होता है। गुणों के आधार पर आर्युवेद के अनुसार इसे भी फलों का राजा माना गया है। इसका संपूर्ण भाग मानव जाति के लिये अत्यंत उपयोगी होता है। इसके वृक्ष की छाल औषधीय कार्य में उपयोग में आती है। इसकी लकड़ी बहुत ही मजबूत एवं चिकनी होती है तथा पत्तियाँ जानवरों को खिलाने के काम आती है। फलों के बीज से तेल प्राप्त होते हैं जिसकी मात्रा लगभग 24 प्रतिशत होती है तथा इनके बीजू पौधे से चीकू/सपोटा के पौधे भी ग्राफ्ट किये जा सकते हैं।

खिरनी के पेड़ पर सितंबर से दिसंबर के महीनों में फूल उगते हैं तथा अप्रैल से जून के महीने में फल लगते हैं। खिरनी एक दीर्घजीवी वृक्ष है। इसके कई हजार वर्ष पुराने उम्र के पेड़ भी देखे जा सकते हैं। इसमें बीजू पौधे से 10–12 वर्ष के पश्चात फल लगना प्रारंभ हो जाता है जबकि कलम किये गये पौधों से 4–5 वर्ष में ही फल आने लगते हैं। इसे रायन अथवा पाला भी कहते हैं। चरक चिकित्सा में इसे जीवनी की श्रेणी में रखा गया है। संस्कृत में इसे क्षिरिणि कहा जाता है जिसका अर्थ क्षीर होता है अर्थात् ऐसा फल जिसमें दूध भरा हो। इसी से अपभ्रंश नाम खिरनी हुआ है। इसके फलों तथा पत्तों को तोड़ने में भी दूध निकलता है।

## पोषक तत्वों से भरपूर

खिरनी के फलों में कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, कैल्सियम, फास्फोरस, लौह, खनिज, विटामिन आदि विद्यमान होते हैं। इसमें अनेक प्रकार के पोषक तत्व मौजूद होते हैं जो सेहत के लिये बहुत गुणकारी होते हैं। यदि इनमें से किसी एक की भी कमी शरीर में होती है तो सेहत पर उसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके फल को ताजा या सुखा कर खाते हैं। इसे उबाल कर भी खाया जाता है। बीजों को तल या भून कर भी खाया जाता है जिसका स्वाद मूँगफली की तरह होता है परन्तु इसमें मौजूद एल्कलॉयड के कारण इसे अधिक मात्रा में खाना हानिकारक होता है।

### प्रोटीन

इसमें प्रोटीन की मात्रा 0.48 ग्राम होती है जो हमारे शरीर के विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इससे मांसपेशियों एवं प्रतिरोधी क्षमता को मजबूती मिलती है। हमारे शरीर का 18–20 प्रतिशत भार प्रोटीन के कारण ही होता है।

### कैल्सियम

कैल्सियम 83 मिलीग्राम होता है जो हड्डियों के लिये एक आवश्यक है।

### फॉस्फोरस

खिरनी में 17 मिलीग्राम फॉस्फोरस पाया जाता है जो हड्डियों के गठन तथा बेहतर पाचन में सहायक होता है।

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2]कनिष्ठ शोध सहायक

### वसा

खिरनी में वसा की भरपूर मात्रा मौजूद होती है। शरीर के उचित कार्य के लिये वसा की आवश्यकता होती है। वसा शरीर को फैटी एसिड प्रदान करता है जो शरीर द्वारा नहीं बनाया जाता। वसा हमारे बालों और त्वचा को स्वास्थ्य बनाये रखने में मदद करता है।

### विटामिन

खिरनी में विटामिन ए, विटामिन बी और विटामिन सी पाये जाते हैं जिनकी सूक्ष्म मात्रा हमारे शरीर के लिये आवश्यक है।

### लौह

खिरनी में लौह की मात्रा 0.92 मिलीग्राम होती है। यह हमारे शरीर के रक्त में हीमोग्लोबिन का सबसे महत्वपूर्ण घटक है। यह हमारे पूरे शरीर में ऑक्सीजन पहुँचाने का कार्य करता है।

### कार्बोहाइड्रेट

खिरनी में 27.74 प्रतिशत पाया जाता है जो हमारी सभी गतिविधियों के लिये ऊर्जा प्रदान करता है।

## खिरनी के फल में पोषक तत्व

| i ks"kd rRo | Ekk=k |
|---|---|
| नमी | 65.5 प्रतिशत |
| प्रोटीन | 0.48 प्रतिशत |
| वसा | 2.42 प्रतिशत |
| कार्बोहाइड्रेट | 27.74 प्रतिशत |
| खनिज | 0.75 प्रतिशत |
| कैल्सियम | 83 मिलीग्राम / 100 ग्राम |
| फॉस्फोरस | 17 मिलीग्राम / 100 ग्राम |
| लौह | 0.92 मिलीग्राम / 100 ग्राम |
| विटामिन ए | 675 मिलीग्राम / 100 ग्राम |
| विटामिन बी–1 | 70.33 मिलीग्राम / 100 ग्राम |
| विटामिन सी | 15.62 मिलीग्राम / 100 ग्राम |

खिरनी के फल में अनेक प्रकार के अम्ल पाये जाते हैं।

| cht lsi zkIr rsy esa QSVh ,flM dsi zdkj | |
|---|---|
| पालमीटिक एसिड | 18.9 प्रतिशत |
| स्टेरिक एसिड | 14.1 प्रतिशत |
| ऑयलिक एसिड | 63.2 प्रतिशत |
| लीनोलिक एसिड | 2.7 प्रतिशत |

## महत्व

खिरनी में अनेक प्रकार के ऐसे तत्व होते हैं जो शरीर की अंदरूनी अनेक जैविक क्रियाओं को नियंत्रित करने में सक्षम हैं।

### वात रोगनाशक

वात रोग जिसमें जोड़ों का दर्द, यूरिक एसिड का बढ़ना, कमर दर्द, गठिया आदि विशेष रूप से शामिल है। खिरनी का सेवन करने से वात रोग का नहीं होता है।

### क्षय रोग का नाश

क्षय रोग (टी.बी.) एक संक्रामक बीमारी है। यह बीमारी कमजोर लोगों या फिर उन लोगों को होती है जिनकी प्रतिरोधक क्षमता कमजोर होती है। ऐसे लोगों को टी.बी. के खतरे से बचने के लिये खिरनी की छाल का काढ़ा दिया जाता है।

### पित्त नाशक

यह फल पित्तनाशक होने के कारण रक्त पित्त रोग में लाभ पहुँचाते हैं तथा पीलिया के रोगियों के लिये भी महत्वपूर्ण औषधि है। यह शरीर को मोटा करने वाला फल होता है। अतः यह खिरनी का फल दुर्बल व्यक्तियों के लिये बहुत ही हितकारी है। खिरनी के फल मीठे और स्वादिष्ट होने के साथ–साथ शरीर में शीतलता भी प्रदान करते हैं।

### ज्वर या बुखार में फायदा

ज्वर होने पर खिरनी की छाल का काढ़ा बनाकर पीने से ज्वर या बुखार उतर जाता है। इसके फलों को सुखाने पर वे सूखे मेवा का अच्छा विकल्प हो सकते हैं।

### बंजर भूमि हेतु उचित विकल्प

इसके वृक्षों को पानी एवं पोषक तत्वों की ज्यादा आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः इन्हें बंजर, ऊसर एवं वन क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। खिरनी के पेड़ से गम का भी उत्पादन होता है। इसकी छाल में 10 प्रतिशत टैनिन पाया जाता है जिसका प्रयोग चमड़े को चमकाने के लिये होता है।

### दाँतों के लिये लाभदायक

खिरनी के दूध का प्रयोग दाँतों के रोगों के रोकथाम में होता है, जैसे मसूढ़ों से खून निकलना, सूजन एवं सड़न, दर्द आदि। इसका फल पचने में भारी होता है। अतः इसका सेवन अधिक मात्रा में नहीं करना चाहिए।

बरसात की कुछ बूँदे इसके फल पर गिरते ही फल में सड़न आ जाती है। इसके फल का ज्यादा मात्रा में सेवन करने पर गठिया रोग की संभावना बढ़ जाती है। खिरनी के फलों का सेवन तोड़ने के तुरन्त बाद 1–2 दिन तुड़ाई उपरान्त ही करना चाहिए क्योंकि फल में पाये जाने वाले दूध (लैटेक्स) के कारण फल का गूदा जीभ पर चिपकता है।

अतः खिरनी में पोषक तत्व की मात्रा एवं उपयोग को देखते हुए इसका महत्व अधिक बढ़ जाता है।

****

## झांसी की रानी

Ç gkl u fgy mBs jkt oa'kkaus Hkd`Vh r ku h Fkh]
c w+ Hkkjr e a v kÃ fQj l su; h t oku h Fkh]
x qe h gqÃ v kt +knh d h d he r l cusi gp ku h Fkh]
n jw fQj xa h d ks d j usd h l cuseu e a Bku h FkhA
p ed mBh l u l Ùkkou e a s og r y okj i qjku h Fkh]
c q a sy s gj c ksy ka d s e qg geus l qu h d gku h Fkh]
[ kw y Mh+ e n kZ u h og r ks > k;l h oky h j ku h FkhAA

d ku i qj d s uku k d h] e qg c ksy h cgu Nc hy h Fkh]
y {e hc kÃ u ke ] fi r k d h og l a ku v d sy h Fkh]
uku k d s l x i <+ h Fkh og] uku k d s l x [ ksy h Fkh]
c j Nh <ky ] —i k. k] d Vkj h ml d h ; gh l g sy h FkhA
oh j f' kokt h d h x kFkk; a ml d h ; kn t ¨ ku h Fkh]
c q a sy s gj c ksy ka d s e qg geus l qu h d gku h Fkh]
[ kw y Mh+ e n kZ u h og r ks > k;l h oky h j ku h FkhAA

*–'सुभद्रा कुमारी चौहान'*

# फलों के औषधीय और पोषण गुण

अंजू बाजपेयी[1] मुथ्थुकुमार एम.[2] लक्ष्मी[3] एवं यशी बाजपेयी[4]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

बढ़ती हुई वैश्विक आबादी और जलवायु परिवर्तन से जूझते हुए कृषि क्षेत्र ने 'हरित क्रांति' के द्वारा उच्च उपज वाली फसल का विकास किया किंतु पौष्टिक विविधतापूर्ण आहार को नजर अंदाज किया गया। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप विश्व के विकासशील देशों में लगभग 80 करोड़ लोग सूक्ष्म कुपोषण से पीड़ित हैं जिसे ''छिपी हुई भूख'' भी कहा जाता है।

विश्व स्वास्थ संगठन के अनुसार मानव स्वास्थ्य के लिये भुखमरी और पोषण आज भी गंभीर समस्याएँ हैं। शिशु मृत्यु की कुल संख्या में से आधे मामलों के लिये कुपोषण ही कारक है। एफ.ए.ओ. के अनुसार प्रत्येक छह में से एक व्यक्ति भुखमरी से प्रभावित हैं। भारत में लगभग 20 करोड़ लोग आयोडीन, विटामिन ए, लोहा और जस्ता की कमी से ग्रस्त हैं। भूख और कुपोषण से निपटने के लिये भारत निराशाजनक स्थिति में बना हुआ है तथा विश्व भूख सूचकांक (2016) के आँकड़ों के अनुसार 118 कुपोषित देशों में भारत का स्थान 97 है। हमारे देश में 38 प्रतिशत बच्चों का कुपोषित होने के कारण उनकी माताओं को गर्भावस्था के समय उचित पोषण तत्वों का नहीं मिलना है।

भारत को कुपोषण जैसी गंभीर समस्या से निपटने के लिये निरन्तर प्रयास करने की आवश्यकता है। कुपोषण के कारकों में सबसे महत्वपूर्ण विटामिन 'ए' और जस्ता हैं जो हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली और मृत्यु दर के लिये जिम्मेदार है। विटामिन 'ए' की कमी से अंधापन, जन्म दोष और मानसिक विकार जैसी समस्याएँ होती हैं। शारीरिक और मानसिक विकास के लिये लौह जैसे अन्य महत्वपूर्ण सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इन तत्वों का प्राथमिक उद्देश्य हमारे शरीर को ऑक्सिडेटिव स्ट्रेस और बीमारियों से बचाना तथा प्रतिरक्षा स्तर को बढ़ाना है। भारत जैसे प्रमुख शाकाहारी देश में पोषक

चित्र 1 : फलों के पोषक तत्व

तत्वों से समृद्ध फलों और सब्जियों को खाने से लगभग 20–70 लाख लोगों की मृत्यु की दर को रोका जा सकता है। रेशा और विटामिन से भरपूर होने के कारण फल हमारे स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में सहायक है। अनेक फलों में पर्याप्त मात्रा में सूक्ष्म पोषक तत्व, ऐंटीऑक्सीडेंट जैसे पॉलीफिनॉल, फ्लेवोनॉयड और एन्थोसायनिन होते हैं (चित्र–1)। फल सब्जी के अलावा समाज के सबसे पिछड़े सदस्यों में पोषण की कमी को दूर करने के लिये महिलाएँ और छोटे बच्चों के आहार में मुख्य रूप से कसावा, मक्का, शकरकंद, आलू और ज्वार जैसे पोषक भोजन शामिल करने की जरूरत पायी गयी है जिससे भोजन में पोषण विविधता पूरी होती है। पौष्टिक फलों के वृहद घरेलू उत्पादन से खपत में उपलब्धता रहती है और आहार विविधता और गुणवत्ता में सुधार कर घरेलू पोषण में सुधार संभव है। पोषण के लिये महत्वपूर्ण फलों की औषधीय एवं पोषण संबंधी गुण नीचे वर्णित हैं।

## आम

देश में सभी जलवायु में पैदा होने वाला आम स्वाद के साथ–साथ प्री–बायोटिक आहार, रेशा, खनिज, फ्लेवोनॉयड जैसे बीटा–कैरोटीन, एल्फा–कैरोटीन और पॉली–फेनोलिक फ्लेवोनॉयड कंपाउंड तथा विटामिन–ए जैसे अनेक गुणों का स्वामी है। इसके अतिरिक्त आम का छिलका फाइटोन्यूट्रिएंट, जैसे कि कैरोटिनॉयड और

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]वैज्ञानिक [3,4]एवं कनिष्ठ शोध सहायक

पॉलीफिनॉल से भी भरपूर होता है। इसमें उपलब्ध कॉपर लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन में मदद करता है। देश में विकसित आम की किस्में आम्रपाली, पूसा लालिमा, पूसा अरुणिमा, पूसा सूर्या, पूसा पीतांबर, मल्लिका, अरुणिमा, अंबिका, रत्ना आदि प्रमुख हैं।

## पपीता

पपीते के फल को कम कैलोरी (43 कैलोरी/100 ग्राम), कोलेस्ट्रॉल, खनिज पदार्थ और प्रचुर विटामिन के कारण उत्तम फल माना जाता है। पपीते में नरम एवं आसानी से पचने वाला गूदा होता है जिसका घुलनशील आहार–रेशा मल त्याग करने में मदद करता है तथा कब्ज की समस्या से भी निदान दिलाता है। यह विटामिन–ए और फ्लेवोनॉयड जैसे बीटा–कैरोटीन, ल्यूटीन का भी एक उत्कृष्ट स्रोत है। पपीते का फल बी–कॉम्प्लेक्स में भी समृद्ध है तथा कुछ पारंपरिक दवाओं में प्राकृतिक उपचार के रूप में इसके बीज का उपयोग होता हैं। इसके बीज में ऐंटी–इंफ्लेमेटरी, ऐंटी–परजीवी पेरांसीटिक और एनाल्जेसिक गुण मौजूद होते हैं जो पेट दर्द और दाद के संक्रमण का इलाज करने के लिये उपयुक्त है। पपीते की महत्वपूर्ण भारतीय किस्में हैं–पूसा ड्वार्फ, पूसा डेलिसियस, पूसा नन्हा, सी.ओ.–7, सूर्या, अर्का प्रभात आदि।

## अनार

अनार औषधीय तत्वों का एक उत्कृष्ट स्रोत है और खून की कमी के साथ ही मोटापे से संबंधित अनेक बीमारियों का इलाज करता है। अतः इसके सेवन से हृदयरोग और मधुमेह जैसे भयंकर समस्याओं से बचा जा सकता है। मुख्य पोषक तत्व ग्रैनाटिन बी, पुनिकालागिन, पुनिसिक ऐसिड, ऐंटीऑक्सीडेंट विटामिन–सी, नाइट्रेट आदि औषधीय गुण प्रदान करते हैं। अनार के फल की कुल ऐंटीऑक्सीडेंट ताकत उसकी ऑक्सीजन रैडिकल अवशोषण क्षमता (ओ.आर.ए.सी.) 2341 पी.एम.ओ.एल. टी. ई. 100 ग्राम है। अनार की महत्वपूर्ण किस्मों में भगवा, गणेश, अरक्ता, रूबी, मृदुला, ढोलका आदि प्रमुख हैं।

## केला

केला सबसे सस्ता और आसानी से पूरे वर्ष उपलब्ध होने वाले फलों में से एक हैं। देश के अनेक क्षेत्रों में इसकी व्यावसायिक रूप से खेती की जा रही है। इसका एक (100 ग्राम फल) 90 कैलोरी और अच्छी मात्रा में फाइबर, ऐंटीऑक्सीडेंट, खनिज जैसे पोटैशियम (100 ग्राम फल 358 मिलीग्राम पोटैशियम प्रदान करता है) और विटामिन देता है। यह अल्पपोषित बच्चों के लिये बालवाड़ी पोषण योजना में शामिल अनुशंसित पूरक भोजन में से एक है। केला के फल में घुलनशील आहार फाइबर (डी.आर.ए. प्रति 100 ग्राम का 7 प्रतिशत) की एक अच्छी मात्रा होती है जो नियमित रूप से मल त्याग में मदद करती है। इसमें फ्लेवोनॉयड, पॉली–फेनोलिक ऐंटीऑक्सोडेंट जैसे ल्यूटिन, जियासैंथिन, अल्फा और बीटा–कैरोटीन, प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन स्केवेंजर (आर.ओ.एस.) को कम करते हैं। यह विटामिन–बी 6 (पाइरिडोक्सिन) का एक अच्छा स्रोत है जिसकी न्यूरिटिस और एनीमिया के उपचार में उपयोग होता है। मानव शरीर के भीतर होमोसिस्टीन (कोरोनरी धमनी रोग (सीएचडी) और स्ट्रोक के एपिसोड के ट्रिगर कारक) के स्तर को कम करने में केला मदद करता है। ताजे केले में उपलब्ध तांबा, मैग्नीशियम, और मैंगनीज जैसे खनिज हड्डियों को मजबूत बनाने के लिये कारगर है तथा कार्डियक–प्रोटेक्टिव की भूमिका निभाते हैं। इसकी मुख्यतया ग्रैंड नैन, नेन्द्रन, रोबस्ता आदि प्रजातियाँ भारत में उगाई जाती हैं।

## सेब

सेब स्वास्थ्य के प्रति जागरूक लोगों में सबसे लोकप्रिय और पसंदीदा फल है क्योंकि यह समृद्ध फाइटोन्यूट्रिएंट्स से परिपूर्ण होता है। सेब में कम कैलोरी होती है (100 ग्राम–50 कैलोरी) और आहार फाइबर में समृद्ध होने के कारण आँत में खराब कोलेस्ट्रॉल के अवशोषण को रोकने में मदद करता है। 100 ग्राम सेब के फल की कुल ऐंटीऑक्सीडेंट शक्ति (ओ.आर.ए.सी. मूल्य) 5900 टी.ई. है। सेब में कुछ महत्वपूर्ण फ्लेवोनॉयड क्वेरसेटिन, एपिक्टिन, प्रोसीएनिडिन बी 2, टार्टरिक एसिड आदि स्वाद के कारक हैं। सेब का फल बी–कॉम्प्लेक्स विटामिन जैसे राइबोफ्लेविन, थायेमीन और पाइरिडोक्सिन (विटामिन बी–6) का उत्कृष्टम स्रोत है जो ठंडे प्रदेशों की जनता के इष्टतम स्वास्थ्य और कल्याण के लिये वास्तविक अर्थों में अपरिहार्य है। इसकी

प्रमुख प्रजातियाँ हैं, गोल्डेन डेलीसियस, ग्रेनी स्मिथ, परलीन ब्यूटी, ट्रोपिकल ब्यूटी आदि।

## नींबू

नींबू का अनेक स्वास्थ्य लाभकारी पोषक तत्वों से भरे होते हैं। फल के प्रति 100 ग्राम केवल 29 कैलोरी, शून्य संतृप्त वसा या कोलेस्ट्रॉल, आहार फाइबर (आरडीए का 7–36 प्रतिशत), विटामिन–सी (एस्कॉर्बिक एसिड : दैनिक अनुशंसित सेवन का लगभग 88 प्रतिशत) प्रदान करता है। विटामिन 'सी' पानी में घुलनशील प्राकृतिक ऐंटीऑक्सीडेंट है जिसके सेवन से मानव शरीर को संक्रामक एजेंटों के खिलाफ प्रतिरोधक क्षमता विकसित करने में मदद मिलती है और रक्त से हानिकारक तत्वों (प्रो–इंफ्लेमेटरी फ्री रेडिकल्स) को नष्ट करता है। आमतौर पर खट्टे फलों में पाये जाने वाले हेस्पेरेटिन, नारिंजिन और नैरिंगिन फ्लेवोनॉयड ग्लाइकोसाइड का प्रभाव ऐंटी–इंफ्लेमेटरी और प्रतिरोधी क्षमता मॉड्यूलेटर के रूप में होता है। फ्लेवोनॉयड से भरपूर प्राकृतिक फलों के सेवन से शरीर को फेफड़े और मौखिक गुहा के कैंसर से बचाने में मदद भी मिलती है। नींबू की प्रमुख भारतीय किस्में हैं, कागजी, खासी, कुर्ग, किन्नों आदि।

## अमरूद

अमरूद उत्तम पोषक तत्वों से भरपूर और अपने अनूठे स्वाद और स्वास्थ्यवर्धक गुणों से समृद्ध है। यह फल आसानी से नये कार्यात्मक खाद्य पदार्थों की श्रेणी में आता है जिन्हें प्रायः ''सुपर–फ्रूट्स'' के रूप में लेबल किया जाता है। इसमें अनेक महत्वपूर्ण विटामिन, खनिज और ऐंटीऑक्सीडेंट, पॉलीफेनोलिक और फ्लेवोनॉयड तत्व होते हैं जो कैंसर, बुढ़ापे, संक्रमण आदि की रोकथाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह फल घुलनशील आहार फाइबर (5–4 प्रति 100 ग्राम) का एक बहुत समृद्ध स्रोत है। रेशे की मात्रा कोलोन म्यूकोसा को विषाक्त पदार्थों और कोलोन में कैंसर पैदा करने वाले रसायनों को कम करने में मदद करती है। 100 ग्राम ताजे फल इस विटामिन को 228 मिलीग्राम, आवश्यक डीआरआई (दैनिक–अनुशंसित सेवन) से तीन गुना से अधिक है। वैज्ञानिक अध्ययनों से ज्ञात होता है कि विटामिन–सी से भरपूर फलों के नियमित सेवन से मानव शरीर को संक्रामक एजेंटों के खिलाफ प्रतिरोधक क्षमता विकसित करने में मदद मिलती है और कैंसर पैदा करने वाले हानिकारक मुक्त कण कम होते हैं। इसके अलावा, यह शरीर के भीतर कोलेजन संश्लेषण को भी प्रभावित करता है जो रक्त वाहिकाओं, त्वचा, अंगों और हड्डियों की अखंडता को बनाये रखने के लिये आवश्यक है। गुलाबी अमरूद के फल में लाइकोपीन, त्वचा को यूवी किरणों के नुकसान से बचाता है और प्रोस्टेट कैंसर से सुरक्षा प्रदान करता है। यह फल पोटैशियम का बहुत समृद्ध स्रोत है। जो हृदय गति और रक्तचाप को नियंत्रित करने में मदद करता है। इसके अलावा, अमरूद में उपस्थित बी–कॉम्प्लेक्स विटामिन, पेंटोथेनिक एसिड, नियासिन, विटामिन–बी 6 (पाइरिडाइनिन), विटामिन ई और के, साथ ही मैग्नीशियम, तांबा, और मैंगनीज जैसे खनिज भी मानव पोषण के लिए आवश्यक है। मानव शरीर ऐंटीऑक्सीडेंट, एंजाइम, सुपरऑक्साइड डिसम्यूटेज के लिये सह–कारक के रूप में मैंगनीज का उपयोग करता है जबकि लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन के लिये कॉपर की आवश्यकता होती है। भारत में अमरूद की सबसे महत्वपूर्ण किस्में हैं, ललित, इलाहाबादी सफेदा, एल–49, श्वेता, अर्का अमूल्य, अर्का मृदुला आदि।

## जामुन

जामुन कैरोटीन, लौह, फोलिक एसिड, पोटैशियम, मैंगनीज और सोडियम के साथ कम कैलोरी वाला सुस्वादु फल है। इसमें ऐंटीऑक्सीडेंट, फाइटोकेमिकल्स और विटामिन सी के उच्च स्तर होते हैं। जामुन मधुमेह विरोधी विशेषता के लिये आयुर्वेदिक दवाओं में इस्तेमाल किया जाता है और मोटापे से ग्रस्त लोगों के लिये उत्कृष्ट फल है। हाल ही में, इसमें कैंसर और सूजन विरोधी मेटाबोलाइट की जानकारी प्राप्त हुई है। इसकी खेती लाभप्रद है तथा किसानों कों अच्छी आय देने में सक्षम है। गोमा प्रियंका और जामवंत इसकी महत्वपूर्ण किस्में हैं।

## अंगूर

अंगूर पॉलीफेनोलिक फाइटोकेमिकल कंपाउंड रेसवेराट्रॉल से भरपूर होते हैं जिनमें ऐंटी–एलर्जिक, ऐंटी–इंफ्लेमेटरी, ऐंटी–माइक्रोबियल और साथ ही

ऐंटी–कैंसर क्रियाविधि होती है। रेस्वेराट्रोल शक्तिशाली ऐंटीऑक्सीडेंट में से एक है जो बृहदान्त्र और प्रोस्टेट के कैंसर, कोरोनरी हृदय रोग (सीएचडी), अपक्षयी तंत्रिका रोग, अल्जाइमर रोग और वायरल/फंगल संक्रमण के खिलाफ एक सुरक्षात्मक भूमिका निभाने के लिये पाया गया है। इसकी मुख्य किस्मे हैं, पूसा नवरंग, पूसा उर्वशी, पूसा सीडलेस आदि।

## सारांश

भारत में बहुत लोग कुपोषण के तिहरे बोझ से ग्रस्त हैं जो कुपोषण, सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी और अधिक वजन और मोटापे के सह–अस्तित्व से उपजा है। जीवन के पहले 1000 दिनों में अच्छे पोषण को सुनिश्चित करने में असफल होना बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास को नुकसान पहुँचाता है और कुपोषक के स्थायी परिणाम जैसे शारीरिक और मानसिक विकास तथा कम आर्थिक उत्पादकता देश और विश्व के लिये चिंतनीय हैं। अन्य आहार के साथ स्वास्थवर्धक फल की उपलब्धता कुपोषण जैसी समस्या से निवारण दिला सकता है।

फलों की उन्नत प्रजातियों द्वारा खेती लाभकारी और फल उपलब्धता सुनिश्चित करती है, जिससे पौष्टिक आहार की जरूरतें पूरी हो सकती हैं।

## कृषकाय कृषक

सदियों की भूख वो मिटाता रहा।
खुद कम ही निवाले खाता रहा।।
धरती को जो स्वर्ग बनाता रहा।
सब बढ़ते गये वो बढ़ाता रहा।।
वो रहा किसान निर्भीक महान ।
कर्तव्य सदा वो निभाता रहा।।
धरती ही उसकी पूँजी रही।
बारिश रही उसका स्वाभिमान।।
इनमें वो मिलाता श्रम का दान।
उपजाता रहा वो अपना मान।।
वो रहा किसान, सच्चा जवान ।
सदा कृषि की रचना रचाता रहा।।
ये धरा ही उसकी माता रही।
फसलों में ही उसकी आशा रही।।
पशुओं से किया संतान सा प्रेम।
अतिरिक्त न कोई अभिलाषा रही।।
हड्डियों में जान, अद्भुत किसान।
वसुधा की तरह मुस्काता रहा।।
वो है अनन्त, धरती का अंग।
वही है प्रारब्ध, वही है प्रारंभ।।
वो धरती में जीवन जगाता रहा।
उसका जीवन भी धरती में जाता रहा।।
उससे छिनता गया उसका विहान।
क्षत विक्षत हुआ है उसका मान।।
कभी बीज नही, कभी वर्षा नहीं।
सत्ता में उसकी कोई चर्चा नही।।
फिर भी वो खुद को तपाता रहा।
मिट्टी से सोना उगाता रहा।।
वो है किसान, उसका यही काम।
उसने खुद ही चुना है ये विधान।।
जिसने तिनकों मे भी जीवन भरा।
वह तिनका तिनका बिखर रहा।।
जो स्वयं अन्न का पालक रहा।
वो भूख प्यास से सिहर रहा।।
वो हाड़ माँस का ढांचा ही था।
वो जिया वही, वो वहीं मर रहा।।
कतरा कतरा जों सींचता रहा।
कतरे कतरे को वो तरस रहा।।
पग पग में बीज जो बोता रहा।
वही पग पग अपने वो बिसर रहा।।
जो धरती को बोया करता था।
वो खुद धरती में ही भर रहा।।
लोगों की क्षुधा मिटाता रहा।
कृषकाय कृषक कुम्भलाता रहा।।

&f' ko i tw u

# अंजीर की खेती

प्राणनाथ बर्मन[1] एवं नितेश कुमार शर्मा[4]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

## भूमिका

अंजीर अपनी ताजी खपत के लिये दुनिया भर में एक महत्वपूर्ण फसल है। यह उन पौधों में से एक है जिनकी खेती मनुष्य द्वारा सर्वप्रथम की गयी थी। अंजीर के फलों में एक अद्वितीय मीठा स्वाद, नरम और के लिये उपयुक्त होता है इसके फल थोड़े कुरकुरे, खाने योग्य बीजों से लदे होते है। इसके ताजे फल नाजुक होने के कारण बहुत जल्द खराब हो जाते हैं, इसलिए अक्सर उन्हें संरक्षित करने के लिये सुखाया जाता है।

## वानस्पतिक विवरण

अंजीर का वानस्पतिक नाम *फिकस कारिका* है जो शहतूत परिवार (*मोरासीए*) का हिस्सा है। *फिकस कारिका* कार्यात्मक रूप से एकलिंगाश्रयी (नर और मादा प्रजनन अंग अलग–अलग पौधों में पाये जाना) होते हैं। लेकिन आम तौर पर *गायनोडायीसियस* (एक ही प्रजाति के पौधे पर मादा फूल और दूसरे पौधे पर द्विलिंग फूलों का होना) होते हैं। यह चिकनी सफेद छाल वाला एक बड़ा झाड़ी है जो 7–10 मीटर (23–33 फीट) की ऊँचाई तक बढ़ता है। जटिल पुष्पक्रम में एक खोखली गुदगुदा संरचना होती है जिसे साइकोनियम कहा जाता है और जो एक लिंगीय फूलों के साथ पंक्तिबद्ध हैं। अंजीर में खाने वाले हिस्सा को साइकोनियम कहा जाता है। इसमें एक बीज वाले अनेक छोटे–छोटे फल होते हैं जिसे ड्रूपलेट्स कहते है। हरे रंग की त्वचा के साथ फल 3–5 सेंटीमीटर (1.2–2.0 इंच) लंबा होता है जो पकने पर कभी–कभी बैंगनी या भूरे रंग का हो जाता है।

[1]वैज्ञानिक एवं [2]कनिष्ठ शोध सहायक

## उत्पत्ति और विस्तार

अंजीर का पेड़ सामान्यतया पर्णपाती प्रकृति का होता है। यह दक्षिण–पश्चिम एशिया एवं पूर्वी भूमध्य क्षेत्र का मूल फल है। तुर्की, मिस्र, मोरक्को, स्पेन, ग्रीस, अमेरिका, इटली, ब्राजील और आमतौर पर हल्के सर्दियों और गर्म शुष्क ग्रीष्मकाल वाले अन्य स्थान अंजीर के प्रमुख उत्पादक हैं। अंजीर कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात और उत्तर प्रदेश राज्यों में अच्छी तरह से उगाई जाती है।

## स्वास्थ्य और पोषण संबंधी विवरण

अंजीर प्राकृतिक शर्करा, घुलनशील फाइबर और पोटैशियम, कैल्सियम, मैग्नीशियम, लोहा और ताँबा सहित अनेक खनिजों में समृद्ध है। वे प्रतिउपचायक, विटामिन 'ए' और 'के' का भी अच्छा स्रोत है जो स्वास्थ्य के लिये लाभदायक है। 100 ग्राम सूखे अंजीर में लगभग 209 कैलोरी, 3.3 ग्राम प्रोटीन, 1.5 ग्राम वसा, 48.6 ग्राम कार्बोहाइड्रेट तथा 9.2 ग्राम फाइबर होता है जबकि 100 ग्राम ताजे अंजीर में लगभग 43 कैलोरी, 1.3 ग्राम प्रोटीन, 0.3 ग्राम वसा, 9.5 ग्राम कार्बोहाइड्रेट तथा 2.0 ग्राम फाइबर प्रदान करता है। प्रायः आँत की पोषण देने के लिये अंजीर के फलों की सिफारिश की जाती है और उनमें अधिक फाइबर की वजह से वे एक प्राकृतिक रेचक औषधि के रूप में कार्य करते हैं। फलों में प्रोबायोटिक भी होते हैं जो आँत में पहले से मौजूद अच्छे जीवाणुओं को सहारा देने

में मदद करते है जिससे पाचन में सुधार होता है। अंजीर के फल रक्तचाप को नियंत्रित करने में भी सहायक होते हैं और वजन प्रबंधन पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। इसके फल चकत्तेदार अधःपतन के खिलाफ भी संभावित सुरक्षा कर सकते हैं। अंजीर की पत्तियों में मधुमेह रोधी गुण पाये गये हैं जो वास्तव में मधुमेह वाले व्यक्तियों की आवश्यक इंसुलिन की मात्रा को कम कर सकते हैं जिन्हें इंसुलिन इंजेक्शन की आवश्यकता होती हैं। पत्तियों में ट्राइग्लिसराइड्स (जिस रूप में वसा रक्तप्रवाह में प्रवाहित होते हैं) को कम करने की क्षमता होती है।

## किस्में

Gy 8 fe'ku %काली–बैंगनी त्वचा और गुलाबी रंग का गूदा।

Dn ksr k %हरी त्वचा और बैंगनी रंग का गूदा।

fDy fejuk %हरी–पीली त्वचा और गहरा पीला रंग का गूदा।

c ksmu r qdhZ%बैंगनी त्वचा और लाल गूदा।

v fæ; kfVd %यह सबसे अधिक अंजीर बार (अंजीर केक) बनाने के लिये इस्तेमाल किया जाता है जिसमें हल्की हरी त्वचा और गुलाबी गूदा होती है।

i wk %यह भारत में ताजे फलों की सेवन के लिये सर्वाधिक लोकप्रिय किस्म है।

## जलवायु

अंजीर का पौधा पर्णपाती और उपोष्णकटिबंधीय फलदार वृक्ष होने के नाते गर्मी के अधिक तापमान धूप तथा संयत सिंचाई वाले क्षेत्र को पसंद करता है। अंजीर के पौधों और फलों के विकास के लिये कम–से–कम आठ घंटे की प्रत्यक्ष धूप की आवश्यकता होती है। अंजीर की खेती के लिये समुद्र तल से अधिक ऊँची क्षेत्र (1500–1700 मीटर की ऊँचाई) सबसे आदर्श है। पेड़ 15–21 डिग्री सेल्सियस तापमान पर सबसे अच्छा बढ़ता है। फलों के विकास और परिपक्वता अवस्था के समय गर्म शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में गुणवत्ता वाले अंजीर प्राप्त किये जा सकते हैं। कम तापमान और उच्च आर्द्रता से फलों का विभाजन और फल की कम गुणवत्ता होती है।

## मृदा

अंजीर का पौधा रेतीली चिकनी दोमट मिट्टी में सबसे अच्छा उगाया जा सकता है। यह सबसे सूखा और नमक सहिष्णु फसल है। अंजीर के पौधों को उगाने के लिये आदर्श पी.एच. मान 6.0–8.0 होता है। 1 से 1.5 मीटर की गहरी मिट्टी पौधों की वृद्धि के लिये अच्छी होती है।

## वंश–वृद्धि

अंजीर के वंश–वृद्धि के लिये सख्त टहनियों की कटाई सर्वाधिक उपयोग की जाने वाली विधि है। बसंत के मौसम में पेड़ों में कली निकलने से पहले कम–से–कम 2–3 साल पुराने सख्त टहनियों से कटाई कर लेनी चाहिए। कटे हुए टहनियों से जड़ निकलने के लिये प्रेरित करने वाले पौध वृद्धि नामक रसायन जैसे 2500 पीपीएम इन्डोल–3–ब्यूटिरिक एसिड (आई.बी.ए.) और 2500 पीपीएम नेफ्थलीन एसिटिक एसिड (एन.ए.ए.) के मिश्रण से टहनियों का उपचार किया जाना चाहिए। तत्पश्चात, इन टहनियों को मुख्य खेत में प्रत्यारोपित करने से पहले लगभग 12–15 महीने तक नर्सरी में उगाया जाता है जिससे इन टहनियों से जड़ें विकसित हो सकें।

## वृक्षारोपण

सामान्यतया अंजीर के 150 पौधे प्रति एकड़ के हिसाब से वर्ग प्रणाली में पौध–से–पौध 5 मीटर की दूरी पर लगाये जाने चाहिए। लगभग 0.6 मीटर व्यास और 0.6 मीटर गहरे गड्ढे खोद कर अंजीर के वृक्षों को लगाना चाहिए। अंजीर की खेती के लिये रोपण का सबसे अच्छा मौसम जून से सितंबर का होता है।

## खाद और उर्वरक

| l ky | [ kqj kd ¼fd y ks@ i kS/k@ o"kZ½ | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | Q ke Z {ks= d h [ kkn | u he d h [ ky h | u kb V ªkt u | Q ,LQ kj l | i kSV S'k; e |
| पहला | 25 | 0.50 | 0.060 | 0.040 | 0.040 |
| दूसरा | 25 | 0.50 | 0.120 | 0.080 | 0.080 |
| तीसरा | 25 | 1.00 | 0.180 | 0.120 | 0.120 |
| चौथा | 30 | 1.50 | 0.240 | 0.160 | 0.160 |
| पाँचवाँ साल और उसके बाद | 35 | 2.00 | 0.300 | 0.200 | 0.200 |

## सिंचाई

गर्मी में 3–4 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करना अनिवार्य होता है। अंजीर के सर्वोत्तम उत्पादन के लिये टपक सिंचाई पर विचार किया जाना चाहिए। हर पौधे में प्रति दिन 15–20 लीटर पानी देने की सलाह दी जाती है।

## काट-छाँट

अंजीर का पेड़ एक वर्ष में दो फसलें देता है। पिछले साल की टहनियों पर पहली फसल तथा वर्तमान मौसम की नयी टहनियों पर दूसरी फसल होती है। कुसुमित टहनियों की वृद्धि को प्रेरित करने के लिये काट–छाँट आवश्यक होता है। अंजीर के पेड़ की छँटाई का सबसे अच्छा समय सर्दियों का मौसम होता है जब पेड़ निष्क्रिय स्थिति में होते हैं। उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में अंजीर आमतौर पर एक तने वाले पेड़ के रूप में उगाये जाते हैं। शीतोष्ण जलवायु में, अंजीर को बहु–तना वाले घड़ा–आकार पेड़ों के रूप में पाये जाना आम है। अंजीर के वृक्षों का वितान आवरण 15 मीटर तक पहुँच सकता है जब उन्हें स्वाभाविक रूप से बढ़ने दिया जाती है। इसलिए वृक्षों का फैलाव को अनेक प्रकार से प्रबंधित किया जा सकता है।

### 1. पेड़ का आकार

अंजीर के पौधों के प्राथमिक अंगों तथा फलदार शाखाओं में पोषक तत्वों के अविरल प्रवाह के लिये पौधों को 1 मीटर की ऊँचाई तक बिना शाखा के बढ़ने दिया जाना चाहिए और फिर मुख्य तने को ऊपर से काटना चाहिए। 3–4 प्राथमिक शाखाओं का चयन करें और मुख्य तने से 45–60 डिग्री के कोण पर उनकी ढांचा तैयार करें। एपिकल डोमिनन्स (वृक्ष का शीर्ष भाग के विकास के प्रभाव से निचली शाखाओं की वृद्धि में अवरोध) को हटाने तथा पार्श्विक शाखाओं की विकास को प्रेरित करने के लिये प्राथमिक शाखाओं को 24 इंच की लंबाई पर छँटाई करनी चाहिए। मुख्य तने से निकले सहायक शाखाओं को चुनकर 8 इंच की अंतराल पर अलग करना चाहिए जिससे हर शाखाओं के बीच 2 या अधिक गांठ यानि नोड्स मौजूद हो। सहायक शाखाओं से निकले फलने वाली शाखाओं की वृद्धि के लिए 8 इंच की अंतराल पर फैलाया जाना चाहिए। अगले मौसम में फलने वाली शाखाओं को शीर्ष भाग से लेकर उनकी एक वर्ष पुरानी कलियों (2 नोड्स) तक छँटाई की जाती है।

### 2. एस्पालियर का आकार

पौधों के चयनित मुख्य शाखाओं को ऊर्ध्वाधर बढ़ने दिया जाता है जब तक कि वे वांछित लंबाई या कम–से–कम 6 फीट लंबे न हों। तब वे फिर कई दिनों से 2 सप्ताह तक क्षैतिज स्थिति में उतारे जाते हैं। फलदार शाखाएँ मुख्य शाखाओं के वैकल्पिक दिशा में 8 इंच के अंतराल पर रखे जाते है। अगले मौसम में फलने के लिये फलने वाली शाखाओं को शीर्ष भाग से लेकर एक वर्ष पुरानी कलियों (2 नोड्स) तक छँटाई की जाती है।

### 3. पंखा का आकार

दीवार के खिलाफ पंखे के आकार के रूप में बनाने के लिये फरवरी में दोनों शूट से लगभग एक तिहाई काट दिया जाता है। दीवार में अंजीर का पेड़ को पंखे के आकार देने के लिये भूमि–सतह से दो मुख्य तने को बढ़ने दी जाती है और फरवरी में दोनों तने से लगभग एक तिहाई भाग काट दिया जाता है जिससे हर तना पर मात्र एक ही कली रहे। प्रत्येक तने पर 30 सेंटीमीटर के अंतराल पर चार टहनियाँ विकसित होने दें और पौधे को पंखे के आकार जैसा तैयार करें। इन पौधों में उन सब कलियों को हटा दें जो सीधे अंदर की ओर दीवार से दूर जाने का इशारा कर रहे हैं।

### 4. ठूंठ छँटाई पद्धति

युवा पेड़ों को चार मुख्य शाखाओं को उत्पादन के लिये तैयार कर लगभग क्षैतिज रूप से बढ़ने के लिये बाँधा जाता है। नयी टहनियों को क्षैतिज शाखाओं से लंबवत बढ़ने दी जाती है। हर साल, नये विकास को छोटे ठूंठ तक काट दिया जाता है।

### 5. झाड़ी का आकार

गमला में एक मुक्त खड़े झाड़ी का उत्पादन करने के लिये, सर्दियों में मिट्टी की सतह से लगभग 65–75 सेंटीमीटर पर एक कली के ठीक ऊपर से काटना चाहिए। सर्दियों के बाद ढांचा बनाने के लिए चार या पाँच शाखाओं का चयन करें और इन्हें एक तिहाई से छँटनी कर लें। अन्य सभी पार्श्व टहनियाँ हटा दी जाती हैं। अगले वर्ष ये

आधे हिस्से तक काटे जाते हैं। ढाँचे तैयारी करते समय किसी भी अनावश्यक टहनियों को चार कलियाँ तक काटी जाती हैं। वसंत की शुरुआत में पौधे सुषुप्त होने पर हर दूसरे वर्ष 30–37 सेंटीमीटर आकार के गमले में इन्हे दुबारा लगाये। एक रेशेदार जड़ प्रणाली को प्रोत्साहित करने के लिये जड़ के चारों ओर मिट्टी को भुरभुरा करें।

### 6. खुली घड़ा का आकार

इस प्रणाली में आमतौर पर चार या पाँच संरचनात्मक शाखाएँ होती हैं। यह वृक्षों का वितान आवरण का फैलाव के प्राकृतिक विकास को प्रोत्साहित करता है। जब इसे छोटा और खुला रूप देने के लिये काट–छाँट किया जाता है तो यह पेड़ के विकास और आकार को नियंत्रित करता है।

## रोग

### 1. फलों के सतह सड़ना

यह *अल्टरनेरिया* प्रजाति के कारण होता है। छोटे पानी से लथपथ क्षेत्र फलों की सतह पर दिखायी देते हैं। कवक सर्दियों में पौधे के मलबे में रहते है। अतिपक्व होने से पहले फलों के तुड़ाई कर लेने से यह रोग को कम किया जा सकता है।

### 2. टहनी में ब्लाइट नामक रोग

यह *बोट्राइटिस सिनेरिया* नामक कवक के कारण होता है। संक्रमित टहनियों पर पत्ते मुरझा जाते है एवं हल्का हरा या भूरा रंग का हो जाते है। इस बीमारी का उद्भव गीले, ठंडे वसंत में होता है। पेड़ों के संक्रमित क्षेत्रों को शुरुआत में ही काट दिया जाना चाहिए।

### 3. अंजीर मोजेक विषाणु

इस संक्रमण से पत्तियों पर पीले धब्बे हो जाते हैं। यह रोग अंजीर के पेड़ में *असेरिया फिसी* नामक घुन अर्थात् माइट से फैलता है। यह कीट कलियों और युवा पत्तियों को क्षति पहुँचाता है। यह रोग संक्रमित पेड़ पर कलम बांधने से भी फैलता है। संक्रमित पौधों को नष्ट करें और रोग मुक्त स्वस्थ पौधे खरीदें। कलम बांधने को उपकरणों को उपयोग से पहले कीटाणुरहित करने के लिये 70 प्रतिशत आइसोप्रोपाइल अल्कोहल का प्रयोग करें। माइट का प्रबंधन के लिये 1 लीटर पानी में 2.5 मिलीलीटर डाइकोफॉल 18.5 ईसी घोलकर कीट से प्रभावित पेड़ों पर छिड़काव करना चाहिए।

### 4. अंजीर के पेड़ में जंग

यह *सेरोटेलियम फिसी* के कारण होता है। पत्तियों की ऊपरी सतह पर पीले धब्बे दिखायी देते है जो बाद में बढ़ जाते हैं, और लाल भूरे रंग के हो जाते है। इसे डाइथेन एम–45, 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के छिड़काव द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है।

## कीट

अंजीर वृक्ष के प्रमुख कीट अंजीर के भृंग (*कोटिनीस निटिडा*), फल–मक्खी (*जैप्रियोनस इंडियानस*) और तना भेदक (*बैटोसेरा रूफोमैकुलेटा*) हैं। गर्मियों में अंजीर के पेड़ों में ऑर्गनोफॉस्फेट का उपयोग से भृंग के अंडे और युवा लार्वा मर जाते हैं। नियोनिकोटिनोयडस (निकोटीन से प्राप्त कीटनाशक) का भी सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है। भृंग के लार्वा को बड़े पैमाने पर प्राकृतिक शत्रु *बेसिलस पॉपिलिया* जीवाणु द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

फल–मक्खी के नियंत्रण के लिये सबसे सुरक्षित एवं सरल उपाय मिथाइल यूजीनॉल ल्यूर और क्यूलूर फेरोमोन ट्रेप को खेत में जगह–जगह डिब्बे में टांग दें। इन डिब्बों में फेरोमोन गंध से नर फल मक्खी एकत्रित होकर नष्ट होती रहती है। एक बीघा में छह डिब्बे लगाये जाते हैं जिनके ल्यूर 30–40 दिन में बदलते हैं।

तना भेदक कीट के नियंत्रण हेतु अंजीर के बागों को साफ–सुथरा रख कर संस्तुत कृषि तकनीकियों का उपयोग करना चाहिए। लोहे के तार/हुक से प्रभावित छिद्रों से कीटों को यांत्रिक रूप से हटाना चाहिए। छिद्रों को साफ कर तथा क्लोरपायरीफॉस 2.0 मिलीलीटर/लीटर के घोल से रूई के फाहे को भिंगो कर छिद्र में डाल कर छिद्र को मिट्टी के लेप से बन्द कर दें जिससे रसायन की गैस प्रभावी हो सकें।

## अंजीर की खेती में वृद्धि नियामक का प्रयोग

अंजीर की खेती करने के लिये फलों की गिरावट को रोकने तथा पौधे की अच्छी वृद्धि को बढ़ावा देने के

लिये जिब्रेलिक एसिड जैसे वृद्धि नियामक का उपयोग करें जिसे 30 मिलीलीटर की दर से 1 लीटर पानी में घोलकर बनाया जाता है।

## तुड़ाई

सामान्यतया पेड़ रोपण के दूसरे वर्ष से ही फल देने लगते हैं। हालाँकि व्यावसायिक तुड़ाई तीसरे वर्ष से की जा सकती है। पौधे का जीवनकाल लगभग 30–35 वर्ष का होता है। फल तुड़ाई का मौसम फरवरी–मार्च में शुरू होता है और मई–जून तक खत्म हो जाता है। फल तब तुड़ाई के लिये तैयार होता है जब वह भूरे–लाल रंग का हो कर नीचे लटक जाता है, छिलके में दरार पड़ती है या फल के तल पे पराग की एक बूंद जैसा दिखायी देता है।

## उपज

आठवें वर्ष से, पौधे की उपज लगभग 18 किलोग्राम प्रति पेड़ होती है।

## भंडारण

अंजीर नाजुक होने के कारण जल्दी खराब हो जाते हैं और इसलिए आमतौर पर खरीद के बाद एक से दो दिनों के भीतर खाये जाते हैं। फलों की त्वचा की मोटाई के साथ–साथ व्यक्तिगत पसंद के आधार पर भी अंजीर का सेवन या तो छिलका उतार कर या बिना छीले भी किया जा सकता है। चूँकि पके अंजीर के अंदरूनी हिस्से नरम और चिपचिपे होते है अतः उन्हें काटना मुश्किल हो सकता है।

## 'कृष्ण की चेतावनी'

मैत्री की राह बताने को,
सबको सुमार्ग पर लाने को,
दुर्योधन को समझाने को,
भीषण विध्वंस बचाने को,
भगवान् हस्तिनापुर आये,
पांडव का संदेशा लाये।

'दो न्याय अगर तो आधा दो,
पर, इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पाँच ग्राम,
रक्खो अपनी धरती तमाम।

हम वहीं खुशी से खायेंगे,
परिजन पर असि न उठायेंगे!
दुर्योधन वह भी दे ना सका,
आशिष समाज की ले न सका,
उलटे, हरि को बाँधने चला,
जो था असाध्य, साधने चला।

जब नाश मनुज पर छाता है,
पहले विवेक मर जाता है।
हरि ने भीषण हुंकार किया,
अपना स्वरूप–विस्तार किया,
डगमग–डगमग दिग्गज डोले,
भगवान् कुपित होकर बोले–
'जंजीर बढ़ा कर साध मुझे,
हाँ, हाँ दुर्योधन! बाँध मुझे।

यह देख, गगन मुझमें लय है,
यह देख, पवन मुझमें लय है,
मुझमें विलीन झंकार सकल,
मुझमें लय है संसार सकल।
अमरत्व फूलता है मुझमें,
संहार झूलता है मुझमें।

'उदयाचल मेरा दीप्त भाल,
भूमंडल वक्षस्थल विशाल,
भुज परिधि–बन्ध को घेरे हैं,
मैनाक–मेरु पग मेरे हैं।
दिपते जो ग्रह नक्षत्र निकर,
सब हैं मेरे मुख के अन्दर।

'दृग हों तो दृश्य अकाण्ड देख,
मुझमें सारा ब्रह्माण्ड देख,
चर–अचर जीव, जग, क्षर–अक्षर,
नश्वर मनुष्य सुरजाति अमर।
शत कोटि सूर्य, शत कोटि चन्द्र,
शत कोटि सरित, सर, सिन्धु मन्द्र।

'शत कोटि विष्णु, ब्रह्मा, महेश,
शत कोटि जिष्णु, जलपति, धनेश,
शत कोटि रुद्र, शत कोटि काल,
शत कोटि दण्डधर लोकपाल।
जञ्जीर बढ़ाकर साध इन्हें,
हाँ–हाँ दुर्योधन! बाँध इन्हें।

*–रामधारी सिंह 'दिनकर'*

# न्यूनतम प्रसंस्करण के द्वारा फल एवं सब्जियों का मूल्यवर्धन

पवन सिंह गुर्जर[1] एवं डी. के. शुक्ल[2]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

भारत के महानगरों में शिक्षित तथा नौकरी पेशा लोगों के पास घरेलू कार्य के लिये समयाभाव है। ऐसे उपभोक्ताओं के बीच ताजे एवं स्वास्थ्यवर्धक संरक्षित खाद्य पदार्थों की माँग लगातार बढ़ रही है। परंपरागत खाद्य संरक्षण की तकनीकों में मुख्यतः उच्च तापमान का प्रयोग होता है जिसके कारण खाद्य पदार्थ और गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और उनकी ताजगी समाप्त हो जाती है। हाल ही में, न्यूनतम प्रसंस्करण की तकनीकें विकसित की गयी हैं जिनके माध्यम से फलों तथा सब्जियों को हल्के संरक्षकों का प्रयोग कर संरक्षित किया जाता है। इन तकनीकों से फलों तथा सब्जियों का ताजापन, उच्च गुणवत्ता तथा मूल रूप बरकरार रहता है। साथ ही, इनके प्राकृतिक स्वाद पर भी अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। विकसित देशों में न्यूनतम प्रसंस्कृत उत्पादों की माँग अत्यधिक है, परन्तु हाल ही में इन उत्पादों की माँग भारत में भी बढ़ी है।

## न्यूनतम प्रसंकरण क्या है?

न्यूनतम प्रसंस्करण को अलग-अलग विशेषज्ञों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। लुईस वेल्ड (1996) के अनुसार न्यूनतम प्रसंस्करण प्रक्रियाएँ वह है जो खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता पर कम-से-कम प्रभाव डाले। साथ ही वितरण एवं भंडारण में उसकी भंडारण क्षमता पर्याप्त रखती है। फेलो (2000) के अनुसार न्यूनतम प्रसंस्करण तकनीकें खाद्य पदार्थों को संरक्षित रखने के साथ-साथ उनके पोषक गुणवत्ता एवं स्वाद को भी बरकरार रखती हैं। न्यूनतम प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद में 'रेडी टु कुक' तथा 'रेडी टु ईट' पैक किये गये फल तथा सब्जियाँ सम्मिलित हैं जिनको रेफ्रीजरेटर या शीतगृह में भंडारित कर रखा जाता है।

[1]वैज्ञानिक एवं [2]सहा. मुख्य तक. अधिकारी

## न्यूनतम प्रसंस्करण का भविष्य

- वर्तमान समय में एकल परिवार समय की कमी के कारण 'रेडी टु कुक' तथा 'रेडी टु ईट' पैक किये हुए फलों तथा सब्जियों को प्राथमिकता दे रहे हैं।
- खुदरा विपणन कंपनियाँ जैसे बिग बाजार, इजी डे इत्यादि न्यूनतम प्रसंस्कृत उत्पादों के वितरण तथा खुदरा विपणन में रुचि दिखा रही हैं।
- न्यूनतम प्रसंस्कृत उत्पादों विशेषकर सब्जियों के विक्रय से लघु किसानों को लाभ होगा क्योंकि इससे उन्हें अपने उत्पाद का एक निश्चित मूल्य मिलता रहेगा तथा बाजार के अनुसार मूल्य में परिवर्तन नहीं होगा।
- फलों तथा सब्जियों का न्यूनतम प्रसंकरण करने से तुड़ाई उपरांत कम क्षति होगी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर भी सृजित होंगे।

## फल एवं सब्जी के न्यूनतम प्रसंस्करण के लिये मुख्य आवश्यकताएँ

- उच्च गुणवत्ता युक्त फल/सब्जी (सही प्रजाति का चयन, अच्छी उत्पादन तकनीक का उपयोग, सही समय पर तुड़ाई एवं भंडारण)।
- प्रसंस्करण से पूर्व उत्पाद की सफाई के लिये सूक्ष्म जीवों तथा भारी धातु रहित एवं उचित पी.एच. मान वाले पानी का उपयोग करना चाहिए।
- फलों एवं सब्जियों की सतह को सूक्ष्म जीवों से मुक्त करने के लिये हल्के निसंक्रामकों का प्रयोग करना चाहिए।
- फलों एवं सब्जियों को छीलने से पहले तथा बाद में सावधानीपूर्वक सफाई करनी चाहिए।
- न्यूनतम प्रसंस्करण की प्रक्रियाओं के दौरान कम तापमान (5-10 डिग्री सेल्सियस) रखना चाहिए।
- साफ-सफाई तथा उचित प्रसंस्करण तकनीक के साथ

प्रत्येक बिन्दु पर उचित देखभाल (एच.ए.सी.सी.पी.) का पालन करना।

- वितरण एवं विपणन के दौरान सही आर्द्रता तथा तापमान रखनी चाहिए।
- उचित पैकेजिंग सामग्री तथा पैकेजिंग विधि का प्रयोग करना चाहिए।

## न्यूनतम प्रसंस्कृत उत्पादों की गुणवत्ता एवं स्वजीवन को प्रभावित करने वाले कारक

न्यूनतम प्रसंस्कृत फलों एवं सब्जियों की गुणवत्ता एवं उनका स्वजीवन बहुत से कारकों पर निर्भर करता है जिसमें तुड़ाई पूर्व तथा उपरांत प्रबंधन कार्य सम्मिलित है। तुड़ाई पूर्व कार्यों में फल/सब्जी की किस्म का चयन, कीट तथा रोग नियंत्रण, सिंचाई तथा पोषक तत्व प्रबंधन, तुड़ाई का समय तथा तुड़ाई विधि सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त तुड़ाई उपरांत विशेष कारकों में फल एवं सब्जियों को धोने में प्रयुक्त पानी की गुणवत्ता, प्रसंस्करण तकनीक, पैकेजिंग सामग्री एवं विधि, परिवहन, भंडारण, वितरण एवं विक्रय के दौरान तापमान सम्मिलित हैं।

## न्यूनतम प्रसंस्करण के लिये उपयुक्त फल एवं सब्जियाँ

न्यूनतम प्रसंस्करण के लिये ऐसे फल एवं सब्जियाँ उपयुक्त होती हैं जिनकी तुड़ाई के बाद सीधा खाने या पकाने में समस्या हो तथा उनको उपयोग के योग्य बनाने में समय एवं श्रम लगता हो। न्यूनतम प्रसंस्करण के लिये उपयुक्त फलों एवं सब्जियों का उल्लेख तालिका 1 में किया गया है।

| | |
|---|---|
| फल | अनन्नास, पपीता, अनार, संतरा, सेब इत्यादि। |
| सब्जी | मटर, कटहल, करेला, पत्तागोभी, फूलगोभी, गाजर, शलजम, लहसुन, प्याज, पत्तेदार सब्जियाँ, चुकंदर इत्यादि। |

## फलों एवं सब्जियों के न्यूनतम प्रसंस्करण के लिये आवश्यक उपकरण

फलों एवं सब्जियों के न्यूनतम प्रसंस्करण में निम्नलिखित उपकरण प्रयुक्त होते हैं। तैयार मेज, प्लास्टिक क्रेट्स, धुलाई इकाई, छिलना, डाइसिंग एवं स्लाइसिंग मशीन, प्री–ट्रीटमेंट चैंबर, हॉट एयर ड्रायर, पाउच सीलिंग मशीन, मोडीफाइड एटमोसफेरिक पैकेजिंग मशीन, शीत गृह।

## फल एवं सब्जियों के न्यूनतम प्रसंस्करण की प्रक्रिया

न्यूनतम प्रसंस्करण के दौरान अनेक प्रक्रियाएँ की जाती हैं जिसके कारण प्रत्येक प्रक्रिया में उत्पाद के संक्रमित होने की संभावना बढ़ जाती है। इसलिए उत्पाद को खराब होने से बचाने के लिये प्रत्येक प्रक्रिया में साफ–सफाई तथा उचित तापमान सुनिश्चित रखने पर विशेष ध्यान दिया जाता है। फलों/सब्जियों के न्यूनतम प्रसंस्करण की सामान्य प्रक्रिया तथा प्रत्येक स्तर पर अनुशंसित अधिकतम तापमान को तालिका एक में दर्शाया गया है।

| Øe la[;k | çfØ;k | vuq'kafl r vfèkdre rkieku ¼fMxzh lsfYl;l½ |
|---|---|---|
| 1. | तुड़ाई | 25–30 |
| 2. | प्रसंस्करण इकाई तक ढुलाई | 10 |
| 3. | प्री–कूलिंग | 5 |
| 4. | ग्रेडिंग | 10 |
| 5. | समूचे फल/सब्जी की धुलाई | 10 |
| 6. | कूलिंग | 5 |
| 7. | काट–छाँट | 10 |
| 8. | विसंक्रमण धुलाई | 5 |
| 9. | धुलाई | 5 |
| 10. | सतह से पानी सुखाना | 10 |
| 11. | पैकेजिंग | 10 |
| 12. | शीत भंडारण | 2–5 |
| 13. | ढुलाई | 5 |
| 14. | विपणन | 5 |
| 15. | उपभोक्ता | 5 |

न्यूनतम प्रसंस्करण में निम्नलिखित प्रक्रिया शामिल हैं।

### 1. कच्चे उत्पाद की धुलाई

न्यूनतम प्रसंकरण में सर्वप्रथम समूचे फल/सब्जी को साफ पानी से अच्छे से धोते हैं जिससे उसकी सतह पर लगी हुई मृदा, कीटनाशकों के अवशेष, कीट एवं अन्य बाहरी तत्व निकल जाते हैं और एंजाइम अभिक्रिया

द्वारा रंग परिवर्तन होने की प्रक्रिया रुक जाती है। इसके लिये नल का पानी या सोडियम या कैल्सियम हाइपो क्लोराइट का घोल प्रयोग किया जाता है। फलों की सतह के विसंक्रमण के लिये मुख्यतः सोडियम हाइपो क्लोराइट का उपयोग किया जाता है। प्रसंस्करण के दौरान प्रयुक्त होने वाले धातु के उपकरणों को क्षरण से बचाने के लिये सोडियम हाइपो क्लोराइट के घोल का पी.एच. मान 6 से 7.5 के बीच में होना चाहिए।

## 2. फलों एवं सब्जियों को छीलना एवं काटना

यह प्रक्रिया उत्पाद की गुणवत्ता तथा उसका क्षय करने वाले सूक्ष्मजीवों से बचाने के लिये अति महत्वपूर्ण है। इस प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वाले उपकरण स्वच्छ, निर्जर्मीकृत एवं धारदार होने चाहिए। साथ ही, इनकी समय–समय पर उचित देखभाल होनी चाहिए जिससे उत्पाद में इन उपकरणों के माध्यम से कोई संक्रमण नहीं हो। छीलने के लिये विभिन्न मशीनें उपलब्ध हैं। जिस फल या सब्जी को छीलना है उसके छिलके की मजबूती के अनुसार मशीनों में परवर्तन किया जाता है।

## 3. धुलाई एवं विसंक्रमण

धुलाई एवं विसंक्रमण ही एकमात्र प्रक्रिया है जिससे उत्पाद में रोगकारक जीवाणु एवं अन्य सूक्ष्म जीवों की कमी आती है। धुलाई तथा निर्जर्मीकरण 50 पी.पी.एम. क्लोरीन के घोल जिसकी पी.एच. मान 6.5 से 7.5 के मध्य हो की फुहार लगाकर या टैंक में डुबाकर किया जाता है। इस घोल का तापमान 5 से 10 डिग्री सेल्सियस होना चाहिए।

## 4. सतह से पानी सुखाना

अगली महत्वपूर्ण प्रक्रिया है उत्पाद की सतह से पानी को सुखाना। गीली सतह को सावधानीपूर्वक सुखाना चाहिए जिससे उत्पाद के ऊतकों को क्षति नहीं हो, उत्पाद की आंतरिक नमी कम नहीं एवं कोशिकायों से रिसाव नहीं हो क्योंकि उत्पाद की बाहरी सतह पर नमी कीटाणु की वृद्धि में सहायक होती है। इस प्रक्रिया में मुख्यतः एयर ड्रायर का उपयोग किया जाता है।

## 5. पैकेजिंग

न्यूनतम प्रसंस्कृत फल तथा सब्जियों की पैकिंग के लिये मोडीफाइड एटमोसफेरिक पैकेजिंग का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार की पैकेजिंग में ऐसी पैकिंग सामग्री का उपयोग किया जाता है जिसकी पारगम्यता ऑक्सीजन तथा कार्बन डाइऑक्साइड गैस के लिये भिन्न–भिन्न होती है जिसके कारण पैकिंग के अंदर इन गैसों का अनुपात सामान्य स्थिति की तुलना में बदल जाता है। गैसों का बदला हुआ अनुपात उत्पाद की श्वसन दर को प्रभावित कर ऑक्सीकरण क्रिया को कम करता है। साथ ही, यह ऑक्सीजन जीवी सूक्ष्म जीवों की वृद्धि को भी रोकता है।

फलों तथा सब्जियों के न्यूनतम प्रसंस्करण में शामिल प्रक्रियाओं को संक्षिप्त में फ्लोचार्ट के माध्यम से चित्र 1 में दर्शाया गया है।

*चित्र 1 : न्यूनतम प्रसंस्कृत सब्जियाँ*

# एफ.एस.एस.ए.आई. द्वारा प्रस्तावित डिब्बाबंदी के नये नियम

ए. के. भट्टाचार्जी[1] एवं प्रदीप कुमार शुक्ल[2]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

दो अप्रैल, 2018 को अधिसूचित अधिसूचना के माध्यम से एफ.एस.एस.ए.आई. (भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण) ने खाद्य सुरक्षा और गुणवत्ता (डिब्बाबंदीकरण) अधिनियम 2018 प्रस्तावित किया। साथ ही एफ.एस.एस.ए.आई. ने हितधारकों से टिप्पणियाँ और सुझाव भी आमंत्रित किये हैं। ये मसौदे नियम केवल आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन की तारीख (1 जुलाई, 2019) से लागू होंगे।

## परिभाषा

- "अधिनियम" मतलब खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम, 2006 (2006 का अधिनियम 34)।
- "खाद्य श्रेणी" (फूड ग्रेड) का अर्थ उन पदार्थों से होता है जो सुरक्षित और उपयुक्त होने के साथ–साथ मानव स्वास्थ्य को खतरे में नहीं डालेंगे और भोजन या ऑर्गेनोलेप्टिक विशेषताओं की संरचना में परिवर्तन नहीं करेंगे।
- विभिन्न परतों वाली डिब्बाबंदी से तात्पर्य है कि खाद्यों की डिब्बाबंदी के लिये बनाये जाने वाले डिब्बे/पेटियाँ दो या दो से अधिक परतों वाली विभिन्न प्रकार के डिब्बाबंदी के लिये अनुमोदित पदार्थों से हुआ हो।
- सम्पूर्ण माइग्रेशन सीमा का अर्थ है कि अवाष्पशील पदार्थों की उच्चतम अनुमोदित मात्रा तक खाद्यों को नहीं भरकर डिब्बे में कुछ स्थान छोड़ देना।
- पेटी/पात्र का मतलब बोतलों, टिन, बैरल, बक्सा, पाउच, पात्र, धारक, बोरा, थैला, आवरण आदि ऐसे पदार्थों या वस्तुओं से है जिनमें खाद्यों को सुरक्षित रखा जा सकता हो।
- डिब्बाबंदी पदार्थ का मतलब ऐसे पदार्थों से है जिनका उपयोग खाद्यों या उनके उत्पादों की डिब्बाबंदी करने वाले पात्रों को बनाने के लिये किया जाता है, जैसे – गत्ता, कागज, काँच, धातुएँ, प्लास्टिक झिल्ली, विभिन्न परतों वाले पात्र, डिब्बाबंदी के माध्यम (तरल या गैस) आदि।
- प्राथमिक खाद्य डिब्बाबंदी से तात्पर्य है कि खाद्य पदार्थ सीधे डिब्बे को बनाने वाले पदार्थों के संपर्क में है।
- द्वितीयक खाद्य डिब्बाबंदी का मतलब है कि खाद्य पदार्थ की प्राथमिक डिब्बाबंदी करने के पश्चात द्वितीयक डिब्बाबंदी करना और डिब्बे को बनाने वाले पदार्थों के संपर्क में खाद्य नहीं आने देना।
- विशिष्ट माइग्रेशन सीमा का अर्थ है कि दिये गये पदार्थों की वह उच्चतम अनुमोदित मात्रा जो किसी पदार्थ से खाद्यों में निर्गत होता है।

## सामान्य आवश्यकताएँ

सभी एफ.बी.ओ. यह सुनिश्चित करें कि डिब्बाबंदी के लिये उपयोग किया गया पदार्थ इन नियमों के अनुरूप है।

## डिब्बाबंदी पदार्थ

- पेटीबंदी, तैयारी, भंडारण, आवरण हेतु, परिवहन और बिक्री या भोजन की सेवा के लिये उपयोग की जाने वाली डिब्बाबंदी सामग्री खाद्य गुणवत्ता की होनी चाहिए।
- डिब्बाबंदी पदार्थ उत्पाद के प्रकार, भंडारण के लिये प्रदत्त स्थितियों और खाद्य को पूर्ति, बंद और डिब्बाबंदी के उपकरण के साथ–साथ परिवहन परिस्थितियों के लिये भी उपयुक्त होनी चाहिए।
- सामान्य परिवहन के दौरान सामना किये जाने वाले यांत्रिक, रासायनिक या तापीय तनाव का सामना करने में सक्षम हों। लचीला या अर्ध–कठोर पात्रों के मामले में एक बाह्यिक पेटीबंदी आवश्यक हो सकती है।
- खाद्य उत्पादों/पदार्थों को स्वच्छ, स्वास्थ्यकर और

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [2]कनिष्ठ शोध सहायक

छेड़छाड़ नहीं की जा सकने वाली बोतलों/पात्रों में पैक किया जायेगा।

- बंद करने की सामग्री उत्पाद और पात्रों के साथ–साथ पात्र को बंदीकरण प्रणाली के साथ भी संगत होगी।
- एक बार इस्तेमाल किये गये टिन के पात्रों को भोजन की पैकेजिंग के लिये फिर से उपयोग नहीं किया जायेगा। बशर्ते कि डिब्बाबंदी सामग्री का पुनः उपयोग तभी किया जाये, जब वे पर्याप्त टिकाऊ, साफ करने या रोगाणुमुक्त करने के लिये आसान हों।
- खाद्य डिब्बों पर उपयोग की जाने वाले मुद्रण स्याही आई.एस. 15495 के अनुरूप होगी।
- पैकेजिंग सामग्री की मुद्रित सतह खाद्य उत्पादों के साथ सीधे संपर्क में नहीं आएगी।
- समाचार–पत्र या ऐसी किसी भी सामग्री का उपयोग भोजन के भंडारण और लपेटने के लिये नहीं किया जाएगा।
- विभिन्न परतों वाली डिब्बाबंदी के मामले में जो परत भोजन के संपर्क में आती है या परतें जिसे भोजन के संपर्क में आने की संभावना होती है वो अधिनियमों की अनुसूची I, II और III में निर्दिष्ट पैकेजिंग सामग्री के आवश्यकताओं को पूरा करेगी।
- नियमों के अनुसूची I, II और III में सूचीबद्ध सामग्रियों को डिब्बाबंदी पदार्थ के रूप में उनके इच्छित उपयोग के साथ संगत होना चाहिए ताकि खाद्य उत्पाद की गुणवत्ता और सुरक्षा में बदलाव नहीं किया जा सके।
- प्रत्येक खाद्य व्यापारी को व्यवहन पैकेजिंग सामग्री के लिये इन नियमों के प्रति एन.ए.बी.एल. (NABL) से मान्यता प्राप्त प्रयोगशाला द्वारा जारी सहमति प्रमाण–पत्र प्राप्त करना होगा।

## विशिष्ट आवश्यकता

*जो पेपर और बोर्ड सामग्री खाद्य उत्पादों के संपर्क में आ सकते हैं।*

- एक समान रचना, मोटाई और वस्तु होनी चाहिए।
- दृष्टिगत धब्बों, ग्रीस के निशानों, कटे हुए, छिद्रयुक्त और अन्य दोशों से मुक्त।
- बक्से, डिब्बे, थाली, कप और पेपर के ढक्कन या पेपर जो सीधे भोजन के संपर्क में होता है। वह खाद्य मानक का होगा और दूषित पदार्थों से मुक्त होगा।
- खाद्य उत्पादों की डिब्बाबंदी या भंडारण करने के लिये उपयोगी पात्रों के निर्माण में प्रयुक्त पेपर और बोर्ड सामग्री अनुसूची–I में प्रदान की गयी भारतीय मानकों के विनिर्देशों के अनुरूप होंगी।

*काँच के पात्र जो खाद्य उत्पादों के संपर्क में आ सकते है।*

- दाग, साँचे के चिह्नों, पत्थरों और चिपके हुए आकृति से मुक्त रहें और जितना संभव हो सके डोरी, बीजों और अन्य दृष्टिगोचर त्रुटियों से मुक्त होंगे।
- दरारों, महीन छिद्रों और नुकीला धार रहित चिकनी सतह युक्त हों।
- बन्द करने की जगह महीन दरारों और प्रमुख सन्धि–चिह्न से मुक्त होगी।

*धातु और धातुओं के मिश्रण जो खाद्य उत्पादों के संपर्क में आ सकते हैं।*

निम्नलिखित सामग्रियों या धातुओं से बने बर्तन या पात्र, उनकी संरचना, डिब्बाबंदी और भोजन के भंडारण में उपयोगिता को मानव उपभोग के लिये अनुपयुक्त माना जायेगा।

- ऐसे पात्र जिनमें जंग लगी हुई हो।
- तामचीनी पात्र जो चिपटे और जंगी हो गये हों।
- ताँबे या पीतल के पात्र जो ठीक से बंद न हो सकें।

खाद्य उत्पादों को बंद करने या संरक्षित करने के लिये उपयोग किये जाने वाले पात्रों के निर्माण के लिये धातुएँ और मिश्र धातुएँ अनुसूची–II में प्रदान किये गये भारतीय मानक विनिर्देशों के अनुरूप होगी।

*प्लास्टिक सामग्री जो खाद्य उत्पादों के संपर्क में आ सकती है।*

खाद्य उत्पादों को बंद करने या संरक्षित करने के लिये उपयोग किये जाने वाले पात्रों के निर्माण के लिये प्लास्टिक सामग्री अनुसूची–III में प्रदान की गयी भारतीय मानक विनिर्देशों के अनुरूप होगी।

पीने के पानी (दोनों डिब्बाबंद और खनिज मिश्रित पानी) की उपलब्धता रंगहीन, स्वछ और छेड़छाड़ रहित बोतलों या निम्नलिखित में से बने पात्रों में किये जायेंगे।

- पॉलीएथिलीन, आई.एस. : 10146 के अनुसार।
- पॉलीविनाइल क्लोरॉइड, आई.एस. : 10151 के अनुसार।
- पॉलीएल्काइलीन टेरिफ्थेलेट, आई.एस. : 12252 के अनुसार।
- पॉलीप्रोपाइलिन, आई.एस. : 10910 के अनुसार।
- खाद्य गुणवत्तामान का पॉलीकार्बोनेट, आई.एस. : 14971 के अनुसार।
- पॉलीस्टीरीन, आई.एस. : 10142 के अनुसार।
- केवल असंक्रमित काँच की बोतलों में।

उपयोग में लाये गये पात्र की स्वच्छता प्रकाश प्रसारण में 85 प्रतिशत से कम नहीं होनी चाहिए। पाँच लीटर और इसके ऊपर बने पॉलीकार्बोनेट और पॉलीएथिलीन टेरिफ्थेलेट के प्लास्टिक पात्र का उपयोग खनिज मिश्रित जल डिब्बाबंदी और डिब्बाबंद पेयजल के लिये नीले रंग का इस्तेमाल किया जा सकता है, जैसा कि भारतीय मानक आई.एस. : 9833 में निर्दिष्ट है। ऐसे पात्र की स्वछता प्रकाश प्रसारण 85 प्रतिशत से कम नहीं होनी चाहिए ।

*प्लास्टिक से बनी सभी प्रकार की डिब्बाबंदी सामग्री निम्नलिखित मानकों के अनुसार होगी।*

- आई.एस. : 9845 के अनुसार परीक्षण किये जाने पर समग्र माइग्रेशन सीमा 60 मिलीग्राम/किलोग्राम या 10 मिलीग्राम/वर्ग डेसीमीटर के अन्दर (बिना रंग छोड़े) होनी चाहिए।
- नीचे सारणी–1 में दी गयी प्रवास सीमा से अधिक पदार्थ की मात्रा को निकाल देनी चाहिए।
- खाद्य उत्पाद और पेयजल के संपर्क में आने वाले प्लास्टिक के वर्णक या रंजक, आई.एस. : 9833 के अनुरूप होंगे।
- पुनर्नवीकृत प्लास्टिक से बने झोले या उत्पादों का उपयोग डिब्बाबंदी, भंडारण, खाद्य पदार्थों को ले जाने या भोजन के वितरण के लिये नहीं किया जाएगा।

l kj.kh&1 %[kk| inkFkksZ ds l aidZ esa vkus okys Iy kfLVd l kexh l s nf'kr inkFkksZ dh fof'k"V çokl l hek ds fy; s vko'; d A

| Ø-l a | nf'kr inkFkZ | vf/kdre izokl l hek ¼fe y hxzke@x zke½ |
|---|---|---|
| 1. | बेरियम | 1.0 |
| 2. | कोबाल्ट | 0.05 |
| 3. | कॉपर | 5.0 |
| 4. | आयरन | 48.0 |
| 5. | लिथियम | 0.6 |
| 6. | मैंगनीज | 0.6 |
| 7. | जिंक | 25.0 |

सुझाई गयी डिब्बाबंदी सामग्री की एक सूची जिसका उपयोग निर्दिष्ट श्रेणियों के तहत आने वाले खाद्य उत्पादों की डिब्बाबंदी के लिए किया जा सकता है, अनुसूची–IV में प्रस्तुत किया गया है।

vuqlwph&I

isij vkSj cksMZl kexh tks [kk|; mRiknksa ds l aidZ esa vkl drs gSa&

| Øe l a | ekud ksa dh l wph |
|---|---|
| 1 | चरबी रोकने वाले/सहन कर सकने वाले कागज – आई.एस. : 6622 |
| 2 | सब्जी के लिये उपयोगी कागज या चरबी रोकने वाले कागज या ऐलुमीनियम पन्नी की परतें आई.एस. : 7161 |
| 3 | डिब्बाबंदी के लिये ऐलुमीनियम पन्नी की परतें – आई.एस. : 8970 |
| 4 | सामान्य उद्देश्य से की जाने वाली डिब्बाबंदी/आवरण हेतु कागज – आई.एस. : 6615 |
| 5 | मुड़ सकने वाले बॉक्स/सन्दूक पटल, आवरणहीन – आई.एस. : 1776 |
| 6 | कारोगेटेड फाइबर बोर्ड वाले बक्से – विशिष्टता (भाग–1) – आई.एस. : 2771 |

è; ku nsa%dkxt ; k cksMZ dks vkoRr djus ds fy; s iz;qDr ekse iSjkfQu ekse gksuk pkfg, tks vkbZ,l -%4654 ds izdkj l ds vuq Ik gSA

## v u q l w p h & II

/kkrq vkSj feJ /kkrq ;qDr ls[kkn~; mRikn ks@ i nkFkkZ d s l a d Z e a v k l d rs g SA

| Øe la | ekud ksa d h l wph |
|---|---|
| 1 | ठंडरोधी इलेक्ट्रोलाइटिक टिनप्लेट – आई.एस. 1993 / आई.एस.ओ. 11949 |
| 2 | सामान्य अभियांत्रिकी के लिये काम्टी ऐलुमिनियम और ऐलुमीनियम के मिश्रण से बने धातुओं की चद्दर और पट्टी – आई. एस. 737 |
| 3 | ऐलुमीनियम और ऐलुमीनियम से बने मिश्र धातुओं की पन्नी जिनका उपयोग खाद्य की डिब्बाबंदी हेतु किया जाता है – आई.एस. 15392 |
| 4 | काम्टी ऐलुमिनियम और ऐलुमीनियम से बने मिश्र धातुयें जिनका उपयोग बर्तन बनाने के लिये किया जाता है – आई.एस. 21 |
| 5 | खाद्य और पेय पदार्थों के लिये गोल तथा खुले सिर वाले स्वच्छ / स्वास्थ्यकर डिब्बे – आई.एस. 9396 – भाग 1 |

## v u q l w p h & III

IykfLVd i nkFkk±t ks [ kk| mRi knks a d s l Ei d Z e a v k l d rs g SA

| Øe la | ekud ksa d h l wph |
|---|---|
| 1 | खाद्य पदार्थों, औषधीय और पीने के पानी के संपर्क में आने वाले पॉलीएथिलीन के सुरक्षित उपयोग के लिये विनिर्देश – आई.एस. 10146 |
| 2 | खाद्य पदार्थों, औषधीय और पीने के पानी के संपर्क में आने वाले पॉलीस्टीरीन के सुरक्षित उपयोग के लिये विनिर्देश – आई.एस. 10142 |
| 3 | खाद्य पदार्थों, औषधीय और पीने के पानी के संपर्क में आने वाले पॉलीविनाइल क्लोरॉइड (पी.वी.सी) और इसके सहबहुलकों के सुरक्षित उपयोग के लिये विनिर्देश – आई.एस. 10151 |
| 4 | खाद्य पदार्थों, औषधीय और पीने के पानी के संपर्क में आने वाले पॉलीप्रोपाइलिन (पी.पी.) और इसके सहबहुलकों के सुरक्षित उपयोग के लिये विनिर्देश – आई.एस. 10910 |
| 5 | खाद्य पदार्थों, औषधीय और पीने के पानी के संपर्क में आने वाले आयनोमर रेजिन के सुरक्षित उपयोग के लिये विनिर्देश – आई.एस. 11434 |
| 6 | खाद्य पदार्थों, औषधीय और पीने के पानी के संपर्क में आने वाले एथिलीन एक्राइलिक अम्ल सहबहुलकों के सुरक्षित उपयोग के लिये विनिर्देश – आई.एस. 11704 |
| 7 | खाद्य पदार्थों, औषधीय और पीने के पानी के संपर्क में आने वाले पॉलीएल्काइलीन टेरिफ्थेलेट के सुरक्षित उपयोग के लिये विनिर्देश – आई.एस. 12252 |
| 8 | खाद्य पदार्थों, औषधीय और पीने के पानी के संपर्क में आने वाले नायलान 6 बहुलकों के सुरक्षित उपयोग के लिये विनिर्देश – आई.एस. 12247 |
| 9 | खाद्य पदार्थों, औषधीय और पीने के पानी के संपर्क में आने वाले एथीलीन विनाइल एसीटेट सहबहुलकों के सुरक्षित उपयोग के लिये विनिर्देश – आई.एस. 13601 |
| 10 | खाद्य पदार्थों, औषधीय और पीने के पानी के संपर्क में आने वाले एथिलीन मेथा एक्राइलिक अम्ल सहबहुलकों एवं टारपॉलीमार के सुरक्षित उपयोग के लिये विनिर्देश – आई.एस. 13576 |
| 11 | खाद्य पदार्थों, औषधीय और पीने के पानी के संपर्क में आने वाले पॉलीकार्बोनेट रेजिन के सुरक्षित उपयोग लिये विनिर्देश – आई.एस. 14971 |
| 12 | खाद्य तेलों, घी और वनस्पति के डिब्बाबंदी के लिये लचीला डिब्बाबंदी पदार्थों के विनिर्देश – आई.एस. 14636 |
| 13 | सजावट और निष्कासन के लिये पॉलीएल्काइलीन टेरिफ्थेलेट के विनिर्देश – आई.एस. 13193 |

| | |
|---|---|
| 14 | पॉलिएथिलीन की झिल्ली और चादर के विनिर्देश – आई.एस. 2508 |
| 15 | रेखाकृत कम घनत्व वाले पॉलीएथिलीन की झिल्ली के विनिर्देश – आई.एस. 14500 |
| 16 | सजावट और उभार के लिये अधिक घनत्व वाले पॉलीएथिलीन पदार्थों के विनिर्देश – आई.एस. 7328 |
| 17 | खाद्य पदार्थों, औषधीय और पीने के पानी के संपर्क में आने वाले मेलामाइन–फॉरमल्डीहाइड रेजिन के सुरक्षित उपयोग के लिये विनिर्देश – आई.एस. 14999 |

## v u q l p h&IV

### fMCck can h l ke fx z ka d s fy , l q k oh l p h

| Øe l a | mRi kn d k i zd kj | fMCck can h gs q l ke x h d k i zd kj |
|---|---|---|
| 1. | दुग्ध और दुग्ध उत्पाद | • धातु के ढक्कन के साथ काँच की बोतलें।<br>• प्लास्टिक (पी.पी.) ढक्कन के साथ पी.ई.टी. से बनी सख्त प्लास्टिक कंटेनर/डिब्बा।<br>• प्लास्टिक (पी.पी.) ढक्कन के साथ हाई डेन्सिटी पॉलीएथाइलिन (एच.डी.पी.ई.)/पॉलीप्रोपाइलिन (पी.पी.) से बनी सख्त प्लास्टिक कंटेनर/डिब्बा।<br>• पॉलीएथिलीन (पी.ई.) आधारण से बना लचीला तथा बहु–स्तरीय प्लास्टिक थैला।<br>• कीटाणुरोधक/सड़न–रोधी और लचीली डिब्बाबंदी सामग्री (कागज दफ्ती बोर्ड/ऐलुमीनियम पन्नी/पॉलीएथिलीन) आधारित बहु–स्तरीय संरचना।<br>• टिन का बना हुआ डिब्बा।<br>• कागज आधारित दफ्ती वाले डिब्बे (ऐलुमिनियम पन्नी आधारित महीन परत वाले)<br>• प्लास्टिक आधारित पी.पी. के कप/प्याला नहीं मुड़ने वाले ढक्कनों के साथ।<br>• मोम लेपित बटर पेपर आवरण।<br>• कागज और दफ्ती आधारित मुड़ने वाले दफ्ती जिसमें अंदर से बटर पेपर का लेप हो।<br>• धातु से बने डिब्बे जिनमें प्लास्टिक (पी.पी.)/धातु या प्लास्टिक ढक्कन हों।<br>• प्लास्टिक ढक्कनों के साथ विशेष रूचिकर प्लास्टिक डिब्बे।<br>• ढक्कनों के साथ मुड़ने वाले थर्मोफार्म के प्याले/थालियाँ।<br>• कागज और कागज पटल आधारित लैमिनेटेड या बिना लैमिनेटेड बॉक्स–अंदर प्लास्टिक की फिल्म।<br>• कागज और कागज पटल आधारित डिब्बे अंदर बिना ग्रीस या ग्रीस सहन कर सकने वाली फिल्म के साथ।<br>• प्लास्टिक आधारित बहु–स्तरीय लचीली तबक युक्त तापीय बंद थैली।<br>• मिट्टी के बर्तन। |
| 2. | वसा, तेलों और वसीय घोल | • टिन का डिब्बा।<br>• धातु/प्लास्टिक ढक्कनों के साथ काँच की बोतलें।<br>• एच.डी.पी.ई. से बने प्लास्टिक के सख्त जार।<br>• प्लास्टिक ढक्कन वाले प्लास्टिक की बोतलें/जार।<br>• बहुस्तरीय महीन परत वाले प्लास्टिक के थैले।<br>• बहुस्तरीय कीटाणुरोधक और लचीले डिब्बाबंदी पदार्थ (जैसे कागज की पट्टी/ऐलुमिनियम की पन्नी/पॉलीएथिलीन)।<br>• द्वितीयक बोर्ड बॉक्स में प्लास्टिक आवरण युक्त थैले (बॉक्स में थैला)।<br>• प्लास्टिक ढक्कनों के साथ थर्मोफॉर्म्ड प्लास्टिक आधारित जार।<br>• ऐलुमीनियम पन्नी से आधारित स्तर वाले झुर्रीदार कागज आधारित कार्टनें/डिब्बे। |

| | | |
|---|---|---|
| 3. | फल और सब्जियों के उत्पाद | • धातु/प्लास्टिक ढक्कनों के साथ शीशे के जार।<br>• आसानी से खुलने वाले ऐलुमीनियम के डिब्बे।<br>• टिनप्लेट के पात्र।<br>• विभिन्न स्तरों वाले कीटाणुरोधक और लचीले डिब्बाबंदी पदार्थ (जैसे कागज की पट्टी/ऐलुमीनियम की पन्नी/पॉलीएथिलीन)।<br>• एच.डी.पी.ई. या सह उत्पादों से बने प्लास्टिक ढक्कनों वाले सख्त जार।<br>• प्लास्टिक टोटी के साथ प्लास्टिक के खड़े रहने वाले पाउच।<br>• पी.ई. से बने या आवरणयुक्त संरचना वाले लचीले प्लास्टिक थैले।<br>• ऐलुमीनियम की पन्नी/पी.ई. से बने ढक्कनों के साथ थर्मोफॉर्म्ड प्लास्टिक जार।<br>• धातु के ढक्कनों के साथ प्लास्टिक जार।<br>• ऊपरी आवरण के साथ प्लास्टिक ट्रे/थाली। |
| 4. | मिठाई और मिष्ठान | • धातु/प्लास्टिक की ढक्कनों के साथ धातु के पात्र।<br>• विभिन्न स्तरों वाली प्लास्टिक आधारित तापबंद थैले।<br>• प्लास्टिक/धातु ढक्कनों के साथ कागज की दफ्ती/ऐलुमीनियम पन्नी/प्लास्टिक मिश्रित पात्र।<br>• प्लास्टिक आधारित सख्त पात्र।<br>• पन्नी का आवरण।<br>• प्लास्टिक पन्नी आधारित द्विस्तरीय आवरण।<br>• ढक्कनों के साथ थर्मोफॉर्म्ड ट्रे।<br>• धातु/प्लास्टिक ढक्कनों के साथ शीशे की बोतलें।<br>• पन्नी के ढक्कनों के साथ प्लास्टिक प्याले। |
| 5. | अन्न और अन्न उत्पाद | • टिन के पात्र।<br>• धातु के पात्रों में ऐलुमीनियम पन्नी आवरणयुक्त थैले।<br>• मोमयुक्त कागज के आवरण।<br>• त्रिस्तरीय परतदार संरचना युक्त अच्छादन।<br>• प्लास्टिक आधारित विभिन्न स्तरीय परतदार थैला (तापबंद)।<br>• प्लास्टिक ढक्कन के साथ थर्मोफॉर्म्ड के प्लास्टिक आधारित पात्र।<br>• विभिन्न स्तरीय आवरण युक्त संरचना वाले झुर्रीदार गत्ते के डिब्बे।<br>• प्लास्टिक आधारित विभिन्न स्तरीय आवरण युक्त संरचना वाले चेनदार थैले।<br>• प्लास्टिक ढक्कन/आवरण के साथ थर्मोफॉर्म्ड ट्रे।<br>• धातु के ढक्कन के साथ काँच की बोतलें। |
| 6. | माँस और माँस उत्पाद | • प्लास्टिक ढक्कनों के साथ काँच के जार।<br>• धातु के ढक्कनयुक्त धातु के पात्र (टिन से रोगन किया हुआ)।<br>• कागज और कागज के गत्तों में प्लास्टिक आधारित लचीले थैले।<br>• विभिन्न स्तरीय प्लास्टिक आधारित लचीले आवरण युक्त तापबन्द थैले।<br>• आवरणयुक्त प्लास्टिक ट्रे।<br>• ऐलुमीनियम की पन्नी के आवरण। |
| 7. | मछली और मछली उत्पाद | • प्लास्टिक ढक्कनों के साथ काँच के जार।<br>• धातु के ढक्कनयुक्त धातु के पात्र (टिन से रोगन किया हुआ)।<br>• प्लास्टिक ढक्कनयुक्त पी.ई.टो. के डलिया/पात्र।<br>• विभिन्न स्तरीय प्लास्टिक आधारित लचीले आवरण युक्त तापबंद थैले।<br>• आवरण युक्त प्लास्टिक ट्रे। |

| | |
|---|---|
| 8. शहद के साथ–साथ मिठास के कारक | • धातु के ढक्कन के साथ काँच की बोतलें।<br>• प्लास्टिक आधारित थर्मोफॉर्म्ड के पात्र।<br>• पन्नी/पॉलिथीन ढक्कनयुक्त ब्लिस्टर थैले।<br>• प्लास्टिक ढक्कन के साथ पी.ई.टी. के पात्र।<br>• प्लास्टिक आवरणयुक्त नली। |
| 9. नमक, मसाले, चटनी और संबंधित उत्पाद | • धातु के ढक्कन युक्त काँच की बोतलें।<br>• प्लास्टिक ढक्कन के साथ काँच की बोतल।<br>• प्लास्टिक ढक्कनयुक्त प्लास्टिक आधारित सख्त पात्र (PET और HDP पात्र)।<br>• कागज और कागज दफ्ती/ऐलुमीनियम पन्नी/प्लास्टिक पन्नी युक्त मिश्रित पात्र।<br>• मुड़ने वाले गत्ते के डिब्बे जिसके अन्दर प्लास्टिक आधारित लचीले आवरण युक्त थैला हो।<br>• विभिन्न स्तरीय प्लास्टिक आधारित आवरण युक्त थैले (तापबंद)। |
| 10. पेय (दूध, फल और सब्जियों से बने हुए उत्पादों के अलावा) | • प्लास्टिक (पॉलीप्रोपाइलीन) के ढक्कन युक्त पी.ई.टी. अथवा पॉलीकार्बोनेट से बनी प्लास्टिक की बोतलें।<br>• पॉलीथीन से बनी तापबंद प्लास्टिक के थैले।<br>• धातु/प्लास्टिक के ढक्कन के साथ काँच की बोतलें।<br>• सी.एफ.बी. डिब्बों में पॉलिथीन से बने प्लास्टिक थैले।<br>• आसानी से खुलने वाले ऐलुमीनियम के डिब्बे।<br>• टिनप्लेट के पात्र।<br>• आवरणयुक्त संरचना वाले प्लास्टिक थैले।<br>• विभिन्न स्तरीय संरचना युक्त कीटाणुरोधक और लचीले डिब्बाबंदी पदार्थ (कागज की दफ्ती/ऐलुमीनियम की पन्नी/पॉलिथीन)।<br>• विभिन्न स्तरीय संरचना वाले प्लास्टिक आधारित तापबंद थैले।<br>• विभिन्न स्तरीय संरचना वाले प्लास्टिक आधारित तापबंद चेनयुक्त/न मुड़ने वाले थैले।<br>• धातु/प्लास्टिक ढक्कनयुक्त धातु के पात्र।<br>• प्लास्टिक ढक्कन युक्त सख्त प्लास्टिक पात्र।<br>• लकड़ी के पीपे (मदिरा हेतु)। |

## मैं नीर भरी दुख की बदली!

स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा
नयनों में दीपक से जलते,
पलकों में निर्झारिणी मचली!
मेरा पग–पग संगीत भरा
श्वासों से स्वप्न–पराग झरा
नभ के नव रंग बुनते दुकूल
छाया में मलय–बयार पली।
मैं क्षितिज–भृकुटि पर घिर धूमिल
चिन्ता का भार बनी अविरल
रज–कण पर जल–कण हो बरसी,
नव जीवन–अंकुर बन निकली!
पथ को न मलिन करता आना
पथ–चिह्न न दे जाता जाना;
सुधि मेरे आगन की जग में
सुख की सिहरन हो अन्त खिली!
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना, इतिहास यही–
उमड़ी कल थी, मिट आज चली!

&egkknsoh oekZ

# खाद्य पदार्थों की डिब्बाबंदी में प्लास्टिक

ए. के. भट्टाचार्जी[1], प्रदीप कुमार शुक्ल[2] एवं बलविन्द्र सिंह[3]
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

## परिचय

खाद्य उत्पादों को संरक्षित करने, सड़न एवं प्रदूषण से बचाने, उनकी स्वजीवन क्षमता बढ़ाने, सुरक्षित भंडारण तथा परिवहन के साथ-साथ आसानी से उपभोक्ताओं के लिये उपलब्ध कराने में पदार्थों की डिब्बाबंदी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। भारत विश्व का अनाज, चीनी, दूध, फलों एवं सब्जियों, दालों, चाय इत्यादि प्रमुख खाद्य उत्पादों में प्रथम अथवा द्वितीय सबसे बड़ा उत्पादक देश है। फसलों की विविधता, स्थानीय उत्पादन, सुरक्षित तथा उनके स्वास्थकर रख-रखाव, परिवहन, वितरण तथा अपव्यय, कीड़ों एवं रोगों से सुरक्षित बचाव आदि को ध्यान में रखते हुए डिब्बाबंदी अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। उत्पाद की प्रकृति पर निर्भर करते हुए प्रति वर्ष 5 से 40 प्रतिशत तक कृषि उत्पादों के भारी नुकसान से भारत गुजर रहा है। संग्रह में असुविधा, भंडारण तथा परिवहन और खुदरा बाजार जैसे विभिन्न कदमों पर ठीक ढंग से डिब्बाबंदी न हो पाने के कारण यह हानि होती है। बड़ी अथवा छोटी जैसे 50 मिलीलीटर से 50 किलोग्राम/गैलन वजन की प्रत्येक खाद्य पदार्थों की ऐसी समस्याओं का समाधान डिब्बाबंदी के द्वारा हो सकता है। प्रायः विभिन्न प्रकार के प्लास्टिक खाद्य पदार्थों की डिब्बाबंदी के लिये उपयोग में लाये जाते हैं।

## प्लास्टिक क्या है?

प्लास्टिक कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, क्लोरीन, सल्फर आदि तत्वों के मिश्रण से बना हुआ पदार्थ है। सामान्यतः प्लास्टिक हजारों अणुओं को मिलाकर उच्च परमाणु भार वाले यौगिक होते हैं।

प्लास्टिक मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं।

(1) ***जैविक या प्राकृतिक :*** ऐसे प्लास्टिक कार्बन अणुओं से मिलकर बने होते हैं, जैसे-पेड़ों की रबर या रेजिन।

(2) ***कृत्रिम या संश्लेषित :*** ऐसे प्लास्टिक जिसमें कार्बन अणु नहीं होते हैं, जैसे-पॉलीएथिलीन, पॉलीप्रोपाइलिन, पॉलीविनाइल क्लोराइड इत्यादि।

कृत्रिम प्लास्टिक इस प्रकार से तैयार किये जाते हैं कि वे प्राकृतिक पदार्थों के गुणों का अनुकरण करने में समर्थ हों। प्लास्टिक या पॉलीमर प्राकृतिक उत्पादों के रूपांतरण अथवा तेल, प्राकृतिक गैस और कोयले से प्राप्त प्राथमिक रसायनों से तैयार किये जाते हैं।

प्रसंस्करण के आधार पर प्लास्टिक को दो प्रकार में विभाजित किया जा सकता है।

(1) ***थर्मोसेट :*** ऐसे पॉलीमर जो एक बार ठोस होने अथवा जमने पर अपरिवर्तनीय हो जाते हैं, जैसे कच्चा अंडा और उबला हुआ अंडा।

(2) ***थर्मोप्लास्टिक :*** ऐसे पॉलीमर के अणु एक-दूसरे से कमजोर एवं द्वितीयक बलों द्वारा बंधे होते हैं तथा आग अथवा गर्मी के संपर्क में आने पर गर्म एवं मुलायम हो जाते हैं तथा कमरे के तापमान में ठंडा करने पर पुनः अपने वास्तविक रूप में लौट आते हैं। खाद्य पदार्थों कि डिब्बाबंदी हेतु लगभग 90 प्रतिशत से भी ज्यादा थर्मोप्लास्टिक का ही उपयोग होता है।

## खाद्य डिब्बाबंदी हेतु प्लास्टिक ही क्यों?

विभिन्न खाद्य वस्तुओं जैसे अनाज, चीनी, दूध एवं दुग्ध उत्पादों, ताजे फलों और सब्जियों तथा उनके प्रसंस्कृत उत्पादों आदि की डिब्बाबंदी के लिये प्लास्टिक सबसे पसंदीदा सामग्री के रूप में उभरा है। पारंपरिक डिब्बाबंदी की सामग्रियाँ जैसे-कागज, काँच, कपड़ा और जूट आदि के बदले में प्लास्टिक से मिलने वाले कुछ अनूठे फायदे निम्नलिखित प्रकार हैं।

(1) ***सुरक्षा :*** खाद्य पदार्थों की डिब्बाबंदी के लिये प्लास्टिक एक सुरक्षित विकल्प है। विशेष रूप से पोलियोलिफिंस जो खाद्य पदार्थों के साथ किसी

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]कनिष्क शोध सहायक एवं [3]वरिष्ठ शोध सहायक

भी प्रकार की रासायनिक क्रिया नहीं करता और साथ–ही–साथ छिद्रण तथा जीवाणु के प्रकोप को भी कम करता है।

(2) ***स्वजीवन क्षमता :*** प्लास्टिक डिब्बाबंदी में खाद्य पदार्थों की स्वजीवन क्षमता बढ़ जाती है।

(3) ***लागत मूल्य :*** अन्य पदार्थों की तुलना में प्लास्टिक डिब्बाबंदी लागत की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सबसे कम लागत मूल्य वाला पदार्थ है। इनके कम वजन के होने एवं कमी अतिग्रस्तता वाला होने के कारण परिवहन मूल्य भी सामान्यतः घट जाता है।

(4) ***सुविधाजनक :*** विभिन्न प्रसंस्करण तकनीकियों के द्वारा प्लास्टिक को किसी भी रूप में परिवर्तित किया जा सकता है जिसके कारण विभिन्न प्रकार के खाद्य (ठोस, तरल, चूर्ण, दानेदार, टुकड़ों के रूप वाले पदार्थों) को भी इसमें डिब्बाबंद किया जा सकता है।

(5) ***बर्बादी से बचाव :*** प्लास्टिक में डिब्बाबंदी विभिन्न खाद्य उत्पादों की बर्बादी से बचाव भी करता है जिसका एक उदाहरण आलू एवं प्याज का 'लेनो' बैग में डिब्बाबंदीकरण है।

(6) ***सौंदर्यीकरण :*** सौंदर्यीकरण की महत्व को देखते हुए प्लास्टिक डिब्बाबंदी बहुत ही अच्छा विकल्प है जो उत्पादों के मूल्य एवं उनकी अलग पहचान (ब्रांड वैल्यू) को बढ़ावा देने में मदद करता है।

(7) ***संग्रह तथा भंडारण :*** उत्पादों की प्लास्टिक में डिब्बाबंदी उनके भंडारण, संग्रह के साथ–साथ स्थानांतरण को भी सरल बनाता है।

(8) ***पुनर्चक्रीकरण :*** प्लास्टिक उत्पादों को आसानी से पुनर्चक्रित किया जा सकता है।

## भारत में खाद्य उत्पादों की डिब्बाबंदी में प्लास्टिक का उपयोग

हमारे यहाँ विभिन्न खाद्य सामग्रियों की मूल्यांकन एवं उनके प्रभाव को देखते हुए विभिन्न प्रकार के प्लास्टिक को पेटीबंदी के लिये उपयोग में लाया जाता है जिसका सारांश निम्नानुसार है।

¼V½ [kk| vukt ]nky s, oap huh %दाल, अनाज जैसे खाद्यान्न और चीनी नमी को अवशोषित कर ऊष्मा के प्रति सक्रिय होते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि इनकी डिब्बाबंदी ऐसे डिब्बों में की जाये जो मजबूत प्रकृति के साथ–साथ लंबे समय तक स्थायी रह सकें। भारत में 'पी.पी. वूवेन' थैलों को दालों, अनाजों एवं चीनी की पेटीबंदी करने एवं भंडारण के लिये उपयोग में लाया जाता है।

¼C½ Qy vkSj lfCt;kj %विभिन्न कारणों को देखते हुए फलों एवं सब्जियों के लिये प्लास्टिक डिब्बाबंदी स्वीकार्य है। अनुपयुक्त भंडारण, शीतगृहों की कमी, उच्च तापमान तथा अन्य कारणों से भारत में प्रति वर्ष लगभग 35 प्रतिशत फलों एवं सब्जियों का नुकसान हो जाता है। साथ ही, ताजे फलों एवं सब्जियों को नजदीक के बाजारों में लकड़ी के डिब्बे, कागज की पेटियों, जूट के थैलों और क्रेट्स में बंद कर ट्रकों या ट्रैक्टरों द्वारा भेजा जाता है जबकि इस प्रकार की पेटीबंदी फलों और सब्जियों के नुकसान को देखते हुए पर्याप्त रूप में प्रभावी नहीं होती। ताजे उत्पादों की पारंपरिक तरीकों से पेटीबंदी की तुलना में प्लास्टिक में पेटीबंदी अत्यंत प्रभावशाली होने के साथ–साथ सड़न को भी रोकता है। प्लास्टिक डिब्बाबंदी स्वास्थ्यकर, टिकाऊ, कीड़ों और रसायनों के प्रतिरोधक और पदार्थों की स्वजीवन क्षमता बढ़ाने के साथ–साथ उत्पादों के दृष्टिगम्य गुणों को भी बढ़ाता है।

¼|½ nqX/k mRikn vkSj LokLF; dj isş %प्लास्टिक के पात्रों और 50–60 माइक्रोन मोटाई के एल.एल. डी.पी.ई./एल.डी.पी.ई. से बने पोलीएथिलीन के थैले पाश्चुरीकृत दूध की डिब्बाबंदी के लिये उपयुक्त होने के साथ–साथ कम खर्चे वाले तथा टिकाऊ भी होते हैं। पॉलीप्रोपाइलिन से बने पात्र योगर्ट, मक्खन, वसाहीन छाछ एवं मिठाइयों की डिब्बाबंदी के लिये भी उत्तम विकल्प होते हैं। पॉलीप्रोपाइलिन से बने डिब्बे ज्यादातर स्वास्थ्यवर्धक पेयों के डिब्बाबंदी हेतु भी उपयोग में लाये जाते हैं। ये हल्के वजन वाले तथा भंडारण में सरलता के कारण परिवहन तथा ईंधन के खर्चों को सीधे तौर पर प्रभावित करते हैं। इसके अलावा रख–रखाव करते समय इनके टूटने या फटने का भी कोई भय नहीं होता है।

¼n½ csdjh mRiknksa [kk| rsyksa çlaL—r [kk|ksa ,oa cscjsts % प्लास्टिक की मुलायम प्रकृति के कारण प्रसंस्कृत खाद्यों हेतु प्लास्टिक डिब्बाबंदी बड़ी महत्वपूर्ण हो जाती है। इस प्रकार की डिब्बाबंदी उन्हें उपयुक्त ऑक्सीजन तथा नमी प्रदान करने में सहायक होती है। लंबे समय तक रखे जाने वाले खाद्यों जैसे अचार, मसाले, बिस्किट, ब्रेड आदि प्लास्टिक झिल्लियों और थैलों में ज्यादा सुरक्षित रहते हैं। पी.ई.टी. बोतलें कार्बनयुक्त बेवरेजेज को डिब्बाबंद करने हेतु सही विकल्प है जबकि अकार्बनयुक्त बेवरेजेज जैसे फलों के रसों की डिब्बाबंदी हेतु पी.पी. बोतलें, पी.ई. बोतलें और थैलों के साथ-साथ पी.ई.टी. बोतलें भी अच्छा विकल्प हैं। खाने योग्य तेलों (सरसों का तेल, सोयाबीन का तेल आदि) के लिये विभिन्न परतों वाली पी.ई. और एच.डी.पी.ई. से बनी बोतलें एवं थैले ज्यादा उपयुक्त होते हैं।

¼e½ cus&cuk;s ;k [kkus dsfy;sr\$kj Hkkstu gsrq % आधुनिक जीवन शैली को देखते हुए पहले से बने-बनाये खाद्यों को खाना सामान्य हो चुका है। मुलायम और ठोस दोनों प्रकार के प्लास्टिक इन उत्पादों की डिब्बाबंदी हेतु उपयोग में लाये जाते हैं। माइक्रोवेब को सहन करने, अच्छी जीवनावधि, असंक्रमण एवं सौंदर्ययुक्त प्रकृति ही ऐसे खाद्यों की प्लास्टिक डिब्बाबंदी को बढ़ावा दे रही है।

*विभिन्न प्रकार के प्लास्टिक के गुण और खाद्य डिब्बाबंदी में उनका उपयोग किया जाने तालिका 1 में दर्शाया गया है।*

## प्लास्टिक का पुनर्चक्रण

जैसा कि प्लास्टिक स्वाभाविक तरीके से नहीं सड़ता, इसलिए इनको निष्कासित करना एक बहुत बड़ी समस्या है। उत्पादों के उपयोग के बाद प्लास्टिक का पुनर्चक्रण इस समस्या से निपटने के लिये सबसे प्रभावशाली रास्ता है। केवल खाद्य उत्पादों कि डिब्बाबंदी को छोड़कर पुनर्चक्रीकृत प्लास्टिक के बहुत सारे उपयोग हो सकते हैं।

rkfydk 1 %fofHkUu izdkj dsIykfLVd dsxq.k vk\$j [kk| fMCckcanh esamudk mi;ksx

| Iy kfLVd vk\$ dksM | fooj.k | xq.k | mi;kfxrk |
|---|---|---|---|
| 01 PET | पॉलिएथिलीन टेरिफ्थेलेट (पेट, पेटे) | अनुस्थापित परतें व बोतलों के लिये स्वच्छ एवं सुदृश्य मसृण सतह। ऑक्सीजन, नमी कार्बन डाइआक्साइड तथा विलायकों का उत्कृष्ट प्रतिरोधक। उच्च प्रभाव क्षमता और टूटने से बचने की शक्ति। गर्म-भराव के प्रति सहनशील। | पानी, शीतल पेय, जूस, स्पोर्ट्स ड्रिंक्स, शहद, खाद्य तेलों, शराब और चटनी की बोतलें हेतु। मूँगफली का मक्खन, जैम, जैली और अचार के जार हेतु। नमक, मशाले, मछली और उनके अन्य उत्पादों हेतु। माइक्रोवेब सहनशक्ति वाले ट्रे बनाने के लिए। |
| 2 HDPE | एच.डी.पी.ई. (हाई डेन्सिटी पॉलिएथिलीन) | अधिकांश विलायकों के प्रति अच्छी प्रतिरोधक शक्ति, अन्य पॉलीइथाइलिन की तुलना में सर्वाधिक तन्य गुण वाला, कठोरता के कारण अच्छी तापमान सहनशीलता। | दूध, पानी, जूस, खाद्य तेलों, फलों और सब्जियों के उत्पादों के लिये बोतलें। अनाजों एवं किराना सामानों की डिब्बाबंदी हेतु। अन्य फसलों के डिब्बे का लाईनर हेतु उपयोग। |
| 3 V | पी.वी.सी., विनाइल (पॉलीविनाइल क्लोरॉइड) | बहुत मजबूत और शानदार स्पष्टता, प्रसंस्करण के लिए अच्छा तथा तेल, ग्रीस व रसायनों के प्रति उच्च सहनशक्ति। | बेकरी उत्पादों एवं मिठाईयों की सिकुड़न और एठनदार डिब्बाबंदी हेतु। |
| 4 LDPE | एल.डी.पी.ई. (लो डेन्सिटी पॉलिएथिलीन) | अम्लों, क्षारों और वनस्पति तेलों के प्रति उच्च सहनशक्ति बहुत अच्छी, मजबूती, लचीलापन और सुस्पष्ट पारदर्शिता (गर्म-सीलिंग हेतु पैकेजिंग अनुप्रयोगों के लिए गुणों का अच्छा संयोजन)। | ताजे उत्पादों, हिमीकृत खाद्यान्नों और ब्रेड के थैलों हेतु। संकुचित और तनावयुक्त परतों वाली डिब्बाबंदी, गरम और ठंडे पेयों में उपयुक्त प्यालों पर तथा दूध के कागजवाली कार्टूनों पर परत चढ़ाने हेतु। निचोड़ी जा सकने वाली बोतलें जैसे शहद, टमाटर केचप एवं सरसों चटनी रखने वाली और पात्रों के ढक्कनों हेतु। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | पी.पी. (पॉलीप्रोपाइलिन) | अम्लों, क्षारों और अधिकांश विलायकों के प्रति निष्क्रिय। नमी के पारगमन को कम करने वाला। बाईक्सली अनुस्थापित परतें और स्ट्रेच ब्लो मोल्डेड पात्रों के लिए सुस्पष्टता। | दही, मार्जरीन, प्रतिदिन खाने योग्य एवं खाने के लिये तैयार भोजन के लिये पात्र और बोतलों की ढक्कनें आदि बनाने हेतु। |
| | पी.एस. (पॉलीस्टीरीन) | कम स्वजीवन क्षमता वाले उत्पादों हेतु नमी का उच्च प्रतिरोध। सामान्य उद्देश्य रूप के लिये सुस्पष्टता। झागीय अवस्था में कम घनत्व और उच्च ठोसपन गुणवाला। उष्मा का कुचालक और अच्छा बिजली–रोधक। | खाद्य सेवाओं में उपयोगी वस्तुओं जैसे चाकू–छूरी, प्याले, थालियाँ, कटोरा आदि, माँस और मुर्गियों वाली ट्रे तथा दही के लिये उपयुक्त अनम्य ट्रे को बनाने हेतु। |
| | इस प्रकार का कोड ऊपर दिये गये छह प्लास्टिक के अलावा अन्य रेजिन से या एक से अधिक रेजिन से बना हुआ और कई परत वाली प्लास्टिक को दर्शाता है। इसमें मुख्यतः पॉलीकार्बोनेट (पी.सी.) और पॉलीलेक्टाईड को शामिल किया गया है। | रेजिन या उनके मिश्रण पर निर्भर करने वाला। | तीन से पाँच लीटर तक पुनः प्रयोज्य होने वाली पानी की बोतलें और नींबू वर्गीय फलों के जूस की बोतलें हेतु। ओवेन में सेंके जा सकने वाले थैले, अवरोधक परतों तथा परंप. रागत डिब्बाबंदी हेतु। |

## लीची

लीची सुंदर मीठा स्वाद
रंग अनूठा रहता याद
लेयरिंग प्रवर्धन तकनीक कामयाब
गुठली भेदक फल करें खराब,
नन्हीं मधुमक्खी बड़े काम की
करे परागण बढ़ाओ संख्या इनकी;
जो हो पोषक तत्वों का उचित उपयोग,
तो हो पौधा स्वस्थ नहीं लगेंगे रोग
करो कृत्रिम वर्षा व मल्चिंग,
हो अधिक फसल और ज्यादा सेविंग
जल मितव्ययता को अपनाएँ
ड्रिप इरिगेशन प्रयोग में लाएँ
शाम ढले, बढ़े टरगर प्रेसर
तब तोड़ो तो शेल्फ लाइफ बेहतर,
सूरज की किरणों से बचाओ,
पत्ते समेत पैकिंग करवाओ
ऊपर की सीखें अपना कर
लीची उत्पादन अधिक बढ़ा कर
लीची का एरिया बढ़ाओ
निर्यात से मनचाहा पैसा पाओ।

*–नीलिमा गर्ग*
*प्रभागाध्यक्ष, तुड़ाई उपरांत प्रबंधन प्रभाग*

# राजभाषा (संघ के प्रयोजनों के लिये प्रयोग) नियम, 1976

(यथा संशोधित, 1987, 2007 तथा 2011)

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

सा.का.नि. 1052—राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19) की धारा 3 की उपधारा (4) के साथ पठित धारा 8 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित नियम बनाती है, अर्थात:,

## 1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ

(क) इन नियमों का संक्षिप्त नाम राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिये प्रयोग) नियमक, 1976 है।

(ख) इनका विस्तार, तमिलनाडु राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है।

(ग) ये राजपत्र में प्रकाशन की तारीख को प्रवृत्त होंगे।

## 2. परिभाषाएं-इन नियमों में, जब तक कि संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो

(क) 'अधिनियम' से राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19) अभिप्रेत हैं,

(ख) 'केन्द्रीय सरकार के कार्यालय' के अन्तर्गत निम्नलिखित भी है, अर्थात,

(क) केन्द्रीय सरकार का कोई मंत्रालय, विभाग या कार्यालय;

(ख) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किसी आयोग, समिति या अधिकरण का कोई कार्यालय; और

(ग) केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में या नियंत्रण के अधीन किसी निगम या कम्पनी का कोई कार्यालय।

(ग) 'कर्मचारी' से केन्द्रीय सरकार के कार्यालय में नियोजित कोई व्यक्ति अभिप्रेत है,

(घ) 'अधिसूचित कार्यालय' से नियम 10 के उपनियम (4) के अधीन अधिसूचित कार्यालय, अभिप्रेत है,

(ङ) 'हिन्दी में प्रवीणता' से नियम 9 में वर्णित प्रवीणता अभिप्रेत है,

(च) 'क्षेत्र क' से बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्य तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत है,

(छ) 'क्षेत्र ख' से गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा चंडीगढ़, दमन और दीव दादरा और नागर हवेली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत है,

(ज) 'क्षेत्र ग' से खंड (च) और (छ) में निर्दिष्ट राज्यों और संघ राजय क्षेत्रों में भिन्न राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत है,

(झ) 'हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान' से नियम 10 में वर्णित कार्यसाधक ज्ञान अभिप्रेत हैं।

## 3. राज्यों आदि और केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से भिन्न कार्यालयों के साथ पत्रादि

(1) केन्दीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र 'क' में किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र को या ऐसे राज्य सा संघ राज्य क्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केन्द्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि असाधारण दशाओं को छोड़कर हिन्दी में होंगे और यदि उनमें से किसी को कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा।

(2) केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से

(क) क्षेत्र 'ख' में किसी राज्य सा संघ राज्य क्षेत्र को या ऐसे राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केन्द्रीय सरकार का कार्यालय न हो) को पत्रादि सामान्यतया हिन्दी में होंगे और यदि इनमें से किसी को कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा; परन्तु यदि कोई ऐसा राज्य या संघ राज्य क्षेत्र यह चाहता है कि किसी विशिष्ट वर्ग या प्रवर्ग के पत्रादि या उसके किसी कार्यालय के लिये आशायित पत्रादि

या उसके किसी कार्यालय के लिए आशायित पत्रादि संबद्ध राज्य या संघ राजयक्षेत्र की सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि तक अंग्रेजी या हिन्दी में भेजे जायें और उसके साथ दूसरी भाषा में उसका अनुवाद भी भेजा जाये तो ऐसे पत्रादि उसी रीति से भेजे जायेंगे।

(ख) क्षेत्र 'ख' के किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को पत्रादि हिन्दी या अंगेजी में भेजे जा सकते हैं।

(3) केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र 'ग' में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केन्द्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि अंग्रेजी में होंगे।

(4) उपनियम (1) और (2) में किसी बात के होते हुए भी, क्षेत्र 'ग' में केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र 'क' या 'ख' में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केन्द्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं। परन्तु हिन्दी में पत्रादि ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय–समय पर अवधारित करें।

## 4. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि

(क) केन्द्रीय सरकार के किसी एक मंत्रालय या विभाग और किसी दूसरे मंत्रालय या विभाग के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं;

(ख) केन्द्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग और क्षेत्र 'क' में स्थित संलग्न या अधीनस्थ कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी में होंगे और ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार, ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे संबंधित आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय–समय पर अवधारित करें;

(ग) क्षेत्र 'क' में स्थित केन्द्रीय सरकार के ऐसे कार्यालयों के बीच, जो खण्ड (क) या खण्ड (ख) मे विनिर्दिष्ट कार्यालयों से भिन्न हैं, पत्रादि हिन्दी में होंगे;

(घ) क्षेत्र 'क' में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों और क्षेत्र 'ख' या 'ग' में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं; परन्तु ये पत्रादि हिन्दी में ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय–समय पर अवधारित करें; परन्तु ये पत्रादि हिन्दी में ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय–समय पर अवधारित करें ;

(ङ) क्षेत्र 'ख' या 'ग' में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं; परन्तु ये पत्रादि हिन्दी में ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय–समय पर अवधारित करें;

परन्तु जहाँ ऐसे पत्रादि

(1) क्षेत्र 'क' या क्षेत्र 'ख' किसी कार्यालय को संबोधित है वहाँ यदि आवश्यक हो तो, उनका दूसरी भाषा में अनुवाद, पत्रादि प्राप्त करने के स्थान पर किया जायेगा;

(2) क्षेत्र 'ग' में किसी कार्यालय को संबोधित है वहाँ, उनका दूसरी भाषा में अनुवाद, उनके साथ भेज जायेगा; परन्तु यह और कि यदि कोई पत्रादि किसी अधिसूचित कार्यालय को संबोधित है तो दूसरी भाषा में ऐसा अनुवाद उपलब्ध कराने की अपेक्षा नहीं की जायेगी।

## 5. हिन्दी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर

नियम 3 और नियम 4 में किसी बात के होते हुए भी, हिन्दी में पत्रादि के उत्तर केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से हिन्दी में दिये जाएंगे।

## 6. हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग

अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिये हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग किया जाएगा और ऐसे दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों का यह उत्तरदायित्व होगा कि वे यह सुनिश्चित कर लें कि ऐसी दस्तावेज हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही में तैयार की जाती है, निष्पादित की जाती है और जारी की जाती है।

## 7. आवेदन, अभ्यावेदन आदि

(1) कोई कर्मचारी आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिन्दी या अंग्रेजी में कर सकता है।

(2) जब उपनियम (1) में विनिर्दिष्ट कोई आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिन्दी में किया गया हो उस पर हिन्दी में हस्ताक्षर किए गए हों, तब उसका उत्तर हिन्दी में दिया जाएगा।

(3) यदि कोई कर्मचारी यह चाहता है कि सेवा संबंधी विषयों (जिनके अंतर्गत अनुशासनिक कार्यवाहियाँ भी हैं) से संबंधित कोई आदेश या सूचना, जिसका कर्मचारी पर तामील यिका किया जाना आपेक्षित है, यथास्थिति, हिन्दी या अंग्रेजी में होनी चाहिए तो वह उसे असम्यक विलंब के बिना उसी भाषा में दी जाएगी।

## 8. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में टिप्पणी का लिखा जाना

(1) कोई कर्मचारी किसी फाइल पर टिप्पणी या कार्यवृत्त हिंदी या अंग्रेजी में लिख सकता है और उससे यह अपेक्षा नहीं की जायेगी कि वे उसका अनुवाद दूसरी भाषा में प्रस्तुत करें।

(2) केन्द्रीय सरकार का कोई भी कर्मचारी, जो हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखता है, हिन्दी में किसी दस्तावेज के अंग्रेजी अनुवाद की माँग तभी कर सकता है, जब वह दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का है, अन्यथा नहीं।

(3) यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विशिष्ट दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का है या नही ंतो विभाग या कार्यालय का प्रधान उसका विनिश्चय करेगा।

(4) उपनियम (1) में किसी बात के होते हुए भी, केन्द्रीय सरकार, आदेश द्वारा ऐसे अधिसूचित कार्यालयों को विनिर्दिष्ट कर सकती है जहाँ ऐसे कर्मचारियों द्वारा जिन्हें हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है, टिप्पणी, प्रारूपण और ऐसे अन्य शासकीय प्रयोजनों के लिए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं, केवल हिन्दी का प्रयोग किया जाएगा।

## 9. हिन्दी में प्रवीणता

यदि किसी कर्मचारी ने

(क) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर कोई परीक्षा हिन्दी के माध्यम से उत्तीर्ण कर ली है, या

(ख) स्नातक परीक्षा में अथवा स्नातक परीक्षा की समतुल्य या उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिन्दी को एक वैकल्पिक विषय के रूप में लिया हो, या

(ग) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्ररूप में यह घोषणा करता है कि उसे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है, तो उसके बारे में यह समझा जायेगा कि उसने हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त कर ली है।

## 10. हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान

(1) (क) यदि किसी कर्मचारी ने

(i) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा हिन्दी विषय के साथ उत्तीर्ण कर ली है, या

(ii) केन्द्रीय सरकार की हिन्दी परीक्षा योजना के अंतर्गत आयोजित प्राज्ञ परीक्षा या यदि उस सरकार द्वारा किसी विशिष्ट प्रवर्ग के पदो ंके संबंध में उस योजना के अंतर्गत कोई निम्नतर परीक्षा विनिर्दिष्ट है, वह परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है, या

(iii) केन्द्रीय सरकार द्वारा उस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है, या

(ख) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्ररूप में यह घोषणा करता है कि उसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है; तो उसके बारे में यह समझा जायेगा कि उसने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

(2) यदि केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में कार्य करने वाले कर्मचारियों में से अस्सी प्रतिशत ने हिन्दी का ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो उस कार्यालय के कर्मचारियों के बारे में सामान्यतया यह समझा जायेगा कि उन्होंने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

(3) केन्द्रीय सरकार या केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अधिकारी यह अवधारित कर सकता है कि केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय के कर्मचारियों ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है या नहीं।

(4) केन्द्रीय सरकार के जिन कार्यालयों में कर्मचारियों ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्रात कर लिया है उन कार्यालयों के नाम राजपत्र में अधिसूचित किए जायेंगे। परन्तु यदि केन्द्रीय सरकार की राय है कि किसी अधिसूचित कार्यालय में काम करने वाले और हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले कर्मचारियों का प्रतिशत किसी तारीख में से उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट प्रतिशत से कम हो गया है, तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकती है कि उक्त कार्यालय उस तारीख से अधिसूचित कार्यालय नहीं रह जायेगा।

## 11. मैनुअल, संहिताएँ, प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, लेखन सामग्री आदि।

(1) केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैनुअल, संहिताएं और प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, हिन्दी और अंग्रेजी में द्विभाषिक रूप में यथास्थिति मुद्रित या साइक्लोस्टाइल किया जाएगा और प्रकाशित किया जाएगा।

(2) केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग किये जाने वाले रजिस्टरों के प्ररूप और शीर्षक हिन्दी और अंग्रेजी में होंगे।

(3) केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग के लिये सभी नामपट्ट, सूचना पट्ट, पत्र शीर्ष और लिफाफे पर उत्कीर्ण लेख तथा लेखन सामग्री की अन्य मदें हिन्दी और अंग्रेजी में लिखी जाएंगी, मुद्रित या उत्कीर्ण होगी; परन्तु यदि केन्द्रीय सरकार ऐसा करना आवश्यक समझती है तो वह, साधारण या विशेष आदेश द्वारा, केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय को इस नियम के सभी या किन्हीं उपबंधों से छूट दे सकती है।

## 12. अनुपालन का उत्तरदायित्व

(1) केन्द्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह

(i) यह सुनिश्चित करें कि अधिनियम और इन नियमों उपबंधों और उपनियम (2) के अधीन जारी किये गये निर्देशों का समुचित रूप से अनुपालन हो रहा है; और

(ii) इस प्रयोजन के लिये उपयुक्त और प्रभावकारी जाँच के लिये उपाय करें।

(2) केन्द्रीय सरकार अधिनियम और इन नियमों के उपबंधों के सम्यक अनुपालन के लिये अपने कर्मचारियों और कार्यालयों को समय–समय पर आवश्यक निर्देश जारी कर सकती है।

(भारत का राजपत्र, भाग–2, खंड 3, उपखंड (i) में प्रकाशनार्थ)

भारत सरकार

गृह मंत्रालय

राजभाषा विभाग

नई दिल्ली, दिनांकः अगस्त, 2007

## अधिसूचना

का.आ. (अ).– केन्द्रीय सरकार, राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19) की धारा 3 की उपधारा (4) के साथ पठित धारा 8 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए,

राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिये प्रयोग) नियम 1976 का और संशोधन करने के लिये निम्नलिखित नियम बनाती है, अर्थात

(1) इन नियमों का संक्षिप्त नाम राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिये प्रयोग) संशोधन नियम, 2007 है।

(2) ये राजपत्र में प्रकाशन की तारीख को प्रवृत्त होंगे।

राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 में–

नियम 2 के खंड (च) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जायेगा, अर्थात

(च) ''क्षेत्र क'' से बिहार, छत्तीसगढ़, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह संघ राज्य क्षेत्र' अभिप्रेत हैं।

# प्रशासनिक शब्दावली

Abbreviation - संक्षिप्ति
Abnormal - अपसामान्य
Annexure - संलग्नक
Attested Copy - अनुप्रमाणित प्रति, साक्ष्यांकित प्रति
Authority Letter - प्राधिकार पत्र
Cess - उपकर
City Compensatory Allowance - नगर प्रतिकर भत्ता
Classified Document - वर्गीकृत दस्तावेज
Commuted Leave - परिवर्तित छुट्टी
Compassionate Leave - अनुकंपा छुट्टी
Compendium - सार–संग्रह
Compere - सूत्रधार
Compliance - अनुपालन
Complimentary Copy - मानार्थ प्रति
Concurrence - सहमति
Concurrent List - समवर्ती सूची
Covering Letter - सहपत्र
Demi Official Letter - अर्द्ध शासकीय पत्र
Dies Non - अकार्य दिवस, अदिन
Diglot Edition - द्विभाषिक संस्करण
Discretionary Power - विवेकाधीन शक्ति
Dormitory - शयनशाला
Duplicate - दूसरी प्रति, अनुलिपि
Ecology - पारिस्थितिकी
Enclosure - अनुलग्नक
Equipment - उपस्कर
Estimate - प्राक्कलन, आँकना, अनुमान
Executive - कार्यपालिका
Extra Curricular - पाठ्येत्तर
Extraordinary - असाधारण
Forwarding Letter - अग्रेषण पत्र
Holistic Approach - संपूर्णतावादी दृष्टिकोण
Ignorance - अनभिज्ञता
In Transit - रास्ते में
Infructuous - निष्फल
Inspection - निरीक्षण
Interviewee - साक्षात्कारदाता
Invigilation - अन्वीक्षण
Leave Travel Concession - छुट्टी यात्रा रियायत
Letter of Acknowledgement - पावती पत्र
Memorandum of Understanding - समझौता ज्ञापन
Officiating - स्थानापन्न
Pesticide - पीड़क नाशी
Quarantine - संगरोध
Regulation - विनियम
Scrutiny - संवीक्षा, छानबीन
Specification - विनिर्देशन, विशिष्टि
Surcharge - अधिभार
Surtax - अतिकर
Terms of Reference - विचारार्थ विषय
Tertiary - तृतीयक
Underlined - रेखांकित
Union Territory - संघ राज्य क्षेत्र
Unofficial Letter - अशासकीय पत्र
Unusual - असामान्य
Utilization - उपयोग, उपयोजन
Vacuum - निर्वात
Validation - विधिमान्यकरण, विधिमान्यता
Verbatim - शब्दशः
Vetting - जाँच, पुनरीक्षण
Yardstick - मानदंड

# संस्थान की राजभाषा गतिविधियाँ

# संस्थान की राजभाषा गतिविधियाँ

कवि सम्मेलन के उद्घाटन अवसर पर कविगण एवं संस्थान के निदेशक

कवि सम्मेलन जारी

मुख्य अतिथि श्रीमती प्रीति शर्मा, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी को पुरस्कृत करते हुए

हिन्दी पखवाड़ा प्रतियोगिता, 2018

army printing press
www.armyprintingpress.com
Lucknow (0522) 6565333